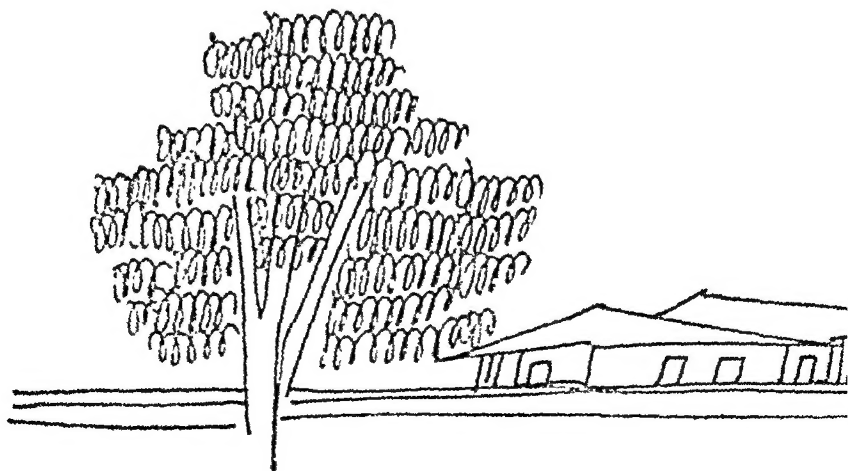
धरती और नींव



नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली



धरती और नींव

नयी दिल्ली

जगदीश चन्द्र पाण्डेय



नेशनल पब्लिशिंग हाउस
(स्वत्वाधिकारी : के० एल० मलिक एंड संस प्रा० लि०)
२३, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२

शाखाएं
चौड़ा रास्ता, जयपुर
३४, नेताजी सुभाष मार्ग, इलाहाबाद-३

मूल्य : १८.००

स्वत्वाधिकारी के० एल० मलिक एंड संस प्रा० लि० के लिए नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली-११०००२ द्वारा प्रकाशित / प्रथम संस्करण १९७८ / सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, मौजपुर, दिल्ली-११०१५३ में मुद्रित।

उन सभी को, जो—
गरीबी के कारण क्षण-क्षण टूटते रहते है
और
उन सबको, जो—
सच्चे दिल, ऐसो मे हमदर्दी रखते है।

नेशनल पब्लिशिंग हाउस
(स्वत्वाधिकारी : के० एल० मलिक एंड संस प्रा० लि०)
२३, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२

शाखाएं
चौड़ा रास्ता, जयपुर
३४, नेताजी सुभाष मार्ग, इलाहाबाद-३

मूल्य : १८.००

स्वत्वाधिकारी के० एल० मलिक एंड संस प्रा० लि० के लिए नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली-११०००२ द्वारा प्रकाशित / प्रथम संस्करण १९७८ / सर्वाधिकार जगदीशचन्द्र पाण्डेय / सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, मौजपुर, दिल्ली-११०१५३ में मुद्रित।

उन सभी को, जो—
गरीबी के कारण क्षण-क्षण टूटते रहते हैं
और
उन सबको, जो—
सच्चे दिल, ऐसों से हमदर्दी रखते हैं।

कुछ कहने भर…

पिछले दोनों उपन्यासों में भूमिका लिखने के बाद, मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा था कि अब आगे अपनी किसी भी रचना में भूमिका नहीं लिखूंगा। कारण, उससे कुछ गलत फहमियां हो जाती हैं। पर इसके बावजूद मैं इस बार फिर कुछ लिख रहा हूं जिसे मैं भूमिका तो नहीं मानता, हां उसे एक विनम्र प्रार्थना मानता हूं। कारण, इस उपन्यास को लिखते समय मैंने महसूस किया कि जीवन में यदि कोई सबसे कठिन काम है तो वह आदमी को आदमी समझना है। क्योंकि व्यक्ति जन्मजात व वातावरण के प्रभाव से अपने को बचाये नहीं रख सकता है। इसीलिए मुझे भय है कि कहीं इस उपन्यास में कोई ऐसी लाइन या कोई स्थल न रह गया हो जो मेरे उन भाइयों को बुरा लगे, जिन पर मैंने इसे लिखा है। इसीलिए मैं ये शब्द लिख रहा हूं कि उसे मेरी मात्र मानवी कमजोरी समझ, आप क्षमा कर अनुगृहीत करेंगे।

आशा है आप…

—जगदीशचन्द्र पाण्डेय

डी-१३२, सरोजनी नगर, नई दिल्ली
१-७-१९७६



मैं सहमे-सहमे दरवाजे पर लटके साइनबोर्डों को पढते आगे बढ रहा था। पूरे कोरीडोर मे खामोशी, लकडी के स्टेंडो तथा ट्यूबो के बीच लिखे 'साइलेंस प्लीज/कृपया शात रहिए' के मुताबिक ही ठहराव पर थी। और तो और, आपसी चुहलबाजी के लिए बदनाम चपरासी तक इधर अपने-अपने भगवानो मे लीन-ध्यानस्थ-से कुछ ऐसे बैठे थे जैसे तहेदिल से उन्होंने शाति आदेश को मानना स्वीकार कर लिया हो। हा, जब भी मैं उनमे से किसी के पास जा, साइनबोर्ड को पढने लगता तब वह तिरछी व प्रश्नभरी नजरो से मुझे कुछ ऐसे देखता कि अगले साइनबोर्ड को पढने आगे जाने मे भी एक अजीब-सा डर लगता था कि कही यदि किसी ने 'कृपया शात रहिए' की ओर देखने का इशारा कर दिया तो? मगर अगला नामपट्ट भी वह नही होता—जिसे मैं देखना चाहता था और जिसके साथ मेरे नये दफ्तर के दफ्तरी जीवन का भाग्य प्रशासन अनुभाग ने जोडा था। उनका कमरा न० भी मुझे बताया नही गया था वरना तो मैं गिनतियो की सीढिया चढते-उतरते उन तक पहुच ही जाता। तभी मेरे दाएं ओर वाले एक कमरे का दरवाजा एकाएक खुला। मेरी प्रसन्नता का अब ठिकाना ही न रहा। मैं अपलक उधर देखता ही रह गया।

दरवाजे पर नामपट्ट तो दास गुप्ता का लटका हुआ था। मगर सैक्शन आफीसर की बगल वाली सीट मे एक ऐसा व्यक्ति बैठा था जो भारी-भरकम डीलडौल वाले शरीर के कारण पठान-सा लगता था। हालाकि प्रशासन अनुभाग वाले सम्मानित खान साहब व उस व्यक्ति के बीच बेहद अतर था। मगर मैंने इस विश्वास के साथ उन्ही के पास जा पूछने का निश्चय किया कि सहधर्मी के बारे मे उनसे अवश्य ही पता चल जाएगा। उनसे पूछना ही था, और मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। क्योकि वह स्वयं ही वे खान साहब थे

जिनका 'बोर्ड' में खोज रहा था। उन्होंने मेरे पूछते ही सारी स्थिति को जैसे भांप लिया हो, इशारे-भर से मुझे सेक्शन आफिसर की सीट के सामने बैठने का आदेश-सा दिया।

अब मैं विस्मित निगाहों से उन्हें देखते-देखते सेक्शन आफिसर की टेबल के सामने बैठ गया। सेक्शन आफिसर साहब ने व्यावहारिकतावश मुझसे दो-एक बातें पूछीं। सेक्शन के सभी लोगों से मेरा परिचय कराने लगे। अब मैं और भी भौंचक्का-सा हो आया कि सबसे पहले खान साहब का परिचय क्यों नहीं करा रहे हैं। तभी उन्होंने मेरी हैरानी को जैसे ताड़ सा लिया हो, बोले, "भाई मैं तो सरकारी भाषा में ही इस सेक्शन का आफिसर हूं। इसके तो वास्तव में मालिक खानसाहब ही हैं। एक-दो दिन में तुम्हें यह सब मालूम···"

"तुम तो भाई बेहद भाग्यशाली व्यक्ति हो जो···।" यह सेक्शन आफिसर के बिल्कुल सामने बैठे व्यक्ति का स्वर था।

"एक तो प्रमोशन पर इधर आए। दूसरा पोस्टिंग भी हुई बादशाह साहब के उस सेक्शन में। जिसमें···"

मेरी हैरानी की अब सीमा ही नहीं थी। पंद्रह साल के दफ्तरी अनुभवों से मैंने यह तो जाना था कि अपवाद के रूप में आफिसर के बेहद भले व तेज़ होने के कारण सेक्शन का नाम सेक्शन आफिसर के नाम के साथ कई बार जुड़ जाता है। यह मेरा पहला तजुर्बा था कि सेक्शन का नाम जुड़ा हो उस व्यक्ति के नाम के साथ जो सेक्शन आफिसर की बगल में बैठा हुआ हो। उस पर भी हद यह कि उसकी टेबल पर शीशा, कलमदान आदि तो सेक्शन आफिसर की बराबरी का हो मगर उसकी टेबल पर फाइलें तो अलग, एक भी कागज़ न हो। इसके अलावा एक बात और कि वह लगातार एक मोटी किताब को पढ़ते ही पढ़ते चला जा रहा हो। और कभी-कभार बीच-बीच में उसमें से कुछ नोट भर कर रहा हो।

"अच्छा तो आप हैं हमारे नये साथी।" यह खान साहब का पहला स्वर था। उन्होंने किताब का पन्ना अब पूरा पढ़ लिया था। मगर ताज्जुब कि वे मेरे उत्तर की प्रतीक्षा करने के बदले पुन: किताब पर झुक आए। कुछ ऐसे जैसे मेरे उत्तर से उन्हें कोई मतलब ही न हो।

"आप पुराने दफ्तर में क्या काम किया करते थे।" यह सेक्शन आफिसर दास गुप्ता का स्वर था। उनके स्वर में अब आफिसरी लहज़ा झलक आया था।

"टाइपिंग।" इसके अलावा मैं क्या उत्तर देता। पूरे पंद्रह वर्ष में लोहा ही तो कूटता रहा था इससे पहले।

"मगर यहां तो तुम्हें केस वर्क···।" यह खन्ना साहब के स्वर में व्यंग्य-सा था।

खन्ना के इस वाक्य ने मेरे रोम-रोम को झकझोर दिया। मुझे इस वाक्य से बेहद चिढ़ थी। इसलिए नहीं कि मुझे केस-वर्क करने में डर लगता था। बल्कि इसलिए कि सरकारी दफ्तर में काम करने वाले हर एल० डी० सी० को यह वाक्य एक बार अवश्य ही सुनना पड़ता था। क्योंकि सरकारी निगाहों में एल० डी० सी० को केस-वर्क के काबिल नहीं समझा जाता था। हां, यू० डी० सी० के प्रमोशन के अगले ही क्षण उसे केस-वर्क में माहिर समझा जाता था। इतना ही होता तो कोई बात थी, हद तो यह थी कि उसे इस काम में पूरी तरह असिस्टेंट के बराबरी का समझा जाता था।

"शायद मिस्टर खन्ना अपने उस दिन को भूल गए हैं जब इन्होंने पूछा था कि टैग या फ्लेप किसे कहते हैं?" दास गुप्ता जी ने चुटकी-सी ली। उनके हमेशा मायूस रहने के अभ्यस्त-से चेहरे में भी मुस्कुराहट छा आई थी।

अब मैं चैन की सांस लेते हुए मिस्टर खन्ना को देख रहा था। उसकी निगाहें झुक आई थीं। एक उसकी ही क्या लगभग सभी की निगाहें झुकी थीं। शायद सभी के सभी एल० डी० सी० तथा यू० डी० सी० की सीढ़ियों के बाद इस स्थिति तक पहुंचे थे। हां, यदि इसके अपवाद थे तो मिस्टर खुल्वे तथा जुनेजा जो दोनों टाइप की टिक-टिक करते हुए भी इस समय मुस्कुरा रहे थे। मैं अवाक्-सा उन दोनों को ही देखता रह गया। मुझे उन दोनों का मुस्कुराना बेहद अखरा। मन में ख्याल आया कि जाकर उन दोनों से कहूं—लगता है एल० डी० सी० बनने का अभी तुम दोनों को चार-चार पांच-पांच ही साल का अनुभव है, वर्ना अगर अट्ठारह-अट्ठारह या बीस-बीस बरस का तुम्हारा अनुभव होता तो तुम भले ही अपनी झेंप मिटाने को मुस्कुराते। मगर, ऐसी बातें सुनकर अंदर ही अंदर रो रहे होते। क्योंकि तब तुम यह जान गए होते कि एल० डी० सी० बाबुओं की एक ऐसी जाति है जिस जाति के लोगों के शरीर के स्पर्श हो जाने भर से पानी का छींटा मारकर अपने को पवित्र करने वाली कहावत की पुनरावृत्ति भले ही लोग न करें पर उनसे बातें करना उस समय अपनी तौहीन समझते हैं जिस क्षण उन्हें यह पता चल जाए कि अमुक आदमी एल० डी० सी० है। पर मैं बोला कुछ भी नहीं। कारण, एक तो मेरे नये मन्त्रालय के नये सेक्शन के शुरुआती वे क्षण थे। दूसरा, मेरे प्रमोशन के नाम की पार्टी का सामान कमरे में आ चुका था। जिसकी सूचना मिस्टर सेठ ने यह कहते हुए दी थी, "आइए अपने नाम की पार्टी की चाय अपने हाथ से बनाकर हम सबको तो दीजिए।"

अब मैं अपने नाम की चाय बना-बनाकर अपने नये कुलीगों को बांट रहा था। इसके अलावा और चारा भी कोई नहीं था। मगर अंदर ही अंदर इस चिंता में डूबा था कि पार्टी के पैसे दूंगा कहां से? कारण, खान साहब के युग-

नसीब सेक्शन पाने की खुशी में प्रशासन-एकक के लोगों को पार्टी दे अपनी जेब में लगभग पहले ही खाली कर चुका था। जबकि इस पार्टी का बिल…



खान साहब के आदेशानुसार अब मुझे उनके सामने वाली सीट मिल चुकी थी। सेक्शन आफिसर दासगुप्ता साहब ने मुझे सीट देने के बारे में उन्हीं से पूछा था कि नये कुलीग को कौन-सी सीट दी जाए। उत्तर में उन्होंने केवल इशारे से यह बताया था कि मुझे उनके ही सामने की सीट दी जाए और उधर बैठते मिस्टर सेठ को पीछे सबसे आखिरी सीट दी जाए। उस पर भी आश्चर्य यह कि उनका इशारा होना था कि सेठ अपनी फाइलें आदि उठा बतलाई जगह पर उधर ही जा बैठे। इतना ही नहीं उनके ही आदेशानुसार मुझे खुल्बे साहब की सीट का काम सौंपा गया। जबकि उन्हें और नया काम दिया गया था।

मेरे लिए ये सभी बातें पहेली-सी बन आई थीं। ऐसा होता भी कैसे नहीं। काम व सीट के बदलाव के ऐसा अनुपालन का अनुभव भी मेरे लिए पहला ही था वर्ना तो मैं आए दिन सीटों के लिए बाबुओं को झगड़ते ही देखता आ रहा था। काम के बदलाव की बात तो सचमुच ही बड़ी थी। फिर सेक्शन आफिसर के होते आदेश किसी और के चलते भी मैं जीवन में पहली बार ही देख रहा था। क्योंकि अफसर की सील लगते ही उसे आदेश देने का अधिकार सहजता से मिल ही जाया करता है। चाहे वह कैसा ही व्यक्ति क्यों न हो। फिर मेरे नाम की पार्टी के पैसे देने की बात भी तो कम अजीबो-गरीब नहीं थी। मैंने बैरे को बिल चुकाने जुनेजा से दस रुपये मांगे ही थे कि वह चुपके से इशारे ही इशारे में कमरे से मुझे बाहर कुछ ऐसे ले गया जैसे इसमें कोई गहरा राज हो। मैं भी बिना किसी प्रतिवाद के उसके साथ चला आया। जहां उसने मुझे बताया था—खान साहब के होते इस सेक्शन में चाय आदि

का पैसा कोई भी नही दे सकता है। यहा तो वैसे ही सुबह तथा शाम वे सबको चाय आदि पिलाते व खिलाते हैं। वह तो मेरे नाम पर एक-एक मीठा पीस ही तो फालतू आया था।

तभी से मैं खान साहब के बारे मे सोचता-सोचता चला जा रहा था। जिस सोच के बीच मुझे पुराने दफ्तर के अपने आफीसर लक्ष्मीराम की याद ताजा हो आ रही थी। जिन्हे सेक्शन के लोग क्षण प्रतिक्षण प्रमोशन की पार्टी के लिए चिढाया करते थे। मगर वे थे कि कल-परसो कहते-कहते पार्टी को पूरे दो साल टाल ही नही चुके बल्कि अपने नये प्रमोशन के बाद एक साथ पार्टी देने का वायदा कुछ ऐसे करने लगे जैसे अफसर होने के नाते उन्हें इस तरह के वायदे पर वायदे करने का मौरूसी अधिकार भी हो। उनके इसी वायदे ने मुझे उनके दूसरे और भी अजीबोगरीब रूप की याद ताजा करा दी जिसमे मैं यू० डी० सी० की परीक्षा पास करने के बाद पूरे महीने प्रार्थना करता रहा था कि टाइपिंग के काम के साथ फाइलो का काम भी मुझे दिया जाए ताकि प्रमोशन के बाद केस-वर्क करने मे दिक्कत न हो। मगर उनके कान मे जू भी नही रेंगती थी। पहले तो उनकी ऐसी अजीबोगरीब आदतो के कारण कोई भी कुलीग उनसे सिफारिश करने का साहस वैसे ही नही जुटा पाता था। फिर उन्होंने पहले ही सिफारिशी को झिडक दिया था—अच्छा तो तुम लोग मुझे मेरे सिद्धात से डिगाना चाहते हो। मैं कभी भी किसी सरकारी आदेश की अवहेलना नही कर सकता। जानते हो सरकारी आदेशानुसार एल० डी० सी० का काम केवल डायरी, डिस्पेच, रिकाडिंग, इडेक्सिग तथा टाइपिंग ही है, समझे।

तब मुझे बेहद गुस्सा आया था। इच्छा तो तब यह तक हुई थी कि उनसे कहू—उसी सरकारी आदेश की मान्यता के मुताबिक यह भी तो आशा की जाती है कि आफिसर उलझे केसो मे अपने मातहत काम करने वालो का मार्ग-दर्शन किया करे। जबकि मार्गदर्शन की आशा रखना तो अलग जरा-सा पूछने पर तुम खाने को दौडते हो। पर मैं बोला कुछ भी नही। कारण, एक तो मुझे जवाब देने की वैसे ही आदत नही थी। दूसरा मुझे यह अच्छी तरह पता हो आया कि भले ही उन्होंने बात कुछ भद्दे तरीके से कही थी, मगर इसमे उनका अधिक कसूर नही था। क्योकि सरकारी भाषा मे पद के कारण उन्ही बी० ए० पास दो आदमियो की कुशलता मे अतर समझा जाता था जिनकी डिग्री के मुताबिक उन्हे बराबर योग्य समझा जाता था। यही वजह थी कि मैं तब खामोश रहा, मगर मैं भी कल चुप नही रह सका जब एक ओर मैं रिलीविग आर्डर ले रहा था तो वही लक्ष्मीराम जी मेरे पास सात-आठ रिसीटें तथा फाइलें यह कहते हुए ले आए थे कि इन्हे पुटअप करो। तुम्हे केस-वर्क

का पूरा तजुर्बा हो जाएगा···। तब मेरे माथे की रेखाएं खिंच आई थीं। मैं झल्ला उठा था—साहब अब तो मैं सोचता हूं कि नये दफ्तर में ही यह अनुभव हासिल करूं तो सरकारी आदेशों का पूरा निर्वाह हो पाएगा। क्योंकि मैं कल वहां यू० डी० सी० होऊंगा जबकि आज तो यहां एल० डी० सी० ही हूं।

— जैसी तुम्हारी मर्जी। सिर के बालों पर हाथ फेरते, घूर-घूरकर मुझे देखते, वे उल्टे पांव अपनी कुर्सी पर लौटे थे तब। उनकी सूरत तब देखने लायक थी। उनके काले-कलूटे चेहरे पर और भी अधिक कालिख-सी पुत आई थी। अपनी कुर्सी पर बैठते वे अस्पष्ट-सा कुछ बोले थे। फिर एक-दो क्षण बाद ही बुदबुदाए थे—अरे भाई अब तो थोड़े ही दिनों में सालाना रिपोर्ट का काम भी आने वाला···

अब मैं अपनी हंसी नहीं रोक सका था। किसी न किसी बहाने छुट्टी से पहले कई दिनों से वे ये ही वाक्य बुदबुदाया करते थे। ताकि उनके मातहत काम करने वाला हर आदमी उन्हें जहां सुबह-शाम लंबा-चौड़ा सलाम मारा करे वहीं उनको हर बात पर 'यस सर' कहा करे और उन्हें चाय-कॉफी आदि आफर किया करे। क्योंकि वे हर साल नवम्बर के ही महीने से ऐसा कहना शुरू कर दिया करते थे, जनवरी के आने तक तो वे दिन में कम से कम दस-बारह बार सबको यह समझा दिया करते थे कि सालाना रिपोर्ट वाले करैक्टर रोलों पर ही उनका भाग्य निर्भर है। उसके ठीक न होने पर प्रमोशन पाना आसान नहीं है। यही वजह थी कि जहां सेक्शन के सारे लोग उनके पीठ पीछे उनका मजाक उड़ाया करते थे, वहीं उनके सामने उनकी हां में हां ही मिलाया करते थे। कुछ ऐसे जैसे सही माने में बाबूगिरी तथा अफसरशाही इसी को कहते हों कि···



···ल में टंगी घड़ी अब एक बजकर बीस मिनट की ओर तेजी से बढ़ रही ···। ···छ महीनों पहले की बात होती तो अब तक लंच के बीस मिनट हो चुके

होते। मगर अब इमरजेंसी के कारण लंच टाइम में भी दस मिनट शष थे। मगर सेक्शन के सभी लोग पूर्ववत् काम पर जुटे हुए थे। लगता था कामचोर व भगोड़ों को पकड़ने के सरकारी अभियान के डर से इधर लोग काम पर नहीं लगे हुए हैं बल्कि काम करने की सच्ची नियत स ही सभी के सभी काम पर जुटे हुए हैं। हां, यदि अपनी आदत के मुताबिक काम नहीं कर रहे थे तो सिर्फ खान साहब। वे अब भी पहले की तरह किताब ही पढ रह थे। और अब मैं था कि अपने को सौंपे काम को समझने का प्रयास कर रहा था।

"चर चू चरड चू।"

सेक्शन के सारे लोग अब बिजली की सी फुर्ती के साथ खड़े हो आए। व्यावहारिकतावश मैं भी खड़ा हो आया। देखा, तिरछी निगाहों से कमरे के सारे माहौल को देखते-परखते दो व्यक्ति सेक्शन आफिसर की मेज की ओर बढ़े चले आ रहे थे। पहले वाले व्यक्ति ने बंद गले का कोट व पतलून पहन रखी थी। उसके पीछे-पीछे सूटेड-बूटेड टाई कालर वाला दूसरा व्यक्ति हाथ में तौलिया लिए चला आ रहा था। मैं उत्सुक आंखों स उन दोनों को देखता ही रह गया। क्योंकि एक तो मैं उनमें से किसी को भी नहीं जानता था। दूसरा उनके आने का तरीका ही अजीब था। मेरे देखते-देखते वे आफीसर की कुर्सी के नजदीक पहुंच गए। वहां पहुंचते ही बंद गले के कोट वाला व्यक्ति बोल-सा उठा, "अच्छा-अच्छा तो यह खान साहब का सेक्शन है।"

"यस सर ' यस सर।" यह तौलिए पकड़े टाई-कोट वाले व्यक्ति का स्वर था।

"वट सर। चेंज युवर हैबिट। राष्ट्रभाषा में बातें करो।"

"यस सर। नो नो, जी साहब 'जी साहब।" तौलिए वाला व्यक्ति झटके के साथ दो कदम पीछे कुछ ऐसे हटा जैसे उससे बहुत बड़ी गलती हो गई हो।

"मोस्ट डिसिप्लिंड सेक्शन।" कहते-कहते बंद गले के कोट वाले व्यक्ति ने खान साहब से हाथ कुछ ऐस मिलाया जैसे वे उनके बारे में पूर्ण परिचित हो, और फिर तेज कदमों से दरवाजे की ओर लौटने लगे, "खान साहब जरा आधे घंटे बाद मेरे पास·· "

"जी मैं तो स्वय ही ·।" खान साहब के स्वर में नम्रता थी।

उन दोनों का कमरे से लौटना ही था कि हतप्रभ-सा मैं खान साहब को देखता ही रह गया क्योंकि उनके कमरे से जाते ही मुझे पता चला कि खान साहब से हाथ मिलाने वाले व्यक्ति मेरे नय मंत्रालय के मंत्री महोदय थ। और दूसरे व्यक्ति हमारे संयुक्त सचिव थे। यही कारण था कि इस बारे में मैं सेक्शन के एक-दो आदमियों से बातें करना ही चाहता था कि मैंने पाया कि

सेक्शन के सारे लोग मुझे मौन रहने का जहां इशारा कर रहे थे वहीं सभी के सभी मुझे कुछ ऐसे देखे रहे थे जैसे इस सेक्शन के सभी लोग केवल इशारों से ही बातें करने के आदि हों।



अब मुझे नये मंत्रालय के नये काम की पहली रिसीट मिल चुकी थी। मगर आश्चर्य यह कि वह मेरे अपने नाम की नहीं थी। वह तो थी मार्क खान साहब के नाम। पर रखी गई थी ठीक मेरी मेज पर मेरे सामने। जिस पर सेक्शन के एक आदमी ने इशारों ही इशारों में उसे पुटअप करने व मौन रहने का सा आदेश ही मुझे नहीं दिया बल्कि मिस्टर जुनेजा तो मेरे सामने वह फाइल तक रख गया था जिसमें उसे पुटअप होना था।

मैंने एक बार गौर से फाइल को देखा। फिर देखा उसी रिसीट के उस हिस्से को, जहां पर 'खान साहब' लिखा हुआ था। मेरा माथा झनझना उठा कि यह अजीब माजरा है—एक तो अपने नये काम की शुरुआत। वह भी दूसरे के नाम के काम से। इच्छा हुई कि उस रिसीट को अपने नाम पर मार्क करने का सविनय आग्रह करूं। मगर इशारों ही इशारों में बातें करने वाले इस नये माहौल के बीच मुझे ऐसा करने की हिम्मत नहीं हुई। फिर हिम्मत होती भी कैसे! भला मंत्रालय का मालिक ही जब उन्हें इस तरह जाने और उनकी ही ख्याति के कारण 'मोस्ट डिसिप्लेन सेक्शन' कहे तो भला ऐसे में कुछ भी कहना मेरे लिए खतरे से खाली नहीं ठहरा। यही कारण था कि मन मसोस कर अपने आप ही पुटअप करने में उस रिसीट को पढ़ने तो लगा पर मुझे अब बार-बार सरकारी भाषावादी लक्ष्मीराम साहब की याद आ रही थी।

अभी मैं उस रिसीट की टेकुरिंग ही कर पाया था कि मैंने देखा एक व्यक्ति पे-बिल जैसा हाथ में लिए खान साहब की ओर बढ़ा चला जा रहा है। इतना ही नहीं, देखते-देखते वह सामने खड़ा हो गया। उसने उन्हें एक लंबा-

चौड़ा-सा सलाम मारा। फिर पे-बिल उनके सामने फैला वह एक लिफाफे में से सौ-सौ तथा दस-दस के नोटों आदि को गिनते हुए उनके सामने बेहद सहजता से रखने-सा लगा।

यह, मेरे लिए और भी अधिक आश्चर्य की बात थी। मैं अभी पूरी स्थिति भापने का प्रयास कर ही रहा था कि मैंने देखा—खान साहब ने अकड़कर पे-बिल पर हस्ताक्षर कर, सौ-सौ के नोट उठाकर बाकी सभी रुपये उस आदमी से ले जाने का इशारों में आदेश दे दिया जो पे-बिल उनके पास लाया था। इतना ही नहीं, देखते-देखते उस व्यक्ति ने बचे शेष सत्तर-अस्सी रुपये अपनी जेब में कुछ इस इतमीनान से रखे जैसे वे उसके अपने पैसे हों या उन्हें पाने का उसे मौरूसी हक हो। फिर उसने लौटते-लौटते खान साहब को एक लंबा-चौड़ा पलटनिया सलाम मारा और तेज कदमों से कमरे से बाहर हो गया।

मगर खान साहब थे कि उनके लिए जैसे कोई खास बात न हो, पुन. किताब पढ़ने में व्यस्त हो आए। जो कि मुझे और भी अटपटा लगा। एक बार तो मेरे मन में विचार उठा—हो सकता हो इन्होंने उस व्यक्ति को पैसे देने हों। पर उनके सुंदर डीलडौल वाले पठानी चेहरे, उस व्यक्ति के पलटनिया सलाम तथा सुबह-शाम सेक्शन के चाय वाली बात ने मेरे सामने नया ही प्रश्न-सा खड़ा कर दिया। मेरे मन में उनके प्रति भले-बुरे अनेकों विचार उठने-से लगे। मैं जितना ही अधिक उनके बारे में सोचता उतना ही अधिक उलझता चला जाता। इतना तो क्या इसी उलझाव की स्थिति की तो उस समय पराकाष्ठा ही नहीं रही जब उनके नाम की रिसीट पुटअप कर मैं सेक्शन आफीसर साहब की टेबल पर रखने गया था। तब दास गुप्ता साहब ने फाइल खान साहब की ही ओर इशारा कर उल्टा मुझे लौटा दी। घबराकर मैं उनकी ही ओर बढ़ा था कि पता नहीं यह विचित्र आदमी क्या कुछ कमियां न निकाल दे। मगर उन्होंने बड़ी ही सहृदयता के साथ दस रुपये का नोट मेरी ओर जहां बढ़ाया, वहीं सरसरी निगाह से फाइल को देख पुन उसे सेक्शन आफिसर की टेबल पर रख देने का इशारा किया।

इन इशारों वाले आदेशों की अवहेलना करने का मुझ में अब साहस जरा भी शेष न था। उनसे दस रुपये का नोट पकड़ मैंने बिना किसी प्रतिवाद के फाइल सेक्शन आफिसर की टेबल पर रख दी। उन्होंने भी अब मुझे केवल सीट पर बैठने का इशारा दिया। जिसके कारण भारी-भारी कदमों से अब मैं अपनी टेबल की ओर चला आया। अंदर-ही-अंदर मुझे कुछ ऐसा लगा जैसे नये मंत्रालय की मेरी यह सीट एक ऐसी सीट है जो अपनी जमीर या आत्मा को गिरवी रखने की विद्या सिखाने वाली कक्षा की सीट से किसी भी तरह कम नहीं है बल्कि…



सेक्शन की चाय का यह दूसरा दौर था। इस दौर में भी सबको एक-एक बर्फी व समोसा मिला था यानी कि सुबह से एक-एक पीस कम। सेक्शन में चपरासी व दफ्तरी समेत कुल चौदह आदमी थे। पैसे इस बार भी खान साहब ने ही दिए थे। कुछ ऐसे जैसे यह उनका नैतिक फर्ज हो। इतना ही नहीं, वे अपने नाम की रिसीटों को पुटअप करने का तोहफा पांच और आदमियों को जहां बांट चुके थे वहीं दफ्तरी व चपरासी को पानी व खाने के बहाने पंद्रह-पंद्रह रुपये बांट चुके थे। जिसके कारण मुझे खान साहब बेहद दिलचस्प आदमी लगे।

मुझे अब अपने नये काम की अपने नाम की पहली रिसीट भी मिल चुकी थी। मैं उसे पुटअप करने फाइल को पढ़ने का प्रयत्न करने का दिखावा तो कर रहा था, पर मेरा मन उस पर जरा भी नहीं था। रह-रह कर मन में प्रश्न उठ रहे थे—आखिर यह मामला क्या है? तनखा में से इन्होंने करीब अस्सी-नब्बे रुपये कैशियर को दे दिए, ऊपर से सुबह से अब तक करीब अस्सी-नब्बे रुपये ये फालतू फंड में खर्च कर चुके हैं। तब फिर क्या ये रोज ऐसा ही करते हैं? यदि ये रोज ही ऐसा करते हैं तो इनके पास इतना रुपया आता कहां से है? माना कि कहीं से आता भी हो या इनके पास पहले से ही हो तो भी इस तरह बिना किसी मतलब से कौन पैसा देता है? कहीं इनके पीछे कोई विदेशी ताकत या कोई और बात तो नहीं?

इन्हीं प्रश्नों का उत्तर खोजने के प्रयत्न में सेक्शन के अन्य कुलीगों से बातें करना चाहता था। मगर हद यह थी कि काफी देर से उनमें से कोई भी कमरे से बाहर नहीं निकल रहा था। वे भी हर पल हर क्षण किताबों में ही झुके हुए थे। एक वे ही क्या, सेक्शन के और लोग भी काम पर ही लगे हुए थे। काफी देर बाद एक व्यक्ति कमरे से बाहर निकला था जिसके साथ ही मैं भी बाहर निकल आया था। पर मेरी उससे अधिक बातें नहीं हो सकीं।

कारण, उन्होंने मरी बात यह कहकर टाल दी कि एक तो उन्हें जानना खाला जी का घर नही। दूसरा इस बारे मे कभी फुरसत मे बात करेंगे।

पर फुरसत से बातें करने वाले क्षण तीसरे दिन तक भी नहो आए। अलबत्ता चौथे दिन डाक बाटते समय भोलू चपरासी से दो-एक बातें इस बारे मे अवश्य हुईं। उसने इनके बारे मे बताया कि वे एक बहुत बड़े अमीर के एकलौते बेटे हैं। और उसने कहा कि ये चारो मिनिस्टरों के लिचर वही तैयार करते हैं। कोई दूसरा होवे तो कहे—मैं यह काम करूं या कि यह ? पर ये हैं कि अपनी बात मनमाने की हालत मे होते हुए भी ऊपर के काम के अलावा अपनी सीट के काम को भी तहे दिल देखते हैं। अपनी सीट पर एक भी बकाया कागज नही रहने देते हैं। मगर मजबूरी यह कि बेफुरसती के कारण यह अपने रिसीटो को दूसरो को पहले-पहल पेंजिग व डेकेटिंग के लिए देते थे मगर सेक्शन के लोग हैं कि उनके अहसानो से दबे खुद ही उनकी रिसीटें पुटअप कर देने लगे। पर इससे क्या वे दूसरो की की हुई रिसीटों को देखे बिना नही रहते। नजर भी उनकी ऐसी है कि एक ही नजर मे सब कुछ देख लेते हैं कि उनके सम्मान के लायक दूसरो ने पुटअप की है या नही ? बाकी रही बात पैसो को बाटने की वह तो साहब···

इन बटते पैसो मे से चालीस रुपये मैं भी पा चुका था। पहले-पहले तो पैसे लेते समय आत्मसम्मान को ठेस लगी थी। पर अब पैसा लेते समय राहत का-सा ऐसा एहसास होता था जैसे बधे-बधायें ओवर टाइम को लेते समय। कारण, एक तो दमघोट महंगाई ने बचे-खुचे आत्मसम्मान तक को कत्ल कर दिया था। दूसरा, दस रुपये लेते समय मुझे ऐसा लगता था, जैसे ये रुपये मुझे झकझोर रहे हैं कि मै उनके विषय में गभीरता से कुछ-न-कुछ अवश्य सोचू कि आखिर इनके इस व्यवहार के पीछे राज क्या है ?

वैसे यह बात सोचने लायक थी भी। एक तो लक्ष्मीराम जैसे कजूसों से भरी पड़ी दुनिया मे खान साहब जैसा व्यक्तित्व इतना ही अजोबोगरीब लगता था जितना कि सरकारी दफ्तरो मे ओवर टाइम के लिए सौतो से भी बदतर लड़ाई लड़ने वाले बाबुओ के बीच ओवर टाइम से नफरत करने वाले व्यक्ति का मिलना। यही बात थी कि पहले अब भी मैं दफ्तर के माहौल तथा ओवर टाइम के बारे मे सोचता तो लगता प्राइवेट फर्मों मे काम करने वालो में तथा सरकारी दफ्तरो मे काम करने वालो के बीच अच्छे वर्कर होने के सिद्वात बिल्कुल अलग-अलग हैं। क्योंकि प्राइवेट फर्मों मे जहा काम देखा जाता है वहा सरकारी दफ्तरो मे चाम देखी जाती है। यहा तो सबसे अच्छा वर्कर तथा ओवर टाइम का हकदार वह है जो सरकारी काम की अपेक्षा अफसर के निजी कामो को अधिक दक्षता के साथ कर सके। पर ओवर टाइम

तथा सरकारी नौकरी की अपेक्षा में खान साहब के बारे में जितना ही सोचता उतना ही अधिक उलझ जाता था। एक तो वे अपने घर से पैसे लाकर बांटा करते थे। दूसरा सरकारी नजरिए से जिन एल० डी० सी० यानी कि लोअर डिवीजन क्लर्कों के हाथों के स्पर्श मात्र से फाइल को छूत की सी बीमारी के सर जाने का खतरा माना जाता था, वहीं वे अपने तोहफा का हकदार उन्हें भी मानते थे। मिस्टर खुल्बे तथा जुनेजा भी उतने ही रुपये तोहफा पा चुके थे जितने कि सेक्शन के अन्य असिस्टेंट व यू० डी० सी०। बल्कि इसके लिए तो उन्होंने बारी का नियम तय कर रखा था। कुछ ऐसे जैसे लोअर डिवीज़न क्लर्क भले ही सरकारी निगाहों में लोअर डिवीज़न सिटीजन हों, मगर उनकी नजरों में सभी एक जैसे हों। ये ही सब बातें थीं जो मुझे बलात उनके बारे में सोचने को विवश कर रही थीं। फिर एक बात और थी। मैं उनकी एक बात के बारे में पूरी तरह सोच भी नहीं पाता था कि तब तक उनके व्यक्तित्व की विचित्रता का कोई और ही नया पहलू सामने आ जाता था। ऐसे ही नये पहलुओं में अभी-अभी घटी वह घटना भी तो थी, जब मेरे पुराने दफ्तर के मेरे एक मित्र मुझ से मिलने आए थे। उसके आने पर उन्हें चाय पिलाने में उठा ही था कि मैंने खान साहब के मुंह से सुना, "मेरे दोस्त इस कमरे में जितने भी लोग हैं, उन सभी के दोस्त अल्लाह के बंदे के भी दोस्त हैं।"

तब मैं अवाक्-सा खान साहब को देखता ही रह गया था। पर जब मैंने सेक्शन के अन्य लोगों की ओर निगाह दौड़ाई ही थी कि मैंने पाया सभी इशारों ही इशारों में हम दोनों से बैठने का आग्रह-सा कर रहे थे। मजबूरन हम दोनों अपनी जगहों पर बैठ गए। किंतु हमें अभी बैठे दो-चार ही मिनट हुए थे कि भोलू चपरासी चाय की ट्रे तथा तीन-तीन बर्फी तथा पकौड़े ले आया। तब चाय पीते उन्होंने पहली बार खुलकर अपनी जबान खोली थी। वह भी कुछ इस लहजे में, जैसे वे मित्रता का दिखावा नहीं कर रहे हों बल्कि अपने किसी पुराने मित्र से मिल रहे हों। इतना ही नहीं, वे तब दरवाजे के बाहर तक मेरे मित्र को छोड़ने भी आए थे। हां, उसके बाद वे कुछ ऐसे लौटे थे जैसे हम दोनों के बीच और ज्यादा रहना उन्हें ठीक नहीं जंचा हो। तब हम दोनों कहां से अपनी बातें करते। उनके बारे में ही बातें करते रह गए थे। मेरे मित्र ने दो-चार बातें सुनते ही कहा था, "भाई तब तो ये एक इंटरस्टिंग व यूनिक कैरेक्टर हैं। तुम्हारे ही मतलब के लायक।"

खानसाहब की बातें सचमुच ही ऐसी थीं। बल्कि इससे भी दो कदम आगे की। क्योंकि मैं अभी अपने मित्र को विदा कर कमरे में लौटा ही था कि मैंने एक और अजीब ही वाकिया देखा। कमरे के सबसे बुजुर्ग खन्ना साहब उनके

सामने खड़े थे। उनके हाथ में सौ सौ के नोट थे। खान साहब बड़ी ही नम्रता से उनसे कह रहे थे, 'बिटिया को मेरी ओर से टीका दे देना। हां, अगर किसी किस्म की दिक्कत हो तो फिर बताना। किसी भी किस्म की हिचक न करना...''



सर्दियों का खिसकता छोटा सा दिन, सांझ में बदलने को उतावला था। बाहर लोग बस स्टैंड की ओर खिसकने शुरू हो गए थे। मगर हमारा सेक्शन था कि अभी सवा पांच नहीं बजा रहा था। अभी भी काम पर सभी के सभी कुछ इस कदर जुटे हुए थे जैसे छुट्टी होने में अभी पूरे दो घंटे हों। पहले दिन यह सब देख मेरे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा था पर अब यह बात मेरे लिए आम बन चुकी है। कारण, दीवाल की सरकारी घड़ी जब सवा पांच बजाती है तब ही सब अपना-अपना काम समेट एक साथ यहां कमरे से बाहर निकलते हैं। जबकि आपात स्थिति के डर से मैंने दूसरे सेक्शनों के लोगों को अपने-अपने कमरों में सिमटते तो देखा था मगर सच्चे दिल से नहीं। मैंने तो यहां तक देखा था कि दो-चार मिनट पहले सवा पांच की हाजिरी लगा घरों को लौटने की उतावली में लोग रहा करते थे। जबकि इस मेरे नये सेक्शन का एक भी आदमी समय से पहले न तो हाजिरी लगाता था और न अपना काम ही समेटता था।

पर आज बारिश के कारण सवा पांच बजने के बावजूद बस स्टैंड की ओर जाना कठिन हो आया था। सर्दियों की पहली बरसात एकाएक ही फूट-सी आई थी। खानसाहब समेत ठीक सवा पांच बजे सेक्शन के केवल दो-तीन ही लोग कमरे से बाहर निकले थे शेष लोग काम बंद कर कुछ देर तो बारिश थमने की इंतजार ही करने लगे फिर धीरे-धीरे और भी लोग छटने लगे। अब कमरे में मेरे, जुनेजा व शुक्ला के अलावा और कोई नहीं था। मेरे मन में बार-

वार खान साहव के वार में जानकारी हासिल करने की इच्छा जग आई थी पर सीधे उन लोगों से वातें करने का मैं साहस नहीं जुटा पा रहा था। तभी कमरे में छायी अजीव-सी खामोशी के वीच खुल्वे साहव ने मौन भंग किया, "क्यों भाई कैसा लगा आपको अपना यह नया सेक्शन ?"

"मुझे तो भाई इस सेक्शन की एक-एक वात अजीवोगरीव ही लगी है।···" खानसाहव के वारे में जानने, वातें आगे वढ़ाने के उद्देश्य से मैंने कहा, "फिर खानसाहव तो···"

"सच कहो तो यह सव उन्हीं की वदौलत है।" अव जुनेजा भी वोल उठा था, "पर हद यह कि ऐसा ये करते क्यों हैं ? खैर इनसे हमें मतलव भी क्या ? हमें तो···"

पर तभी वारिश एकाएक ही थक आई। हमारी वातों में फिर व्यवधान-सा आ खड़ा हुआ। वे दोनों ही सहसा उठ खड़े हुए। उन्होंने एक साथ साइकिल से जाना था। मन मसोस कर मैं भी उठ खड़ा हो आया। अवाक-सा मैं कभी वाहर थम आई वारिश को देख रहा था तो कभी उन दोनों को। वे थे कि मेरी पूरी तरह उपेक्षा-से करते यह कहते हुए कमरे से वाहर निकल आए कि धीरे-धीरे तुम सव कुछ जान जाओगे कि वे···



मैं तव कृषि भवन वाले वस स्टैंड की एक लाइन से जुड़ चुका था। आज वहां वेहद भीड़ थी। लगता था काफी लंवे समय से किसी लाइन की कोई भी वस नहीं आई है। हां, सड़क की दूसरी ओर वसों की प्रतीक्षा में केवल वीस-पच्चीस ही आदमी थे, जवकि इधर की ओर की दस-वारह लंवी-लंवी लाइनों में सभी जगह आदमी कुछ ऐसे खड़े थे जैसे किसी वड़े रेलवे स्टेशन के टिकट काउंटरों पर लोग खड़े हों। पता नहीं दिल्ली परिवहन के मालिकों-अफसरों ने आज वसों को डिपुओं से निकाला नहीं था या कृषि भवन के स्टैंड की याद दिलाने

वाले चार्ट में से इस नाम को अचानक ही काट दिया था। जो आज पहली बार इधर की किसी भी लाइन पर न तो कोई बस थी और न लाइनों में लगने या आदेश पाने की प्रतीक्षा में ही कोई बस इधर थी। जबकि केंद्रीय सचिवालय की ओर से बसें आज भी और दिनों की तरह आ रही थीं। पर उधर से ही भरकर आने के कारण वे भी आज इधर रुक नहीं रही थीं। जिसके कारण अपने जवान खून की फुर्ती दिखाने के शौकीन लोग चलती बसों में चढ़ने की उतावली में इधर-उधर टहल रहे थे।

मगर आज ऐसे फुर्तीले लोगों को भी मौका कम ही मिल पा रहा था। बसों के ड्राइवर यहां की भीड़-भाड़ से घबराकर इधर से खिसकते बसों को और अधिक तेज कर ले रहे थे। तभी एकाएक ही एक साइकिल सवार को बचाने की मजबूरी में एक बस कुछ धीमी क्या हुई कि आसपास की सारी भीड़ उसी की ओर लपकी। बस ड्राइवर 'कमीना साला' झल्लाया। बेचारा घबराया-घबराया साइकिल सवार किनारे लगा। पर देखते-देखते सात-आठ आदमी बस के अंदर। और बस एकाएक ही फिर रफ्तार पर। इस सबका नतीजा यह कि धड़ाम से दो आदमी जमीन पर। मगर सौभाग्य कि गिरे दोनों व्यक्ति अपने-अपने कपड़ों पर लगी धूल झाड़ने काबिल थे। उनमें से एक का कोट तथा पैंट फट गया था। वह फटी-फटी आंखों से फटे कपड़ों को कुछ ऐसे देख रहा था जैसे उसे अपनी जान बचने की खुशी की अपेक्षा कपड़ों के फटने का अधिक दुःख हो। लाइनों में खड़े लोग भी सहानुभूति की नजरों से उसे ही देख रहे थे। कुछ ऐसे जैसे अपने बाबूगिरी के तजुर्बों से वे यह भांप चुके हों कि यह भी उन सच्चे बाबुओं में से ही होगा जिनके पास बदलने तक को कपड़े नहीं हुआ करते हैं। अब लाइन में खड़े लोग बाबूगिरी की बातें करने में जुट गए थे। एक बाबू ने चर्चा यह कहकर छेड़ी कि अफसोस तो यह है हममें से एक भी किसी मिनिस्टर या सेक्रेटरी का साला नहीं हुआ करता है।

"साले से आपका मतलब गाली से है या श्रीमती के भाई से।" यह दूसरे बाबूजी की चुहलबाजी भरा स्वर था।

"तुम भी यार अजीब हो। ये लोग कोई हममें से थोड़े ही हुआ करते हैं। इनकी तो जात ही कुछ और हुआ करती है।" यह मेरे से पहले खड़े व्यक्ति का स्वर था।

अब अगल बगल के सारे लोग हंस पड़े थे। मैं भी भला अपनी हंसी कैसे रोक पाता। मगर इनकी बातों ने मुझे गर्ग साहब की याद ताजा करा दी। उनके घर मुझे मेरा दोस्त सूद प्रमोशन की पार्टी खिलाने ले गया था। तब उन्हें मैंने पहले-पहल देखा था। उनके आगे के सारे दांत नहीं थे। सिर का एक भी बाल काला नहीं था। पर प्रमोशन की खुशी ऐसी थी कि उनके

अंग-प्रत्यंग में वर्षों से रुकी फुर्ती एकाएक फूट-सी आई थी। उन्हें देख मैं सोच रहा था—इनको जरूर अफसर का प्रमोशन मिला होगा। क्योंकि मेरी निजी कल्पना के मुताबिक इससे कम में ऐसी फुर्ती संभव न थी। पर चाय व बर्फी खाते जब मुझे हकीकत का पता चला तो मैं दंग रह गया। उन्हें यू० डी० सी० का प्रमोशन मिला था। वह भी पूरे चौबीस वर्ष इंतजार करने के बाद। यही कारण था कि तब मुझे बर्फी एकाएक ही तीती तथा कड़वी-सी लगी थी। पर वे थे कि मारे खुशी के एक पीस और लेने का आग्रह कर रहे थे। तब मैंने अपने मन की बात बताकर जब और लेने की अनिच्छा जाहिर की तो उन्होंने एल० डी० सी० को लोअर डिवीजन सिटीजन की संज्ञा से विभूषित करते हुए कहा था, "हम लोग कोई मिनिस्टरों या सेक्रेटरियों के साले थोड़े ही हैं जो हमारे उद्धार के लिए कोई पंचवर्षीय योजना बने।" यही कारण था कि गर्ग साहब की तीखी इस याद के बीच उन्हें इधर खोजने का सा मैंने असफल प्रयत्न किया ही था कि तभी मैंने देखा कि मुझसे बीस-बाइस आदमियों के पीछे मेरे नये सेक्शन के कुलीग मिस्टर शर्मा खड़े हैं।

तभी एकाएक ही हमारी लाइन पर दो बसें आ गईं। लोगों की बाबूगिरी की बातों में व्यवधान खड़ा हो आया। लोग उत्सुकता से बस में चढ़ने लगे थे। पहली बस में मेरी बारी नहीं आ पाई थी, मेरी बारी आई थी दूसरी में। अब पहली बस में बारी न आने का मुझे ज़रा भी मलाल नहीं था। बल्कि मुझे बेहद प्रसन्नता थी कि बहुत संभव है शर्मा जी से खान साहब के बारे में बातें करने का मौका मिल जाए। यही कारण था कि बस के दरवाज़े के अंदर पांव रखते ही मैंने तीखी नज़रों से इधर-उधर झांका। अभी दस-बारह सीटें खाली थीं। संयोग से शर्मा जी के बगल की सीट भी खाली थी। मैं उसी पर जाकर बैठ गया। मेरा बैठना था कि वे बोल उठे, "आप इसी बस में आते-जाते हैं या···"

"जी मैं इसी में···। मैं तो नानकपुरा रहता हूं।" अब मेरी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा।

"बेहद भाग्यशाली हो भाई जो दफ्तर में पांव रखते ही यह सेक्शन।" शर्मा जी ने एक बार आसमान की ओर देखा फिर अपनी निगाहें मेरे ऊपर टिका दीं, "भय्या बहुत ही खुशकिस्मत···"

"वैसे तो सेक्शन सभी एक से···।" मैंने अब चुटकी-सी ली।

"नहीं, ऐसी बात नहीं। तुम्हें क्या मालूम, यहीं इस सेक्शन में बने रहने के लिए लोग प्रमोशनों तक को ठुकरा चुके हैं।" शर्मा जी ने एक गहरी सांस भरी, "यहां सुबह-शाम मिलने वाली बर्फी, चाय-पकौड़ों की ही बात नहीं। यहां तो···"

अब मेरी खुशी का ठिकाना ही नही था। जी चाहता था यदि ये जल्दी-जल्दी खान साहब के बारे मे सभी कुछ बता देते तो कितना अच्छा होता। पर वे एकाएक चुप हो आए थे। उनकी पल्कें गीली भी हो आई थीं। वे अब खिडकी से बाहर देखने लगे थे। मैंने भी देखा बाहर की ओर।

बस की लाइन धीरे-धीरे छोटी होती चली जा रही थी। दरवाजे के पास बेलाइन चढने वाले, कडक्टर की सीटी के बजने की इतजारी मे उतावली मे धीरे-धीरे आगे खिसक रहे थे। लाइन पर खडे व्यक्ति बार-बार 'लाइन प्लीज' कह रहे थे। पर बेलाइनी अब लाइन तोडने मे सफल हो गए थे। अदर बाबू लोग आपस मे एक-दूसरे से आधा इच आगे खिसकने की बातें कर रहे थे। मगर दो-चार लोग थे कि आगे खिसकने के बदले दरवाजे पर चिपके-से खडे थे। कुछ ऐसे जैसे या तो आगे बारिश हो रही थी और या वे जैसे जेब काटने मे अभ्यस्त पेशेवर जेबकतरे हो। क्योंकि जेबकतरे अधिकतर दरवाजे को ही अपने पेशे के अनुरूप समझते हैं। तभी कडक्टर ने सीटी दी और बस घरं घू करती आगे खिसकने लगी। बस के खिसकने के ही साथ शर्मा ने अपनी निगाहे फिर मेरी ओर कर दी, उनकी पलकें अभी भी गीली थी। पर अब वे मुझे अपने नये सेक्शन की तारीफ बताने लगे कि खान साहब की बदौलत यह सेक्शन एक ऐसा सेक्शन है जिसमे यदि किसी के ऊपर बडी से बडी मुसीबत भी आ जाए तो वह बेमौत मर नही सकता है। मिसाल के तौर पर तुम बस इसी से अदाजा लगा सकते हो कि पिछले साल मैं सरकारी लिहाज से सात महीने बिना तनखा रहा। मगर खान साहब की दुआ से मैं एक दिन भी बिना तनखा नही रहा। हर महीने ठीक पहली तारीख को मेरे पास उतने ही पैसे आते रहे जितनी मुझे तनखा मिला करती थी। इतना ही नही खन्ना को अपनी लडकी की शादी के लिए पैसे लेते तुम खुद देख ही चुके हो।

अब मैं अवाक्-सा उन्हे देखता ही रह गया। उनकी बातों की अविश्वस-नीयता के कारण नही बल्कि उनकी बातें करने का ढग इतना सहज व स्वा-भाविक था कि वह बलात अपनी ओर ध्यान खीच लेता था। तभी एकाएक ही उन्होंने मेरे अतीत के बारे मे पूछा, जो कि मुझे जरा भी अच्छा नही लगा। अपने एल० डी० सी० पने के खीझ भरे अतीत की मैंने एक-दो ही बातें बताई थी कि शर्मा जी अब खान साहब के बारे मे बताने के बदले अपने बारे मे बताने लगे कि आज से चार साल पहले तक या यो कहो, दफ्तर म पाव रखने के बाद के सात-आठ वर्षों के बाद से चार साल पहले तक मैं दफ्तर मे सबसे बदनाम आदमी था। होऊ भी कैसे नही, मेरा काम करने को जी ही नही करता था। जब भी कोई मुझसे काम करने की बातें करता। मेरा जी चाहता था कि काम करने के बदले उसका सर फोड दू। कारण, मेरे से काम सीखे

यू० पी० एस० सी० के असिस्टेंट अंडर सेक्रेटरी तक बन चुके थे। मगर मेरी एल० डी० सी० पने की चीर थी कि द्रौपदी की चीर की तरह खतम ही नहीं होती थी। नौकरी लगने के सात-आठ साल बाद तक तो पहले मैं पूरी लगन से काम करता था। पर उसके बाद, सात-आठ साल तक भी अपनी खाल बचाने लायक मैं काम करता रहा। मगर उसके बाद एक अजीब ही घटना घटी। एक ओर तीन लड़कियों के बाद हुए लड़के की मैं खुशी पूरी तरह नहीं मना पाया था कि मेरे सेक्शन आफिसर चरणदास ने मेरे घर यह मीमो भिजवा दिया कि डाक्टर से यह सर्टिफिकेट लिखवाओ कि औरत के पास या छोटे-छोटे बच्चों के पास मेरा रहना जरूरी था। जिस दिन मुझे यह मीमो मिला था उसी दिन सुबह लड़का हुआ था। मेरी सबसे बड़ी गलती यह थी कि पार्लियामेंट के दिनों में बिना पूर्व सूचना के दो-तीन दिन छुट्टी पर रह गया था। हालांकि जिस दिन मेरा लड़का हुआ उस दिन मैं अर्जी भिजवा चुका था। यही कारण था कि मेरा खून खौल आया था। अनुशासनात्मक कार्रवाई की परवाह किए बिना मैंने ड्यूटी ज्वाइन नहीं की। हां, दूसरे दिन दफ्तर जाकर चरणदास को खरी-खोटी सुना जरूर आया कि अपने समय तो सफेदी के दिनों तुम्हारा तीन दिन घर रहना जरूरी है। लड़की के लड़का होते समय महीने की छुट्टी पर रहना जरूरी है जबकि···? इस घटना का मुझ पर इतना बुरा असर पड़ा कि मैंने खाल बचाने लायक भी काम करना छोड़ दिया। बस अगर सच्चे दिल से काम करना शुरू किया तो सिर्फ खान साहब की बदौलत। इनके सेक्शन में बदली होने के पीछे भी मेरा व चरणदास का झगड़ा था। वह दिखने में जितना काला था मन का भी उतना काला। मजे की बात यह कि चुगली करने व एक-दूसरे को आपस में लड़ाने के अलावा उसे जरा भी काम नहीं आता था। सच कहो तो ऐसे ही अफसरों की वजह से लोग आए दिन काम-चोर बनते हैं।

बस अब मोती बाग रेलवे पुल पार कर चुकी थी। मैं उनकी बातें सुन तो जरूर रहा था मगर उनमें मुझे जरा भी दिलचस्पी नहीं थी। कारण, संयोग से बड़े अफसरों के संपर्क में रहने के कारण मेरे अनुभव कुछ और ही थे। ऐसे एक भी चरणदास से मेरा पाला नहीं पड़ा था। हालांकि अपने एल० डी० सी० ही बने रहने के प्रति खीझ मुझ में भी जरूर थी, पर इसके लिए मैं अपने उन अफसरों को जुम्मेदार नहीं मानता जिनके मातहत मैं काम करता था। मैं यह अच्छी तरह जानता था कि जिस तरह कानून उच्चतर के निम्नतर को सिर्फ आदेश हैं उसी तरह आदिकाल से ही गरीब को हमेशा-हमेशा के लिए गरीब ही बनाए रखने के लिए दुनिया भर में जो साजिशें चलती चली आ रही हैं यह हमारी इस तरह की जिंदगी का होना भी उसी तरह की

साजिशों में से एक का प्रतिफल है। यही वजह थी कि मैं इन बातों को सुनने के बावजूद केवल यही सोच रहा था कि कितना अच्छा होता कि यदि ये··· तभी एकाएक ही हड़बड़ाए-से शर्मा जी उठे। बोले, "अच्छा तो भाई फिर कल···"

मुझे अब यह समझने में जरा भी देर नहीं लगी कि ये मोती बाग नंबर एक में रहते हैं। बेहद अच्छा मौका-सा जान मैं भी उनके साथ ही उठ खड़ा हुआ। बस से उतरकर नीचे पाँव रखा ही था कि मुझे अपने बचपन के साथी नौटियाल की याद हो आई जो कि ठीक उसी के सामने के बड़े अफसरों वाले फ्लैटों में रहता था। यही कारण था कि मैंने एक बार नौटियाल के फ्लैट की ओर देखा तो दूसरी बार पालम को जाने वाली सामने की सड़क के दोनों ओर के लंबे-चौड़े लानों वाले बेहद बड़े अफसरों के फ्लैटों को देखा। तभी उसकी वह बात याद हो आई जो उसने दस-पंद्रह दिन ही पहले मुझसे कही थी। उसने *कहा था कि लोग पता नहीं छोटे-छोटे क्वार्टरों में कैसे रहते हैं और कैसे दो* कमरों के सेटों में से एक कमरा किराए पर देते हैं। मुझे तो अपना यह फ्लैट भी छोटा लगता है···। यही बात थी कि आज पहली बार नौटियाल साहब के टाइप के इधर के फ्लैटों के मुकाबले मुझे शर्मा जी व उनकी बगल वाले चपरासियों के क्वार्टर बेहद छोटे लग रहे थे। तभी सड़क को पार करते हुए एकाएक ही शर्मा जी बोले, "अच्छा तो आप भी मोती बाग वन में रहते हैं।"

"जी नहीं। मैं तो नानकपुरा ··।"

"अच्छा-अच्छा इधर कुछ काम होगा।" शर्मा जी अब प्रश्नभरी आँखों से मुझे देख रहे थे।

अब मैंने झूठ-मूठ में ही सिर हिलाया। क्योंकि मैं किसी काम के कारण थोड़े ही उतरा था। उनके साथ तो मैं केवल खान साहब के बारे में जानने भर को उतरा था। पर अब वे फिर एकाएक ही चुप हो आए थे। जबकि मैं प्रश्नभरी आँखों से उन्हें देखे जा रहा था कि कब ये आगे की बात बताएं। तभी वे थे कि सहसा रुककर खड़े हो आए। मुझे जबरदस्ती अपने घर चलने को कहने लगे। अब मेरी प्रसन्नता का ठिकाना ही नहीं रहा। मैं उनके साथ ही चल दिया।

शर्मा जी का क्वार्टर बड़े अफसरों के फ्लैटों के बिलकुल ही पीछे था। वहाँ पहुँचने में ज्यादा देर नहीं लगी। मगर वहाँ पहुँचकर दो-चार मिनट सुस्ता कर शर्मा जी मेरे सामने फिर बैठ गए और अपनी ही बातें सुनाने पर उतर आए कि एक जमाना था कि इस घर में हर पल कुहराम मचा रहता था। छोटे-छोटे मेरे अपने ही बच्चे, मुझसे कापी-पेंसिल-पेन के लिए पैसे माँगने में

डरते थे। मैं था कि उन्हें उनकी जरूरत के मुताबिक पैसे देने के बदले, उन्हें पुरानी चीजें दिखाओ या कुछ-न-कुछ बातें कहकर उनकी मांगें टालता ही नहीं था बल्कि कई बार तो उन्हें चीजें देने के बदले इस बेरहमी से पीट देता जैसे निहायत जरूरी चीजें पाना तो अलग उस इच्छा को जाहिर करने के क्षण भी केवल पिटने को वे पैदा हुए हों। जबकि अब···

श्रीमती शर्मा अब चाय की प्याली मेज पर रख चुकी थीं। पर शर्मा जी थे कि मेरी अनिच्छा के बावजूद मुझे यह ही समझाए चले जा रहे थे कि इस सबके पीछे कारण मेरी गरीबी थी। श्रीमती शर्मा उनकी बातें सुन मुस्कुरा रही थीं। तभी एकाएक ही मुझ से चाय पीने का इशारा करते हुए उन्होंने अंदर की ओर देखा। उनके देखते-देखते आठ-दस साल की उनकी लड़की एक प्लेट में बिस्कुट ले आई। बिस्कुट देखते ही उनकी प्रसन्नता का ठिकाना ही नहीं रहा। बोले, "जानते हो अब मेरे घर का नक्शा ही बदल गया है। जानते हो इसके पीछे राज क्या है ? इसके पीछे खान साहब का सेक्शन है सिर्फ···"

"जी।" अब मेरी प्रसन्नता का ठिकाना ही नहीं था।

"क्या बताऊं भाई मेरे लिए तो खान साहब ने इतना कुछ किया है जितना कि आज के जमाने में सगे भाई तक के लिए शायद ही कोई करे। जब मेरा एक्सीडेंट हुआ था तब मैं अपने आसपास खून-ही-खून देख बेहोश हो गया था। तब तीसरे दिन मुझे होश आया था तो संयोग से उस समय खान साहब ही मेरे सामने थे। तब अपने हाथ-पांवों में प्लास्टर बंधा देख व खून ही-खून की याद में जहां मैं सिहर उठा था। वहीं, मैं इस चिंता के कारण फूट-फूट कर रो पड़ा था कि अब मेरे बच्चों का क्या होगा ? कहीं ऐसा न हो कि मेरे मरने के बाद उनकी दुर्गति हो जाए। क्योंकि हमारे समाज में कमाने वाला तो एक होता है खाने वाले होते हैं उसके पीछे अनेक। तब खान साहब ने मुझे जहां दिलासा दिया था वहीं यह भी भरोसा दिलाया था कि तुम सिर्फ अपने ठीक होने की बात सोचो। बाकी पैसों के लिहाज से जरा भी चिंता नहीं करना। ऐसा कह देना, वैसे भी आसान नहीं। फिर कह कर निभाना तो बेहद कठिन। सच कहो तो खान साहब ने इसे निभाया ही नहीं बल्कि उससे भी कहीं ज्यादा मेरे लिए किया।" कहते-ही-कहते शर्मा जी एकाएक ही चुप हो आए। प्रश्न भरी आंखों से मुझे देखते ही रह गए, फिर दो-एक क्षण बाद ही बोले, "खैर ये बातें तो मेरी अपनी निजी हैं, कोई यह भी कह सकता है कि कभी-कभी किसी खास स्थिति में आदमी ऐसा एक मामले में कर भी देता है, पर जब कई और भी लोगों के साथ कोई ऐसा ही करे तो बात और है। इतना ही नहीं, सेक्शन के किसी भी आदमी की लड़की की शादी हो तो खान साहब उसे भी इम्दाद देते हैं। खन्ना को पूरे पंद्रह सौ रुपये

देते तुमने खुद ही देखा है । हां इस इम्दाद में समानता नहीं है। एल० डी० सी०, यू० डी० सी० व चपरासी को ये पूरे इक्कीस सौ रुपये देते हैं । असिस्टेंटों व सेक्शन आफिसर को खन्ना साहब के बराबर । इतना ही नहीं, सेक्शन के हर आदमी के घर जन्म व मौत के क्षणों में भी ये खुश व दुखी हुआ करते हैं । पर इसमें अंतर जरा नहीं, सबको बराबर इम्दाद दी जाती है । कारण उनका कहना है कि ऐसे में गमी व खुशी सबको बराबर ही हुआ करती है । इन बातों को सुनकर शायद तुम्हें विश्वास नहीं हो मगर ये सब बातें हकीकत हैं । बल्कि इनके बचपन के साथी सक्सेना साहब का तो कहना है इनका घर तथा मुहल्ले में भी यही हाल है । पहले पहले जब मैंने ये सब बातें सुनी या देखी तो मुझे इन पर अविश्वास तो नहीं हुआ पर मैं यह जानना चाहता था कि ऐसा ये क्यों करते हैं ? यही कारण था कि मैंने इस बारे में इनसे बातें करने की ठानी । पर जब मैंने इनके बारे में खन्ना से बातें की तो उसकी बात सुन मेरा माथा ही झन्ना उठा था । उसने बताया था कि एक दिन मैंने भी इनसे पूछी थी ये ही बातें । तब ये पहले तो हंस दिए । फिर बोले थे, 'ये ही बातें सैकड़ों लोग मुझ से पूछ चुके हैं । इनका पहले पहल मैं उत्तर दे देता था । पर अब मैं उत्तर देना भी ठीक नहीं समझता । पर खैर यदि तुम सुनना ही चाहते हो तो सुनो—मैं जो नौकरी करता हूं इसका कारण यह कि मेरे अब्बाजान चाहते हैं कि मैं नौकरी करूं । उन्हें फिक्र है कि कहीं घर रह उन्हें भिखारी न बना दूं । जहां तक कारण है पैसा बांटने का, वह यह है कि मैं पैसा इसलिए बांटता हूं कि सोचता हूं—मेरे चाचाओं व अब्बा मियां को अल्ला ताला ने जो इतनी बड़ी दौलत दी है उसे क्या कुत्ते खाएंगे । अच्छा है कि मैं और मेरे दोस्त सब मिल-बांटकर खाएं । और ' "



धीरे धीरे रात अब पूरी तरह खामोश हो आई थी । और तो और, घोग

कुआं से रामलाल कालेज की ओर जाने वाली औंधी लेटी सड़क तक मौन हो आई थी। कभी-कभार की आधी-जंगली आधी शहरी इस सड़क पर निशाचर-ट्रक गुज़र रहे थे। मैं फटी-फटी आंखों से अपलक उसे ही देख रहा था। जी चाहता था कि बगल में लेटी पत्नी व चारों बच्चों को ऐसे ही छोड़ सड़क की दूसरी ओर टूटी-अधटूटी उन झुग्गियों में जा छिपूं जो अभी भी दूधियों तथा बर्तन मलने वालों की यादें ताज़ा कराने बुलडोज़रों से बची हुई शेष पड़ी हैं। पर जैसे ही उधर जाने का विचार तेज़ी पकड़ता, उसी समय बाहर चौकीदार की चौकीदारी की ठक-ठक की आवाज़ सुनाई देती। मेरी बेचैनी और भी बढ़ आती। लगता जैसे भागकर उधर जाने से भी आज काम नहीं चलेगा। उधर तो क्या, सैकड़ों-हज़ारों मील भी यदि दूर मैं भाग जाऊं तब भी काम नहीं बनेगा। घबराकर मैं सिर भी रजाई से ढक लेता। उन मनहूस क्षणों को याद करने लगता तब मैं उन्हें बेरहमी से मारता था। अभी दस-पंद्रह ही ऐसे क्षण याद कर पाया था कि एकाएक ही लगा जैसे रजाई के अंदर छिपे सिर के बावजूद मैं कमरे की एक-एक गतिविधि को देख ही नहीं रहा हूं बल्कि मेरे चारों बच्चे भय से भयभीत, डरे-डरे से सहमे-सहमे से हाथ जोड़कर मेरे चारों ओर खड़े हो आए हैं। गीली पलकों के बीच मुझसे एक साथ कहने से लगे हैं—पापा चाहे हमें आधा पेट ही खाना दो, मगर पेंसिल, कापी, किताब व स्कूल की ड्रेस आदि हमें ज़रूर दे देना। हमें हमारी आंटियां या मास्टर जी बड़ी ही बेरहमी से मारा करते हैं। वैसे हमें स्कूल की मार की ज़रा भी चिंता नहीं थी, पर हमें पिटते देख हमारे सहपाठी हमें चिढ़ाते हैं जो यह कहते हैं कि तुम्हारे पापा क्या इतने गरीब हैं जो छोटी-छोटी चीज़ें तक तुम्हें नहीं दे पाते। यह ही बात, हम से बरदाश्त नहीं होती है। यही कारण है जो हम तुमसे चीज़ें मांगते हैं, मजबूर होकर मांगते हैं। वर्ना तो हमें जो कुछ भी पढ़ाया जाता या बताया जाता उसे हम अपनी-अपनी दिमाग की स्लेट या कापी पर उतार लेते। हमें अपने पर विश्वास था कि हम फिर भी पास हो ही जाते। पर अफसोस तो यह है कि हमारे इस विश्वास से भी काम नहीं चलता है। हमारे दिमाग की स्लेट व कापियों को पढ़कर मास्टर नंबर थोड़े ही देते हैं। यदि ऐसे नंबर मिलने लगें तो दुनिया में आज जो करोड़ों-अरबों लोग अनपढ़ व गंवार हैं वे आज के तथाकथित पढ़े-लिखों को पीछे धकेल नहीं देते। क्योंकि किताबी ज्ञान व प्रतिभा में तो मीलों का अंतर हुआ करता है। यदि ऐसी बात न हो तब तो फिर ज़्यादा किताबों का बोझा ढोने वाले सभी लोग, दुनिया में ऐसा विलक्षण काम करने में सफल हो जाते। मानवता का इतिहास इस बात का साक्षी है कि बौद्धिक दृष्टि से अजर-अमर वे लोग अधिक हैं जो समय पर किताबों का बोझ ढो ही नहीं पाए हैं। ख़ैर यह बात बहुत दूर की है। इन बातों में धरा

भी कुछ नही है। हम तो इन्हे महज इसलिए कह रहे हैं कि हमारे द्वारा कम नबर लाने के कारण दुखी न होओ और उसी दुख के कारण हमे ज्यादा मारो नही। जरा सोचो तो, हमारे सिर के जिन बालो को कई बार नोच-नोच उखाड़ने पर तुम तुल जो आते हो। उनके बारे मे यह जरा सोच भर लो कि ऐसा करने के कई दिनो तक हमारा सिर दुखता दुखता रहता है।

'नही आंटी नही। पापा ने आज कहा है कि कल कापी जरूर ला दूगा', तभी सपने मे मेरी सबसे छोटी बिटिया आसू बड़बडा उठी।

मेरा माथा अब फट ही-सा आया। मुझे याद आया कि वह पिछले चार दिनो से कापी माग रही थी जिसे मैं शर्मा जी के यहा से लौटते ले आया था, मगर तब तक वह सो आई थी। फिर विचार उठा, अभी उसे उठाकर लाई कापी दिखा दू पर कर कुछ भी नही पाया। हा, मेरा मन आत्मग्लानी से भर आया। घबराकर मैंने अपने दोनो हाथो से कान बंद कर लिए। पर इससे क्या ? इसस तो मेरी छटपटाहट और भी तेज हो आई। एकाएक शर्मा जी की याद आते ही मुझे राहत-सी मिली। इतना ही नही, मुझे अचानक ही लगा जैसे शर्मा जी अब भी मुझ से कह रहे हैं—हम जैसो के बच्चे जो अक्सर पिटते है उसके पीछे सिर्फ हमारी गरीबी होती है, सिर्फ गरीबी। यह ही तो कारण था कि शर्मा जी के यहा से लौटने के बाद से मैं केवल यह सोच रहा था कि शर्मा जी की बात मे कितनी जान है। पर इस बारे मे मैं जितना ही सोचता उतना ही अधिक उलझ ही नही जाता बल्कि मुझे तो आज पहली बार यहा तक लगने लगा—यह तो मेरे बच्चो को कोई और ही बचा देता है वर्ना मैं तो···

बाहर चौकीदार अब सामने वाली सडक पर खड़े-खड़े बासुरी मे कोई नेपाली धुन निकाल रहा था। पता नही बाहर तेज चल रही बर्फीली हवा ने उसे, उसके बच्चो व उसकी पत्नी की याद ताजा कर दी थी और या वह सामने वाली उस सडक को उसके नामकरण हो सकने की आस बधा रहा था। जो, अब तक भी किसी राजनीतिज्ञ के नाम के साथ जुड सकने के सौभाग्य से वचित थी। अब मैंने रजाई के अदर थके अपने सिर को बाहर निकाल लिया। अपलक मैं चौकीदार को ही देख रहा था। मेरे मन मे ख्याल आया कि इसके बिना इसकी पत्नी भी तो इसकी याद मे ऐसा ही कर रही होगी ? इतना सोचना ही था कि मैंने अपनी पत्नी की ओर देखा। तभी एकाएक पत्नी का हाथ आदतन मेरे चेहरे पर पडा। पर जाने क्यो इसके बावजूद इस बार मुझे ऐसे लगा जैसे पत्नी मेरी बगल मे सोयी नही है बल्कि मुझसे सैकडो-हजारो मील दूर है।

बगल के क्वार्टरो मे किसी की दीवाल घडी तीन बजा रही थी। पर

कुआं से रामलाल कालेज की ओर जाने वाली औंधी लेटी सड़क तक मौन हो आई थी। कभी-कभार की आधी-जंगली आधी शहरी इस सड़क पर निशाचर-ट्रक गुजर रहे थे। मैं फटी-फटी आंखों से अपलक उसे ही देख रहा था। जी चाहता था कि बगल में लेटी पत्नी व चारों बच्चों को ऐसे ही छोड़ सड़क की दूसरी ओर टूटी-अधटूटी उन झुग्गियों में जा छिपूं जो अभी भी दूधियों तथा बर्तन मलने वालों की यादें ताज़ा कराने बुलडोज़रों से बची हुई शेष पड़ी हैं। पर जैसे ही उधर जाने का विचार तेजी पकड़ता, उसी समय बाहर चौकीदार की चौकीदारी की ठक-ठक की आवाज़ सुनाई देती। मेरी बेचैनी और भी बढ़ आती। लगता जैसे भागकर उधर जाने से भी आज काम नहीं चलेगा। उधर तो क्या, सैकड़ों-हज़ारों मील भी यदि दूर मैं भाग जाऊं तब भी काम नहीं बनेगा। घबराकर मैं सिर भी रजाई से ढक लेता। उन मनहूस क्षणों को याद करने लगता तब मैं उन्हें बेरहमी से मारता था। अभी दस-पंद्रह ही ऐसे क्षण याद कर पाया था कि एकाएक ही लगा जैसे रजाई के अंदर छिपे सिर के बावजूद मैं कमरे की एक-एक गतिविधि को देख ही नहीं रहा हूं बल्कि मेरे चारों बच्चे भय से भयभीत, डरे-डरे से सहमे-सहमे से हाथ जोड़कर मेरे चारों ओर खड़े हो आए हैं। गीली पलकों के बीच मुझसे एक साथ कहने से लगे हैं—पापा चाहे हमें आधा पेट ही खाना दो, मगर पेंसिल, कापी, किताब व स्कूल की ड्रेस आदि हमें जरूर दे देना। हमें हमारी आंटियां या मास्टर जी बड़ी ही बेरहमी से मारा करते हैं। वैसे हमें स्कूल की मार की ज़रा भी चिंता नहीं थी, पर हमें पिटते देख हमारे सहपाठी हमें चिढ़ाते हैं जो यह कहते हैं कि तुम्हारे पापा क्या इतने गरीब हैं जो छोटी-छोटी चीज़ें तक तुम्हें नहीं दे पाते। यह ही बात, हम से बरदाश्त नहीं होती है। यही कारण है जो हम तुमसे चीज़ें मांगते हैं, मजबूर होकर मांगते हैं। वर्ना तो हमें जो कुछ भी पढ़ाया जाता या बताया जाता उसे हम अपनी-अपनी दिमाग की स्लेट या कापी पर उतार लेते। हमें अपने पर विश्वास था कि हम फिर भी पास हो ही जाते। पर अफसोस तो यह है कि हमारे इस विश्वास से भी काम नहीं चलता है। हमारे दिमाग की स्लेट व कापियों को पढ़कर मास्टर नंबर थोड़े ही देते हैं। यदि ऐसे नंबर मिलने लगें तो दुनिया में आज जो करोड़ों-अरबों लोग अनपढ़ व गंवार हैं वे आज के तथाकथित पढ़े-लिखों को पीछे धकेल नहीं देते। क्योंकि किताबी ज्ञान व प्रतिभा में तो मीलों का अंतर हुआ करता है। यदि ऐसी बात न हो तब तो फिर ज्यादा किताबों का बोझा ढोने वाले सभी लोग, दुनिया में ऐसा विलक्षण काम करने में सफल हो जाते। मानवता का इतिहास इस बात का साक्षी है कि बौद्धिक दृष्टि से अजर-अमर वे लोग अधिक हैं जो समय पर किताबों का बोझ ढो ही नहीं पाए हैं। खैर यह बात बहुत दूर की है। इन बातों में धरा

भी कुछ नहीं है। हम तो इन्हें महज इसलिए रह रहे हैं कि हमारे द्वारा कम नंबर लाने के कारण दुखी न होओ और उसी दुख के कारण हमें ज्यादा मारो नहीं। जरा सोचो तो, हमारे सिर के जिन बालों को कई बार नोच-नोच उखाड़ने पर तुम तुल जो आते हो। उनके बारे में यह जरा सोच भर दो कि ऐसा करने में कई दिनों तक हमारा सिर दुखता दुखता रहता है।

'नहीं आंटी नहीं। पापा ने आज कहा है कि कल कापी जरूर ला दूंगा', तभी सपने में मेरी सबसे छोटी बिटिया आसू बड़बड़ा उठी।

मेरा माथा अब फट ही-सा आया। मुझे याद आया कि वह पिछले चार दिनों से कापी माग रही थी जिसे मैं शर्मा जी के यहा से लौटते ले आया था, मगर तब तक वह सो आई थी। फिर विचार उठा, अभी उसे उठाकर लाई कापी दिखा दू पर कर कुछ भी नहीं पाया। हा, मेरा मन आत्मग्लानी से भर आया। घबराकर मैंने अपने दोनों हाथों से कान बंद कर लिए। पर इससे क्या? इसस तो मेरी छटपटाहट और भी तेज हो आई। एकाएक शर्मा जी की याद आते ही मुझे राहत-सी मिली। इतना ही नहीं, मुझे अचानक ही लगा जैसे शर्मा जी अब भी मुझ से कह रहे हैं—हम जैसों के बच्चे जो अक्सर पिटते हैं उसके पीछे सिर्फ हमारी गरीबी होती है, सिर्फ गरीबी। यह ही तो कारण था कि शर्मा जी के यहा से लौटने के बाद से मैं केवल यह सोच रहा था कि शर्मा जी की बात में कितनी जान है। पर इस बारे में मैं जितना ही सोचता उतना ही अधिक उलझ ही नहीं जाता बल्कि मुझे तो आज पहली बार यहा तक लगने लगा—यह तो मेरे बच्चों को कोई और ही बचा देता है वर्ना मैं तो···

बाहर चौकीदार अब सामने वाली सड़क पर खड़े-खड़े बांसुरी में कोई नेपाली धुन निकाल रहा था। पता नहीं बाहर तेज चल रही बर्फीली हवा ने उसे, उसके बच्चों व उसकी पत्नी की याद ताजा कर दी थी और या वह सामने वाली उस सड़क को उसके नामकरण हो सकने की आस बधा रहा था। जो, अब तक भी किसी राजनीतिज्ञ के नाम के साथ जुड़ सकने के सौभाग्य से वंचित थी। अब मैंने रजाई के अदर घुसे अपने सिर को बाहर निकाल लिया। अपलक मैं चौकीदार को ही देख रहा था। मेरे मन में ख्याल आया कि इसके बिना इसकी पत्नी भी तो इसकी याद में ऐसा ही कर रही होगी? इतना सोचना ही था कि मैंने अपनी पत्नी की ओर देखा। तभी एकाएक पत्नी का हाथ आदतन मेरे चेहरे पर पड़ा। पर जाने क्यों इसके बावजूद इस बार मुझे ऐसे लगा जैसे पत्नी मेरी बगल में सोयी नहीं है बल्कि मुझसे सैकड़ा-हजारों मील दूर है।

बगल के क्वार्टरों में किसी की दीवाल घड़ी तीन बजा रही थी। पर

मेरी आंखों में फिर भी नींद नहीं थी। हां, अब बोझिलपन कुछ कम हो आया था और कुछ राहत का सा मैं एहसास कर रहा था। पर अब मेरे मन में बार-बार खान साहब के बारे में विचार उठ रहे थे—जब ये किसी भी आदमी का दुःख देख नहीं सकते। जरूरत के मुताबिक पैसे की मदद करते हैं। आखिर यह मामला है क्या ? पैसे वाले तो दुनिया में सैकड़ों-लाखों लोग हैं। पर कौन बांटता है पैसा इनकी तरह। तब इनके पास कहीं ऐसी दौलत तो नहीं जिसमें लोगों की आहें छिपी हों। जो, आदमी को चैन नहीं लेने देती हैं। या फिर खान साहब एक ऐसे आदमी तो नहीं जो सच्चे अर्थों में टूटे इंसानी दिलों से हमदर्दी रखते हैं। पर तभी ख्याल आता दुनिया में ऐसी एक भी मिसाल नहीं कि इंसानी हमदर्दी रखने वाला दौलत वाला भी हो। आज तक तो यह ही देखा गया है कि ऐसा आदमी हमेशा ही भूखा व नंगा ही रहा है जबकि···



पिछले दफ्तर से अपनी कमजोर आर्थिक स्थिति का बहीखाता एल० पी० सी० यानी लास्ट पे सर्टिफिकेट लेकर मैं अभी अपने नये दफ्तर की बिल्डिंग के अंदर घुसा ही था कि सामने शर्मा जी एक व्यक्ति के साथ आते दिखाई दिए। उन्हें देखते ही एक बार तो इच्छा हुई कि इनसे खान साहब के बारे में मैं फिर बातें करूं। पर मन मसोसने वाली स्थिति थी। कारण मुझे पिछले दफ्तर में काफी देर हो गई थी। मगर तभी शर्मा जी ने मुझे देखा ही क्या कि कॉफी पीने साथ चलने के लिए जहां जोर देने लगे वहीं अपने साथी से मेरा परिचय कराने लगे कि ये खान साहब के बचपन के सवालों अजीज हैं। यदि तुम वाकई में उनके बारे में जानना चाहते हो तो उनके बारे में तुम इनसे बहुत कुछ जान सकते हो। ये तो भाई उनके सहपाठी भी हैं।

अब तो मेरी प्रसन्नता का ठिकाना ही नहीं रहा। इससे अधिक उपयुक्त मौका मुझे और क्या मिल सकता था। मैं बिना किसी प्रतिवाद के उनके साथ

हो लिया। हालाकि मुझे चाय या कॉफी पीने की इच्छा जरा भी नही थी। क्योकि मैं अभी-अभी एल० पी० सी० दिलाने वाले बाबूजी के साथ कॉफी पीकर लौटा था। कॉफी मुझे वैसे भी अच्छी नही लगती थी। पर विवशता भी कोई चीज होती है, जो आदमी को कई बुरे से बुरे काम करने को भी मजबूर कर देती है। यह मजबूरी नही तो और क्या थी कि बिना कॉफी एल० पी० सी० के लिए मुझे कम से कम सात-आठ चक्कर काटने पडते। जबकि इसके कारण मेरे ये सारे चक्कर सिमट आए थे। पर खान साहब के मित्र के साथ कॉफी पीने का मजा ही कुछ और होने के कारण मेरी अनिच्छा भी इच्छा मे बदल आई। बल्कि मेरे मन मे तो यहा तक विचार उठा यदि इसके लिए दर्जनो कॉफी के कप भी पीने पडे तो भी ठीक है।

कॉफी हाउस मे आज जरा भी भीड नही थी। वैसे भी आजकल तो कैंटीनों मे भीड कम ही हुआ करती है। कारण कैंटीनो म गप्पें हाकने वाले बाबुओं को पकडने के लिए, तस्करो को पकडने के समान ही अभियान चला हुआ है। कॉफी हाउस के दस-बारह सोफो व आठ-दस मेजो मे केवल चार जगह ही दो-दो तीन-तीन बाबू बैठे थे। बेचारे वेटर फटी-फटी आखो से इडियन कॉफी हाउस के गेट की ओर देखने के बदले आपसी बातो मे कुछ ऐसे मशगूल थे जैसे जानते हो कि यदि भूले-भटके दो-एक दिल वाले बाबू आ भी जाए तो भी कोई खास बात नही। इतना ही नही, एक वेटर हमारे सामने कॉफी रख पुन. आपसी बातो मे मशगूल हो चुका था। पर कॉफी न तो शर्मा जी बना रहे थे न सक्सेना साहब ही। अत यह भार मैंने ही उठाना ठीक समझा। मैं अभी दो कपो मे चीनी डाल ही पाया था कि शर्मा जी ने मेरा एल० पी० सी० उठा लिया। उनका उसे उठाना ही था कि मैं अदर ही अदर घबरा उठा कि मेरी यह तनखा का विवरण थोडे ही है। यह तो मेरी दफ्तरी कर्जदारी का खाता-सा है। त्योहार, साइकिल तथा जी० पी० फड आदि कोई भी मिल सकने वाला कर्ज मैंने छोडा नही था। तभी मेरे तनखा के विवरणो को पढते ही वे एकाएक ही बोले, "भाई कितने बच्चे हैं।"

"चार।" मेरे मुह से अनायास ही निकला पर मुझे लगा जैसे मैं अपने नये कुलीग शर्मा जी से बातें नही कर रहा हू बल्कि परिवार नियोजन के नस-बदी वाले ऐसे डाक्टर के पल्ले पड गया हू जो बलात इस अभियान मे शरीक होने की धमकी मुझे दे रहा है।

"तब तो निश्चय ही आपका कर्ज होगा।" शर्मा जी के स्वर मे गहरा तजुर्बा-सा था। यह कभी हो नही सकता कि तीन सौ पचपन म तुम्हारा गुजारा हो जाए।

अब मेरा सिर स्वत ही झुक आया। अपनी नम्रता के प्रकट होने पर

ऐसा ही आना स्वाभाविक ही था। महीने के आखिरी दिन तनखा इतनी जरूर मिलती थी, मगर वह चालीस घंटे से पहले ही गायब हो जाती थी। कई बार तो ये घंटे भी व्याज वालों से छिपकर काटने पड़ते थे। उसके बाद दस तारीख तक नंगी जेब ही रहना पड़ता था। जैसा कि लगभग पिचानवें प्रतिशत बाबुओं को रहना ही पड़ता है। हां, उसके बाद अच्छे दिन शुरू हो आते थे। कारण उसके बाद कर्ज लेने का दौर शुरू हो आता था जो पूरे महीने जारी रहता था। हालांकि इस बात से बचने के लिए जी० पी० फंड से पैसे निकालने के लिए जिंदा बाप को मैं तीन बार मार चुका था और पांच बार लगभग हर साल दूसरों की बहिनों को अपनी सगी या आश्रिता बहिन बना चुका था। भला ऐसी स्थिति में सिर झुके नहीं तो और क्या हो। पर जुबान से यह सब भी स्वीकार नहीं कर पा रहा था। आखिर था तो सफेदपोश बाबू ही।

''तुम्हें अपने बच्चों की कसम। तुम सच बताओ कि तुम्हें कुल'''।'' अब शर्मा जी मेरे गले से पड़ आए थे, ''जानते हो तुम अब उन खान साहब के सेक्शन में काम करते हो। जो'''जो अक्सर कहा करते हैं कि वैसे तो दुनियां में सैकड़ों-करोड़ों लोग हैं जो इम्दाद के हकदार हैं। मगर उतनों की मदद करना आसान तो क्या असंभव है। मैं सोचता हूं अपने संपर्क वालों की'''''

मैं अब अवाक-सा शर्मा जी को देख रहा था। जाने क्यों, मुझे लग रहा था कि मुझसे ये बातें शर्मा जी नहीं कर रहे हैं बल्कि स्वयं खान साहब कर रहे हैं। अब मैं उसी कर्ज के ब्योरों को याद कर मन-ही-मन जोड़ रहा था। जिसकी याद करने भर से ही मेरा पहले जी घबरा उठता था कि दिन पर दिन कर्ज बढ़ ही रहा है। बच्चे भी बड़े होते ही जा रहे हैं उधर व्याज के कारण आए दिन तनखा कम होती चली जा रही है। तब ऐसे ही घबराहट वाले क्षणों में तो करते थे, बच्चे कापी-किताबों आदि की मांगें। जिसके कारण मेरा दम-सा घुटने लगता था, पर जाने इस बार क्या बात थी कि मैं यह जोड़ चौबीस सौ तक जोड़ गया मगर जरा भी घबराहट नहीं हुई। बल्कि एक अजीब-सी शांति का सा एहसास मन में हो रहा था।

''मेरे अजीज। हर समय एक बात का ध्यान रखना, दुनिया में कर्जदार जब भी कर्ज लेता है, तब वह सिर्फ कर्ज ही नहीं लेता है'', कहते-कहते शर्मा जी के चेहरे में घृणा व नफरत की रेखाएं खिंच आईं, ''बल्कि यह अच्छी तरह मान लो कि जिस समय वह कर्ज लेता है उस समय वह अपनी उस इज्जत व ईमानदारी को ऐसे गिरवी रखता है जिसे साहूकार भरे बाजार किसी भी समय नंगा कर सकता है। इसीलिए मेरे दोस्त तुम्हारी इज्जत व ईमानदारी को तुम्हें फिर दिलाने—ये बातें खान साहब की ओर से पूछी जा रही हैं। उन्होंने तो ऐसा आदेश उसी समय दे दिया था जब तुमने दस रुपये'''''

मैं ठगा-सा शर्मा जी व सक्सेना साहब को देखता रह गया। जी में आया कि अपने दैन्य भरे जीवन के एक-एक परत को उसके सामने खोल दूं कि कई बार तो यहां तक होता था कि एक ओर लोग पहली तारीख की खुशी मना रहे थे, दूसरी ओर मैं भूखे पेट सुलाए बच्चों को देखता ही नहीं रह जाता था। तब कई बार मुझे ऐसे वे क्षण याद आने लगते जब अपने को रिश्वत देने आए व्यापारियों को फटकारकर मैं लौटा देता था। हां, कई बार यह सोचने को विवश हो जाता था कि जब ईमानदारी का अर्थ भूखा मरना है तो यह ईमानदारी भली या वह बेइमानी जिसमें जहां एक ओर हाथ में पैसा-ही-पैसा दूसरी ओर औरों पर रौब अलग ! इतना ही नहीं कई बार तो मैं केवल यह सोचता-सोचता चला जाता था कि जब अभी खर्चा नहीं चल पा रहा है तो आगे चलकर मेरा क्या होगा ? तब क्या आगे चलकर मजबूरीवश दुनिया के कई बदनसीब पिताओं को जिस तरह अपने होनहार बच्चों को भी अपनी आर्थिक कमजोरी के कारण दिन पर दिन बेवकूफ बनते देखना पड़ता है, जिस तरह खाना न जुटा पाने के कारण कइयों को उन्हें जहर देने तक को मजबूर होना पड़ता है और या कई बेहद बदनसीब पिताओं को दयनीयता की हालत में ब्याज चुकाने अपनी जवान लड़कियों के सतीत्व के साथ खिलवाड़ कराने को विवश होना पड़ता है। क्या मुझे भी ऐसा ही कुछ करने या कराने को जीना पड़ेगा ? वह भी समानता वाले नारेबाजी के ढिंढोरों के बीच ! पर प्रकट में एक शब्द भी नहीं बोल पाया। अपलक उन्हें देखता भर रह गया।

पर अब सक्सेना साहब आप बीती सुनाने लगे। पता नहीं, वे मेरी मानसिकता को ताड़ गए थे या और कोई बात थी। वे कह रहे थे, 'दुनिया में कर्जदारी क्या चीज होती है ? यह हमारे अपने घर की बात है। मुझे आज भी अच्छी तरह याद है वह सुबह, जब खान साहब के अब्बाजान अपने चार प्यादों के साथ आए थे। तब वे मेरे अब्बाजान से बोले थे, 'तुम्हें तीन सुबहों की मोहलत दी जाती है। चौथी सुबह हम ठीक इसी वक्त आएंगे। हिसाब न मिलने पर माली व इंसानी जो कुछ भी दौलत तुम्हारे पास होगी, हम उसी को ले जाएंगे। समझे ...'

"तब मैं आठ नौ साल का जरूर था। मगर इन बातों को जानता था। जानता था कि अब्बाजान लाख भी कोशिश करें, पैसों का इंतजाम नहीं कर सकते हैं। मैं यह भी जानता था कि इंसानी दौलत से मतलब मेरी जवान बहन से है। इतना ही नहीं, मैं यह भी जानता था कि जिस आदमी ने अब्बाजान को धमकी दी है वह कोई और नहीं है। वह तो वही आदमी है जिसने कुछ दिन पहले हमारे पड़ोस के उस घर में तमाशा खड़ा कर दिया था जहां उस घर के एकमात्र कमाने वाले की ही मौत हुई थी। तब एक ओर कफन

तक के लिए चंदा इकट्ठा किया गया था। वहीं उन्होंने कड़क कर लाश उठाने की ही तैयारी के बीच कहा था, 'लाश उठाने की हिमाकत न करो। लाश तुम तब उठा सकते हो जब हमारा हिसाब चुकता करोगे। यही कारण था कि इस धमकी के साथ ही हमारे घर में कुहराम मच आया था। हालांकि मेरे अब्बाजान एक ऐसे नामी वैद्य थे जिन्होंने दुनिया का भला ही किया था। कई ऐसे मरीजों तक का इलाज किया था जिनके पास इलाज तक के लिए पैसे नहीं थे। वैसे तो दुनिया में यही सुना जाता है कि जो भी आदमी दूसरों की भलाई करता है उसका अपने आप भला हो जाता है। भलाई आदमी के अवश्य काम आती है, पर मेरे अब्बाजान के काम उनकी भलाई नहीं आई। मुसीबत के वक्त कौन साथ देता है। ऐसे में तो अपने भी पराए हो जाते हैं। सगा भाई भी सगा नहीं रहता है यही बात थी कि अब्बाजान ने तथा अम्मा ने धमकी के क्षण से ही खाना छोड़ दिया था। पर इससे पैसे थोड़े ही जुड़ते। अब्बा-जान ने ऐड़ी-चोटी का ज़ोर लगा दिया पर पैसे नहीं जुड़ पाए तो नहीं ही जुड़े। अब एक ओर चौथी सुबह आने में कुछ ही घंटे शेष थे। दूसरी ओर, मेरे अब्बाजान मेरी दीदी को ज़हर देने की तैयारी कर रहे थे। मैं यह सब देख रहा था। पर मेरी समझ में यह नहीं आ रहा था कि किया क्या जाए ? जी चाहता था कि ज़हर की प्याली को तोड़कर टुकड़े-टुकड़े कर दूं। ओफ पिता तो पिता ही होता है। अब्बाजान थे कि प्याला दीदी को देने से कसमसा रहे थे। तभी दरवाज़े पर दस्तक सुनाई दी।

"दरवाज़े पर दस्तक क्षण-प्रति-क्षण तेज़ होती चली आई। पर दरवाज़ा किसी ने भी नहीं खोला। हालांकि पहले रात आधी रात जब भी कोई दरवाज़ा खटखटाता, अब्बाजान उठ खड़े होते थे क्योंकि दरवाज़े खटखटाने का सीधा अर्थ किसी-न-किसी घर से उनको बुलावा होता था। इतना ही नहीं आज ज़िंदगी में पहली बार अब्बाजान ने बैठे-बैठे जवाब दिया, 'आज मैं कहीं नहीं जा सकता, मेरी तबीयत खुद ही ठीक नहीं।' तभी बाहर से भर्राई-भर्राई-सी एक आवाज़ सुनाई दी, 'वैद्य जी रहम करो, अल्लाह के नाम पर रहम करो।' इतना सुनना ही था कि अब्बाजान उठे, 'आज मैं किसी भी हालत में नहीं।'

" 'वैद्य जी···मेरा अशरफ···'

' "क्या है।' अब्बाजान के स्वर में कड़ाई थी। एकाएक ही झटके के साथ उन्होंने दरवाज़ा खोल दिया। दरवाज़े का खुलना ही था कि हम सब दंग रह गए। गैस की रोशनी में इनके अब्बाजान के हाथ में अम्माजान व दादी के सारे जेवर थे। जिन्हें उन्होंने बिजली की-सी जितनी फुर्ती से मेरे अब्बाजान के पांवों में रख दिया उतनी ही तेजी से झटके के साथ मुड़ते हुए बोले, 'वैद्य जी बाकी बातें फिर करूंगा। ज़रा मेरे अशरफ को देख दो तो···'

" 'ठहरो, क्या हुआ है उसे ?'

"मगर वे ठहरे नहीं, न उन्होंने मुड़कर ही पीछे की ओर देखा। और न उन्होंने यह भी सोचा कि अब्बाजान तो आंख से बहुत कम देखते हैं। वे अशरफ को देखने कैसे जाएंगे। उन्हें रात को खुद ले जाना व छोड़ना पड़ता है। गैस की रोशनी क्षण भर में ही अंधेरे में गायब हो गई थी। वह सामने वाली गली से मुड़ चुकी थी। गैस के साथ उनके साथ हमेशा चलने वाले चारों प्यादे भी थे। तब अब्बाजान व अम्मा को सामने रखे जेवरों पर भी यकीन ही नहीं हुआ था। पर इससे क्या हकीकत तो हकीकत ही होती है। मुझे इस हकीकत का भी पहली बार पता चला था कि कर्ज जेवरों को गिरवी रखकर लिया गया था। इस बात का पता चलना ही था कि मेरा तो खून ही खौल आया। आवेश में मैंने बहिन को देने बनाया जहर का प्याला सामने खिड़की से बाहर सड़क पर पटक दिया। बाहर के सन्नाटे के बीच प्याले के टूटने की खड़-खड़ की ऐसी तेज आवाज हुई कि लगा जैसे दुनिया भर के यहां ऐसे प्याले एका-एक टूट आए हैं। वहां दुनिया भर के लोगों ने ऐसे प्यालों के टुकड़ों-टुकड़ों को घिस-घिस कर मिट्टी में मिला दिया है। तभी मैंने देखा कि अब्बाजान ने हड़-बड़ी में मेरा हाथ पकड़ा और मुझे बाहर की ओर ले जाने लगे।

"इनका घर हमारे घर के पास ही है। तब उनके घर में कुहराम मचा हुआ था। इच्छा हुई कि वह जो दूसरों के घर कुहराम मचाता है उसके घर अपने ही आप ऐसा कुहराम मच जाता है। पर मैं कहता क्या ? मैं तो यह देख दंग रह गया कि जिस अशरफ के कारण कुहराम मचा है वह कोई और नहीं है। वह तो मेरा जिगरी दोस्त, मेरा सहपाठी अशरफ है जो लगातार खुदा आलमीन, खुदा आलमीन कहे जा रहा है। और इनकी अम्माजान थी कि सिसकियां भरती हुई कहती जा रही थी, 'बेटे मेरे मुंह से यह तेरे सामने क्या निकल बैठा कि जिस तरह लोग तेरे अब्बाजान से पैसे ले जाते हैं ऐसे ही मेरे अब्बाजान ने भी इनसे लिया कर्ज था। बेटे मैं यह क्या तुझे बता बैठी कि मेरे अब्बा मेरी अम्मा नूर को तो नहीं बचा पाए। हां, मुझे यहां गिरवी रखकर दुनिया से ही विदा हो गए अल्लाह तुमने मुझ जैसी बदनसीब की कोख से तो इसे पैदा करवाया···इसकी आदतों को देख मैं फूली नहीं समाती थी कि एक-न एक ऐसा दिन जरूर आएगा, जब मेरा लाल मुझ जैसी बदनसीबों की बदनसीबी को खुशनसीबी में बदलने के लिए अच्छा काम करेगा। मगर मेरे अल्लाह मुझ जैसी बदनसीबों की बदनसीबी को खुशनसीबी में बदलने तो बकशो इसे···बेटे तेरी इच्छा के मुताबिक उन्होंने अब सबके कर्ज को मार कर दिया है। अब तो वे लोगों के जेवरों को लौटाकर भी आने वाले हैं · बेटे एक बार

तो आंख खोल दे…देख तो तेरा दोस्त राजू किस कदर तेरी जिंदगी के लिए अपने राम व किशन से दुआ मांग रहा है बेटे…' "



सर्दियों की छोटी सांझ ढल रही थी। मैं अब अपने सबसे बड़े सूदखोर साहूकार के पास खड़ा था। रह-रहकर मेरी आंखों के सामने वे सभी चेहरे याद आ रहे जिनके मैं अब तक कर्ज चुकता कर चुका था। मुझे आया देख पहले तो सरदार जोगेन्दरसिंह ने अपनी मूंछों पर ताव दिया पर जब मैंने हिसाब चुकता करने उससे हिसाब-किताब पूछा ही था कि उसके चेहरे पर तो एकाएक ही ऐसी कालिख पुत आई जैसे सैकड़ों-हज़ारों रातों का अंधेरा उसके चेहरे पर एक साथ चिपक आया हो और या फिर, वह इस बात से घबरा उठा हो कि जिस तरह सामने वाला मेरा यह शिकार मेरे चंगुल से बच निकल रहा है या बचने वाला है। अगर उसके सारे शिकार ऐसे ही बच निकलने लगे तो उसका क्या होगा ? ब्याज के पैसों से दिन दूनी रात चौगुनी उसकी जो तोंद फूल रही है, उसे खुराक कहां से मिलेगी। यह ही कारण था कि वह मुझे हिसाब बताने या दिखाने को जहां टाल रहा था। वहीं, बार-बार यह बात ही दुहरा रहा था, "मेरा ख्याल है पांच या छः दिन पहले मैंने जो तुमसे दो-चार बुरी बातें कह दीं तुम्हें उसी का बुरा लगा है। मेरा यह मतलब ऐसा कदापि नहीं था। मेरा तो…"

"नहीं-नहीं।" मैं लगातार यह ही कह रहा था। मगर वह तिजोरी में से वह कापी नहीं निकाल रहा था जिसमें वह हम जैसों का काला हिसाब-किताब लिखा करता था।

"अच्छा तो एक बात बताओ।" जोगेन्दरसिंह ने एक गहरी सांस भरी। तीखी निगाहों से उसने बाहर की ओर देखा, "कहीं मेरा पैसा चुकाने तुम कमीने सूदखोरों के चंगुल में तो नहीं फंस आए हो ? मैं नहीं चाहता कि…"

अब मैं अवाक्-सा जोगेन्दरसिंह को देख रहा था। वह भी देख रहा था अपलक मुझे ही। कुछ ऐसे, जैसे आंखों-ही-आंखों में वह मुझे समझाना चाहता हो—सूदखोर तो वे हैं जो सौ के बदले दस रुपया गांठ खुलाई उसी समय लेकर कर्जदार को नब्बे रुपया देते हैं और उससे हर महीने दस रुपया ब्याज लिया करते हैं। मैं तो सिर्फ अपना जायज हक लेता हूं। दो रुपया पचास पैसे माहवार भी कोई ब्याज होता है। आजकल तो तीन-चार रुपया माहवार अच्छी-अच्छी फर्में तक ब्याज देने लगी हैं वह तो दोस्ती में यह सोच कर मैंने तुम्हें पैसे दे दिए कि कहीं यह सूदखोरों के चंगुल में फंस न जाए। आजकल तो हर दफ्तर, हर कारखाने में ऐसे सूदखोर, गरीबों की मजबूरी का नाजायज फायदा उठाने की ताक में हमेशा ही लगे रहते हैं। जरा नौरसिंह दफ्तरी, हबसी चपरासी के कारनामे तो याद करो•• जरा सोचो तो ये लोग इतना तगड़ा ब्याज लेने के बावजूद किस तरह लोगों को बेइज्जत करने से जरा भी नहीं हिचकिचाते। मैं न तो तुमसे ऐसा ब्याज लेता हूं, न किसी तरह ऐसा व्यवहार ही करता हूं' तब पांच-छः दिन पहले ये ही तो बातें की थीं मैंने तुमसे, कारण मुझे पता चल गया था कि तुम दूसरे दफ्तर में प्रमोशन पर जा रहे हो। यही वजह थी जो तुम्हें ये बातें महज इसलिए सुनाई थीं कि मैं हर महीने उसे पैसे अपने ही आप ठीक वैसे ही दे दिया करूं जैसे पहले।' यही बात थी कि जोगेन्दरसिंह की पचास साला तजुर्बेदार यह बात लाख तो क्या, करोड़ों रुपयों की बात थी। हालांकि मेरी गरीबी का अभी इतना जनाजा नहीं पिटा था कि मैं सौ का दस रुपया महीना ब्याज दे देता। पर इतने पर ही मुझे कर्जदारी व ब्याज का पूरा तजुर्बा हो आया था। पागल बहिन के इलाज की बात ने मुझे इस स्थिति का पूरा एहसास करा दिया था कि गरीबों की हमदर्दी की बातें जो दुनिया के लाखों-करोड़ों लोग किया करते हैं वे सभी उनके ठीक ऐसे ही हमदर्द नहीं होते हैं जैसे दुनिया के करोड़ों धार्मिक लोग परम पिता परमात्मा का नाम जपते-जपते हुए भी ईश्वर-भक्त नहीं हो सकते हैं। क्योंकि जिस तरह से धार्मिक लोग अल्लाह या ईश्वर का नाम ले हलुवा-पूरी बटोरा करते हैं। ठीक ऐसे ही सूदखोर व झूठे समाज सुधारक भी गरीबों का नाम ले-ले कर-हलुवा पूरी बटोरते हैं। यदि ऐसा न हो तो आदिकाल से गरीबों के सच्चे हमदर्द आए दिन कत्ल थोड़े ही होते रहते। यही कारण था कि मैं अब जोगेन्दरसिंह से इस बारे में बहस नहीं करना चाहता था। केवल अपना हिसाब-किताब, चुकता करके जाना चाहता था। तभी मैंने देखा कि एकाएक ही वह उठा और तिजोरी खोलने लगा।

अब मैं अपना हिसाब देख रहा था। देख रहा था कि महीने-महीने मेरे द्वारा दिए रुपये भी खाते में दर्ज नहीं थे। मारे क्रोध के मेरा रोम-रोम कांप

पर सोचने से बाज नहीं आओगे ? इस तरह की बातों का ही तो यह परिणाम है कि अपना भाई समझकर तुमने जिन्हें जिंदगी दी वे ही आज तुमसे बातें करना अपनी तौहीन समझते हैं। जबकि स्थिति यह है कि उनके ही कारण, सच्चाई व ईमानदारी के बावजूद, तुम्हें बेईमान व बेजुबान तक लोगों ने कह डाला। तब फिर इतना सब कुछ अपने कानों से सुनकर व देखकर भी तुम फिर ऐसा ही कुछ पुनः कर रहे हो। फिर ऐसी ही निरर्थक बातों पर सोच रहे हो। घबराकर मैंने झटके के साथ कमरे के अंदर की ओर देखा। मेरा माथा झनझना उठा। लगा जैसे कमरे में इस समय भी बच्चों के साथ जहां मेरे दोनों सौतेले भाई सो रहे हैं, वहीं बहन भी। उनकी याद आना ही था कि यादों पर यादें उभर आईं। ऐसा लगा जैसे पत्नी कह रही है ज़रा फिर कहो कि इन दोनों ने सौभाग्य से बी० ए०, एम० ए० कर लिया है। अब चाहे अच्छी नौकरी की खोज में साल-दो साल और क्यों न लग जाएं पर किसी भी हालत में इनको एल० डी० सी० की नौकरी अपने जीते जी नहीं करने दूंगा। अपने संवेदनशील मन के कारण, अपने एल० डी० सी० पने के तजुर्बों से मैं यह अच्छी तरह जान चुका था कि बनिया जहां उसे सामान उधार देने लायक नहीं समझता है वहीं चपरासी बिना मजबूरी के उसे अपनी लड़की नहीं देना चाहता है। इससे भी मज़े की बात यह है कि उससे वे ही यू० डी० सी०, असिस्टेंट व अफसर बातें करना अपनी तौहीन समझते हैं जो स्वयं बीस-बीस साल की ऐसी जिंदगी जी चुके हों।

अब मेरे लिए अंदर की ओर भी देखते रहना कठिन हो आया। झटके के साथ मुड़कर सड़क की ही ओर देखना चाहता था कि आंखें बगल में सोई पत्नी पर अटक ही नहीं आईं बल्कि मेरी आंखों के सामने वे क्षण उभर आए जब मैंने उसे वे सारी बातें सुनाई थीं, जिनकी वजह से मुझे खान साहब से पैसे मिले थे। तब उसे मेरी बातों पर यकीन ही नहीं आ रहा था। एक इसे ही क्या इस कलजुगी जमाने में किसी को भी यकीन नहीं आ सकता था, यही कारण था कि मुझे ऐसा लगा जैसे वह संदेह भरी आंखों से इस समय भी मुझे देख ही नहीं रही है बल्कि लगातार कहती जा रही है—तुमने ज़रूर और ज़्यादा ब्याज देना कबूल कर किसी एक से पैसा कर्जा लिया होगा। ऐसे ही चुकाया होगा तुमने कर्जा। तुम कई दिनों से ऐसा ही सोच रहे थे। वर्ना यह यकीन लायक बात ज़रा भी नहीं है जोकि तुम सुना रहे हो। मैं अवाक्-सा पत्नी की ओर देखता ही रह गया। मन में विचार आया कि पत्नी को फिर समझाऊं—नहीं ऐसी बात ज़रा भी नहीं। जिस व्यक्ति ने मुझे पैसा दिया है वह ब्याज लेना तो अलग, मूल पैसे भी वापिस नहीं लेता है। पर प्रकट में एक शब्द भी नहीं बोल पाया। कारण, मैं यह अच्छी तरह जानता था कि इस

तरह की बातें करना बेकार है क्योंकि गरीब की ईमानदारी पर विश्वास नहीं ही किया जाता है। तभी एकाएक ही मन में विचार आया कि कल छुट्टी का दिन है क्यों न कल उस मुहल्ले मे चला जाऊ, जहां खान साहब रहते हैं। हो सकता है उनके बारे में उधर के लोगो से ही कुछ पता चल जाएगा क्योंकि व्यक्ति जो कुछ भी करता है उसके पीछे भी कोई न कोई कारण होता है। फिर इतनी मदद पाने के बावजूद, दफ्तर मे एक भी तो उनके बारे मे पूरी तरह जानकार नही। पता नही…



अब मैं मोरी गेट की उस जगह पर खड़ा था, जिसके पीछे कुछ ही दूरी पर तीस हजारी कोर्ट है। और सामने है—सामने की मार्कीट के सिरे पर का रेलवे-पुल। जिस पर खड़े होकर बेकारी के दिनो कई बार मैं पुरानी दिल्ली रेलवे-स्टेशन के दृश्य को देखा करता था। जाने क्या बात थी कि मुझे उस जगह खड़ा होना बेहद भला लगता था। पर अब न तो मैं उस पुल की ओर ही बढ़ पा रहा था और न शर्मा जी के बताए खान साहब के मुहल्ले की ओर, जो कि मुझे नानकपुरा से यहां खींच लाया था। बल्कि अब तो मैं अवाक्‌-सा देख रहा था सामने सड़क की दूसरी ओर, जहां दुबले-पतले धोती वाले एक व्यक्ति ने अपने से बेहद हट्टे-कट्टे व्यक्ति का गरेबान पकड़ रखा था। देखते ही देखते उसने उसे कसकर एक थप्पड़ जड़ दिया। कुछ ऐसे जैसे वह यह जता देना चाहता हो कि शारीरिक मोटापे से मानसिक बल अधिक शक्तिशाली होता है। और पिटने वाला व्यक्ति था कि बेहद घबराया-घबराया-सा, सिर नीचा किए दयनीयता की प्रतिमूर्ति-सा, दया की भीख मांगता-सा करुण नेत्रों से केवल कभी-कभी ही आसपास देख रहा था। जबकि पीटने वाला व्यक्ति था कि अब उसकी जेबें टटोलने लगा था। कुछ ऐसे जैसे यह उसका मौरूसी हक हो।

मैं यह सब स्तब्ध-सा देखता देखता ही रह गया। वैसे भी मैं जब भी

किसी को सड़क में ऐसी टेढ़ी निगाहों से किसी को देखते, गरेबान पकड़ते या पीटते देखता हूं तो मेरी आंखों के आगे घना अंधेरा छा जाता है। मैं यह अंदाजा सहज में ही लगा लेता हूं कि ऐसा केवल साहूकारी व कर्ज़दारी में ही होता है। ऐसा किसी भी और मामले में नहीं हो सकता है कि पिटने पर प्रतिवाद न हो। किसी भी तरह के और मामले में भले ही पिटने वाला शारीरिक रूप से कमज़ोर हो पर वाद-प्रतिवाद तो करता ही है। जबकि लूली-लंगड़ी कर्ज़दारी में प्रतिवाद की सामर्थ्य तो अलग, प्रतिवाद के विचार की कल्पना तक नहीं हो पाती है। यह ही वजह थी कि ऐसा देखते ही मेरा अंग-प्रत्यंग जहां कांप उठता था, वहीं, अपने साथ भी ऐसा हो आने की घबराहट में ही मैं ऐसी जगह से भाग खड़ा होता था। पर आज मैं न तो भाग ही पा रहा था और न भागने की ही सोच रहा था। बल्कि देख रहा था—आसपास की भीड़-भाड़ तथा इस सबसे बेखबर से खिसकते तांगे-रिक्शे, बस व कार आदि को। लगता था कि पिटने वाले से लोगों को सहानुभूति तो है पर वे सभी के सभी बस इस कसमकश में हैं कि कहीं यदि उन्होंने सहानुभूति जाहिर की और पीटने वाले ने उनकी सहानुभूति के बदले, उनसे ही पैसे देने को कह दिया तो ? और या वे सबके सब यह परखना चाहते हों कि पिटने वाला व्यक्ति, पहली या दूसरी बार बेइज्ज़त होने वाला कर्ज़दार है या आए दिन सड़क पर औंधे लेटे रहने वाले नामी-धामी शराबी-सा कोई गरेबान पकड़वाने में अभ्यस्त कर्ज़दार है। क्योंकि···

अब पिटने वाले व्यक्ति को पीटने वाले ने छोड़ दिया था। कारण, वह सारी जेबें टटोलकर थोड़े बहुत रुपये वसूल कर चुका था। उसका छूटना ही था कि वह प्रतिवाद करने के बदले, सिर नीचा किए, तेज़ कदमों से आगे को लपका। मैंने देखा कि उसके चेहरे पर घृणा मिश्रित आक्रोश की रेखाएं जहां उभरती-बदलती चली आ रही थीं। वहीं उसकी आंखें बेहद सुर्ख लाल कुछ ऐसे हो आई थीं जैसे उसकी आंखें वह न हों बल्कि प्रलयंकारी आग के गोले हों और या वह आंखों-ही-आंखों से यह जतला देना चाहता हो—अपने इस अपमान का बदला वह भले ही इस क्षण नहीं ले पाया पर एक-न-एक दिन अवश्य लेकर रहेगा चाहे इसके लिए उसे कुछ भी क्यों न करना पड़े। उसके इसी रूप ने मेरे अंग-प्रत्यंग को कंपा-सा दिया। मैं अवाक-सा अपलक उसे ही देखता रह गया। पर वह था कि बगल वाली गली में मुड़कर मेरी आंखों से कुछ ऐसे ओझल हो गया जैसे वह यह सिद्ध कर देना चाहता है कि कर्ज़दार का दिल जब गीदड़ का जैसा होता है तो उसके पांव···



खान साहब का मुहल्ला निकल्सन रोड से चिपका नहीं था। वह तो इस रोड से निकलने वाली एक ऐसी लेन पर था जिसे न तो, नई दिल्ली की लेन कहा जा सकता है न उसे चांदनी चौक की कोई गली ही। उस लेन पर थोड़ा-सा आगे चलकर, दस बारह फुट ऊंची एक लगभग गोलाकार जैसी दीवाल लगती थी। वह लेन जहां खतम होती थी, वहां एक बहुत बड़ा दरवाजा था। जिस पर सफेद जीन की वर्दी पहने सत्तर पचहत्तर वय का एक आदमी बैठा था। जो अपलक उत्सुक आंखों से सड़क की ओर देख रहा था।

यहां तक मुझे दस बारह साल का एक लड़का छोड़ गया था। कारण शर्मा जी का बनाया नक्शा, मोरी गेट पर अभी-अभी मिले व्यक्ति के बारे में सोचने के बीच खो गया था। तब एक बार तो उसके खोने के कारण मुझे कुछ ऐसे लगने लगा था जैसे नक्शा ही नहीं खोया है बल्कि नई दिल्ली के सरकारी क्वार्टरों का नंबर जैसा कुछ खो गया है जिसके कारण उनके पास तक अब पहुंचा ही नहीं जा सकेगा। तब एक-दो बार मैंने निरर्थक बातों के बारे में सोचने की अपनी आदत को कोसा भी था। पर नई दिल्ली के सरकारी क्वार्टर के नंबर व खान साहब के मुहल्ले में बेहद अंतर था। मेरा उसके बारे में पूछना ही था कि वह बच्चा अच्छा-अच्छा आपका मतलब, बादशाह साहब के मुहल्ले से है—कहते हुए मेरे साथ ही चल पड़ा था। उसके अंग प्रत्यंग से खान साहब के बारे में सम्मान झलक रहा था। यह ही तो बात थी कि एक बार उसने उनके बारे में फकीर शब्द का इस्तेमाल किया था। और उसने यह भी बताया था कि उसके पापा ने एक बार उनके बारे में बताया था कि उनकी एक ही नजर में बड़े-से-बड़ा गुनाहगार भी अपना गुनाह कबूल कर लेता है। पहले तो उनको कोई धोखा नहीं दे सकता है यदि कोई दे भी बैठे तो उसका चैन भी कभी भंग नहीं होता है। किसी-न किसी तरह उस धोखा देने की

सजा मिल ही जाती है। तब उसकी बातों को मैं बच्चों की बात सोच टाल गया था। क्योंकि मैं यह जानता था कि बच्चों का दिमाग ऐसा निष्कपट व निश्छल होता है जिसे जो जैसी बात बताए वह, उसे वैसी ही स्वीकारता है। पर अब जाने क्या बात थी मैं जितना ही गेट की ओर बढ़ रहा था उतना ही अधिक घबरा-सा रहा था। क्योंकि आसपास के लोगों की दया व सहानुभूति वाली नजरों से मुझे देखना तथा फिर आसमान की ओर देखकर हाथ जोड़ना इतना ही असहनीय था जितना कि धोती वाले व्यक्ति से पिटते उस व्यक्ति को लोगों का देखना।

ओह, कितने अजीब थे वे क्षण, जब पिटे व्यक्ति के गायब होने के दो-चार क्षण बाद लोग फिर अपने-अपने कामों में ऐसे खो चुके थे जैसे वह कोई बड़ी घटना हो ही नहीं। बिल्कुल ही मामूली घटना हो। मगर मैं था कि उसके पिटने के कारणों की कल्पनाओं में उलझ गया था। लगता था एक इस तरह पिटने व पीटने का ही क्या, दुनिया भर के सारे झगड़ों की जड़ मात्र पैसा है। यह पैसा ही तो है जो जहां पिता-पुत्र को पिता-पुत्र नहीं रहने देता, वहीं उन पति-पत्नियों को पति-पत्नी नहीं रहने देता है जिन्होंने कभी सच्चे दिल से पति-पत्नी बनकर रहने का फैसला किया था। इतना ही नहीं क्या यह पैसा ऐसा कुछ नहीं है जिसके कारण दुनिया में आए दिन कई बेगुनाहों तक को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ता है। इतना सोचना ही था कि मेरी आंखों के सामने वे क्षण उभर आने लगे, जब मैं अपने रिश्तेदारों व मित्रों के पास किसी और काम से जाता था। पर मुझे देखते ही, उनके चेहरे का रंग ऐसे उतर जाता था जैसे अंदर-ही-अंदर वे चिंतित हों कि कहीं मैं पैसा कर्ज़ मांगने उनके पास न आया होऊं? इतना ही नहीं, मेरी आंखों के सामने वे सारे क्षण उभरते-उभरते चले आए जब मेरा भाई नौकरी लगने के बाद मुझसे अलग रहने का कोई बहाना जहां ढूंढ़ रहा था वहीं वह कटा-कटा-सा कुछ ऐसे रहने लगा जैसे उसे खतरा हो आया हो कि यदि वह यहीं रहा तो कर्ज़ का काफी हिस्सा उसे देना पड़ेगा। तब ऐसे ही क्षणों के बीच तो उसने पढ़वाया था मुझे एक दिन वह समाचार कि सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों में कर्ज़ की आम मुआफी कर दी है। तब मैं अवाक-सा उसे देखता रह गया था। उसके चेहरे पर कुछ ऐसे भाव थे जैसे वह मुझसे कहना चाहते हों—भाई साहब अधिक चिंता न करो अब तो कुछ ही दिनों में ऐसा ही कानून शहरी क्षेत्रों के बारे में भी लागू होने वाला है। यही वजह थी कि तब मेरे मुंह से निकला था—भगवान करे तेरी बात सच निकल आए। क्योंकि कर्ज़दार तो कर्ज़दार ही होता है चाहे वह गांवों में रहता हो, चाहे शहरों में, चाहे वह हरिजन हो या ब्राह्मण, चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान। कर्ज़दार तो…

आसमान आज कई दिनों बाद साफ था। अलबत्ता ऊपर दिपने वाले आसमान मे दो-चार बादल के टुकडे कुछ ऐसे टिके थे जैसे वे भी आज इतवार मनाना चाह रहे हो। मगर खान साहब के गेट का गेटकीपर था कि इतवार के मूड मे जरा भी नही दिखता था। वह तो मेरे गेट की ओर मुडते ही कुछ ऐसे बेहद चौकन्ना हो आया जैसे अपने अनुभव के बल पर वह ताड गया हो कि मैं इधर ही आने वाला हू। इतना ही नही, मेरा उसके पास पहुंचना ही था कि वह झटके के साथ उठ खडा हुआ। बोला, "आइए, खान साहब या बादशाह साहब का दरबार खोज रहे हैं क्या ?"

"जी-जी।" अनायास ही मेरे मुंह से निकला। उससे आत्मीयता व निकटता प्रदर्शित करने के से भाव से मैं उसकी कुर्सी के पास पड़ी बेंच पर बैठ गया। प्रश्न भरी आखो से उसे देखने लगा।

"लगता है, आपको हमारे खान साहब व उनके मोहल्ले के बारे मे जरा भी जानकारी नही।" अब गेटकीपर कुर्सी पर बैठते हुए बीड़ी सुलगा रहा था। उसके चेहरे पर मुस्कुराहट थी, "वर्ना भाई साहब आप इस कदर घबराए से इधर कभी नही आते। क्योकि यह किसी ऐसे बादशाह साहब का दरवाजा नही जिस पर गेटकीपर किसी को रोकने भर को बैठा रहता है। और…"

अब वह अपलक मुझे देख रहा था। शायद वह अपने अनुमान के बारे मे जानना चाहता था कि वह कितना सही है ? उसकी बात वैसे भी सही ही थी। मैं उनके बारे मे जानता ही तो, यहा थोड़े ही आता। वह अभी भी अपलक मुझे ही देख रहा था। मुझे उसका इस प्रकार देखते रहना बेहद भला लगा। मुझे खान साहब के बारे मे जानकारी हासिल करने के लिए ऐसी निगाहो की जरूरत थी। इसीलिए उनके बारे मे मैंने चर्चा छेड दी, "भाई साहब आपका अंदाजा सही है। मुझे उनके बारे मे जरा भी जानकारी नही। हा, इतना मैंने सुना है कि वे बेहद दयालु हैं। गरीबो से…"

"क्या बताऊ साहब, ये तो किसी की आखो मे आसू देख ही नही पाते हैं। पता नही अल्लाताला ने इनको कैसा हमदर्द दिल दिया हुआ है। नजरें भी इनकी इतनी तेज हैं कि दुखी को एकदम ही भाप जाते हैं।" गेटकीपर के चेहरे पर अपार श्रद्धा के भाव उमड आए थे। वह अपलक मुझे ही देखने लगा। कुछ ऐसे जैसे जानना चाहता हो कि मैं उसकी बातो पर यकीन कर रहा हू कि नही। और मेरी आखो मे उत्सुकता देख कहने लगा, "कमाल है भाई, मैंने तो अब तक यह सुना ही था कि जो सच्चे दिल से दूसरो की भलाई करता है उसका देर-सवेर भला जरूर होता है। दूसरे लोग उसके ऐहसानों को नही भूलते हैं। पर यहा आकर मैंने अपनी ही आखो से यह सब देख भी लिया है। उस पर भी जिस तरह से ये हिंदू-मुसलमान के फर्क को नही मानते हैं इसी तरह लोगो ने

भी इन्हें सिर्फ मुसलमान कभी नहीं माना। अब यह ही बात ले लो कि एक ओर तो दूसरे मुहल्ले में हिंदू-मुसलमान एक-दूसरे को बकरे की तरह जहां काट रहे थे वहीं दूसरी ओर इस मुहल्ले के चारों ओर अपने-अपने हाथों में भाले, लाठी, तलवार, किरपाण व बंदूकें लिए लोग इनकी रक्षा करने ऐसे खड़े थे जैसे पूरी इंसानियत ने यह फैसला कर लिया हो कि करबला के मैदान में इमाम हुसैन साहब के हमसाथियों के साथ जो कुछ एक बार हुआ है वैसा ही दुबारा यहां हम अब नहीं होने देंगे। इमाम हुसैन साहब को व उनके हमसाथियों को भूख व प्यास से तड़फा-तड़फाकर मारने वाले बादशाह वजीद के सियासी सैनिक यदि इस बार इधर झांके तो वे सबके सब मिलकर करबला के मैदान में सभी ज़्यादतियों का बदला ही लेकर दम लेंगे। क्योंकि उस जैसे कातिलाना दुष्कर्मों का बदला लेने सिर्फ मुसलमान ही काफी नहीं उसके लिए तो पूरी इंसानियत···"

"फकीरों के करिश्मे ऐसे ही तो होते हैं भैया।" उसे और भी उकसाने मैंने बीच में ही चुटकी-सी भरी। हालांकि साधु-संतों व फकीरों के भक्तों की ऐसी बातों से मुझे बेहद चिढ़ ही नहीं थी बल्कि मैं तो ऐसे व्यक्तियों की तीखी आलोचना किया करता था कि आदमी को आदमी बनाने के बदले, जो उसे पूरी तरह हिजड़ा, बेहद स्वार्थी व निकम्मा बना दिया गया है उसके प्रति ये ही लोग जिम्मेदार हैं। मेरी ये ही बात सुनना था कि अब वह धाराप्रवाह भाषा में बोलता ही चला गया कि "साहब ऐसा न हो तो कैसे न हो। अल्ला के करिश्मों की भी अजीब दास्तां होती है। यह अल्ला का करिश्मा नहीं तो और क्या है? जो, आठ साल के बच्चे ने अपने उस पिता को बदल दिया जो पठानी ब्याज के सामने आदमी की जिंदगी को कुछ समझता ही नहीं था। इनके इशारे भर से वही पिता एक लाख के करीब के मूल रुपयों को भूला ही नहीं, बल्कि रात-रात में ही करीब डेढ़ लाख के गिरवी रखे जेवरों को लौटा आया। आज जिस कमरे में इनके अब्बाजान कभी-कभी जरूरतमंद आदमी को इम्दाद दिया करते हैं, उसी में तो चढ़ाते थे वे पहले पठानी ब्याज पर कर्ज। ओफ, कितने अजीब थे वे दिन, जब इनके दानखाने के अगल-बगल के चार कमरों में शहर के मशहूर चार नामी-गरामी ऐसे दादा रहते थे जिनके लिए आदमी को जान से मार देना मामूली बात थी। खैर साहब ये तो बहुत लंबी-चौड़ी बातें हैं। मुआफ कीजिए मैं तो आपसे मतलब की बातें भी पूछना भूल गया कि आप यहां किस मकसद से व किनसे मिलने आए हैं? ताकि···"

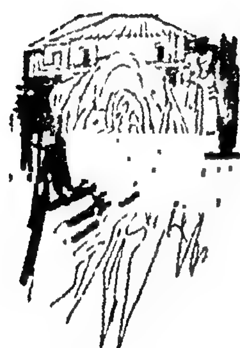
"भैया मैं तो इनसे सिर्फ मिलना चाहता था।" अब मैंने फुर्सत से उससे बातें करते रहने की नीयत से जेब से सिगरेट का पैकिट निकाला। एक स्वयं जलाया और एक उसकी ओर कुछ ऐसे बढ़ाया कि कम से कम उससे सिगरेट समाप्त होने तक इसी बहाने बातें तो करता रहूं।

"अच्छा···अच्छा। साहब हम तो मूरख-गवार आदमी हुए। हम क्या जानें बड़ों की बातें। पर इनके बारे में जानने की आपकी इच्छा ने मुझे कुछ पुरानी बातें याद दिला दी हैं। कभी-कभी पुरानी यादें आ ही जाती हैं।" अब उसने सिगरेट सुलगा ली थी। उसका सिगरेट सुलगाता झुर्रीदार चेहरा मुझे बेहद भला लगा, "साहब बात कोई पैंतालीस वर्ष पहले की है। उन्हीं दिनों तब मैं इनके यहां नौकरी पर लगा था जब ये पैदा हुए थे। तब इनकी माली-हालत इतनी अच्छी नहीं थी। होती भी कैसे? उससे सात-आठ महीने पहले इन्होंने यह सारी इमारत खरीदी थी। जिसके कारण उन दिनों तब ये थोड़ा बहुत ही ब्याज पर पैसा दिया करते थे। मगर इनके पैदा होने के सात-आठ महीनों के अंदर तो इनके घर का नक्शा ही बदल गया। इनके पास अचानक ही लाखों रुपये आ गए। लोग कहते हैं साहब, ये खान साहब मणि लेकर पैदा हुए हैं। यही तो वजह है जो इनके अब्बाजान इनकी किसी भी बात को टालते नहीं। एक इनके अब्बाजान ही नहीं, इनके सभी चाचा भी इनकी बात नहीं टालते हैं। इनको दिल भी बादशाह जैसा ही मिला है। ये किसी के भी आंखों में आंसू देख नहीं सकते हैं। वैसे भी हद है, सौ देते हैं तो दो सौ आ जाता है। अब बताइए साहब, जिस रात इन्होंने बेटे के कहने पर कर्ज की आम मुआफी की, गिरवी रखे जेवर लौटाए। उसी के दूसरे दिन इनको इनके चाचा चार-पांच लाख रुपये दे गए। अल्लाह की मेहर के भी क्या कहने। एक ओर ये हर समय दान देने को तैयार रहते हैं तो दूसरी ओर दिन दूना रात चौगुना पैसा इनके पास आता ही रहता है। एक बात और, इनकी पैनी नजरों को कोई धोखा नहीं दे सकता है। बड़ी इम्दाद देने से पहले ये चुपके-चुपके छान-बीन तक कई बार करवा लेते हैं। सच कहूं भाई इनके काम निराले···"

"इनके कल व कारखाने तो चलते होंगे।" मैंने बीच में ही चुटकी-सी भरी। मेरा इतना कहना ही था कि वह अपलक मुझे देखता ही रह गया। मुझे उसका इस तरह मौन रहना बेहद अखरा, "इनके नहीं तो इनके चाचाओं के तो कारखाने होंगे ही।"

"हां साहब, इनकी हर बात निराली है। इस जमाने में भी इनका परिवार मिला-जुला है। उम्र ज्यादा होने के कारण इनके अब्बाजान तो खैरात ही बांटने का काम किया करते हैं। इनके दो चाचाओं के तो बंबई व अहमदा-बाद में कपड़े के कारखाने हैं। तीसरे चाचा का कांचों का कारखाना यहीं दिल्ली में है। बाकी इनके चार चाचाओं का विदेशों में अरबों रुपये का तेल का काम चल रहा है।" गेटकीपर एकाएक ही फिर खामोश हो आया था। प्रश्न भरी आंखों से आसमान की ओर देख रहा था, "सुना है उनका विदेशों में तेल का व्यापार है। साहब, वैसे तो सैकड़ों इनसे भी ज्यादा अमीर होंगे।

पैसा भी आजकल बहुतों के पास है। मगर इनका जैसा रहम-दिल अमीर, शायद ही कोई हो। आप जब उनसे मिलेंगे, आपको खुद ही मालूम हो जाएगा। अब आप खुद ही सोचिए, एक ओर तो ये इतनी बड़ी दौलत के मालिक हैं। यह सारा-का-सारा मुहल्ला इनका अपना है। इसके अंदर राजाओं का जैसा लाल पत्थर का महल है। मगर अपने-आप रहते हैं उस महल के पीछे एक छोटी-सी झोंपड़ी में। सुना है कि कहते हैं जब तक दुनिया का एक भी आदमी झोंपड़ी में रहता है मैं महल में नहीं रहूंगा। क्या बताऊं साहब···"



खान साहब के मुहल्ले का सीमा में बांधने वाली दीवालें, गेटकीपर के बैठने की जगह से अंदर की ओर केवल सात-आठ गज तक ही आगे बढ़ती थीं। उनके आखिरी सिरों पर बेहद मोटी व भारी लकड़ी का लंबा-चौड़ा व ऊंचा दरवाजा था। अंदर वाले इसी दरवाजे के ठीक सामने, एक चार-पांच फिट ऊंचा ऐसा हैज था जिससे अंदर का नजारा बाहर से ज़रा भी नहीं दीखता था। शायद इसके पीछे यह राज था कि बाहर लॉन में खड़ा होकर कोई भी अंदर न देख सके। ताकि इधर का नजारा देखने, उसे अंदर ही आना पड़े। उस दरवाजे ने मुझे चांदनी चौक के पुराने किस्म के मकानों या मुहल्लों की याद ताजा करा दी। मैंने बाहर वाले गेट से यह अंदाजा लगाया था कि इन्हीं दीवारों के साथ से खान साहब का मकान या मुहल्ला शुरू हो जाएगा। मगर हैज के पास पहुंचा तो पाया कि मेरा अंदाजा गलत था।

अंदर दाईं ओर वाली दीवाल के साथ, एक काफी लंबी दो मंजिली इमारत थी। जिस पर बराबर दूरी पर बने कमरों के दरवाजों पर हिंदी व उर्दू में लिखे कक्षा शब्द के साथ गिनतियों से स्पष्ट था कि वह स्कूल की इमारत है। और बाईं ओर, दीवाल के पास से लेकर, बीस-पच्चीस गज की दूरी पर स्थित लाल पत्थरों वाली इमारत तक एक बेहद खूबसूरत बगिया

थी। उस लाल पत्थरो वाली इमारत के सामने सड़क की दूसरी ओर, आधुनिक पद्धति के अनुसार एक लबी-चौड़ी इमारत बन रही थी। जिसकी सात मजिलें तो बन गई थी। आठवी पर काम चल रहा था। उस बन रही इमारत के चारो ओर बेहद लबे-लबे लट्ठो को एक-दूसरे से बाध-बाधकर जहा आठवी मजिल तक खड़ा किया हुआ था, वही हर मजिल मे लठ्ठो को ही बाध-बाधकर मजदूरो के इधर-उधर आने-जाने वाला रास्ता बना रखा था। इसके साथ ही उस इमारत के लगभग बीचो-बीच, तख्तो की सहायता से सीधे ऊपर तक चढ सकने वाली सीढिया बना रखी थी। जिसकी प्रत्येक सीढ़ी के दोनो ओर दो-दो मजदूर खड़े थे। एक ओर वाले मजदूर गारे की तसलो को आगे बढा रहे थे तो दूसरी ओर वाले मजदूर खाली तसलों को नीचे को उतार रहे थ। इस सबके बावजूद उधर एक आश्चर्य की बात थी। वह यह कि उधर कोई भी मजदूर बच्चा जमीन पर वैसे लिटाया हुआ नही था जैसा कि इस तरह बनती किसी और इमारत के पास देखे जाते हैं। पता नही मजदूरिनो ने सुरक्षा की दृष्टि से उन्हें इमारत के पिछवाड़े लिटाया हुआ था या कोई और बात थी।

इधर बगिया को, छोटी-छोटी अनेक क्यारियो मे बाटा गया था। जिनमे से कुछ क्यारियो मे, गेंदे व सदियो के फूल खिले थे। शेष क्यारियो में गुलाब आदि के लगाए पौधे ऐसे लगते थे जैसे वे उतावली के साथ बसत के आने या अपने भी फूलने की प्रतीक्षा मे हो। जिन क्यारियो म इस समय फूल फूले हुए थे, वे सबके-सब इस तरतीब से लगाए गए थे कि साडी के पल्ले का डिजायन-सा बनाते से लगते थे। सूर्य की किरणो के बीच अभी भी टपकती उनम पानी की बूदो ने उनके सौंदर्य को और भी अनोखा बना रखा था। मैं थोडी देर तक अपने-आप को भूला-सा अपलक उस बगिया को ही देखता रह गया। मुझे याद आया कि नीचे वाले सरकारी क्वार्टर मिलने पर ऐसी ही बगिया बनाने की मैं भी कभी कल्पना किया करता था। यही कारण था कि इस अर्ध-प्राकृतिक सौंदर्य को ही काफी देर तक देखते रहने को मेरा जहा जी करने लगा। वही धीरे-धीरे मुझे ऐसा लगने लगा जैसे फूलो के पौधे धीमी-धीमी हवा से हिल नही रह हैं बल्कि आपस मे एक-दूसरे को अपनी अपनी आपबीती सुना रहे हैं। अभी मैं सात-आठ कदम ही उनकी ओर आगे बढ़ पाया था कि अदर की ओर आने वाली दीवाल के लगभग पास ही एक अजीबोगरीब आदमी को खान साहब की कार को साफ करते देख काप-सा उठा। वह आदमी सात-साढे सात फिट लबा व इसी अनुपात मे चौडा था। उसके हाथ मेरे पाव स भी ज्यादा मोटे व पाव मेरी छाती से भी ज्यादा मोटे थे। खान साहब की कार उसके सामने ऐस लग रही थी जैसे किसी आदमी के सामने बारह-तरह

वर्ष का कोई बच्चा हो। मैं फटी-फटी आंखों से उसे देख ही रहा था कि उसने पीछे मुड़कर मेरी ओर क्या देखा कि मेरे तो पांवों के नीचे की धरती ही खिसक गई। उसकी आंखें वेहद डरावनी, भूरी-भूरी थीं और मूंछें थीं कि गोल भरे हुए चेहरे पर दोनों ओर हवा में से खुले उड़ रही थीं। पता नहीं वह मेरी मानसिकता को भांप गया था या कोई और बात थी कि उसने वेहद भद्देपन से हलका-सा अट्टहास किया।

उसका यह अट्टहास मुझे और भी भयावना लगा। झटके के साथ मुड़कर मैं उल्टे स्कूल की इमारत की ओर लौट आया। हैज के पास इधर आकर मुझे फिर लुभावनी वगिया की याद आई। मैंने डरते-डरते तिरछी नजरों से फूलों को देखा। लगा जैसे फूल व पौधे मुझे देखकर जहां हंस रहे हैं वहीं एक-दूसरे से वातें-सी कर रहे हैं—देखा आदमी व आदमी की वात। एक ओर तो ये अपनी वुद्धि, शक्ति व साहस पर इठलाते हैं दूसरी ओर हालत यह कि एक-दूसरे को देख ऐसे डरते हैं।...अव मुझे स्वयं अपने पर ही हंसी-सी छूट आई। पर इसके वावजूद मैं वहां पर भी टिका नहीं रहा। एक बार मैंने वाहर गेटकीपर की ओर देखा, जोकि अव फिर किसी नये आगन्तुक की प्रतीक्षा में वाहर की ओर ही देख रहा था। तभी मैंने देखा कि स्कूल के सामने वाले मैदान के पीछे पुराने किस्म के मकानों की ओर से हाथ में एक डंडा लिए खाकी वर्दी वाला व्यक्ति आ रहा है। वह आदमी मुझे औसत आदमी-सा लगा। मैंने चैन की-सी सांस ली। मैं उसी की प्रतीक्षा में खड़ा हो गया।

"नमस्ते साहव। आप किसे खोज रहे हैं।" यह उसी चौकीदार का स्वर था।

"जी मैं तो खान साहव या वादशाह साहव से..."

"क्यों क्या इम्दाद चाहिए, या कोई और काम है ?"

अव भला मैं उत्तर क्या देता ? केवल मौन खड़ा ही रहा। मेरा आशय वता देने से तो वैसे भी काम वन नहीं सकता था !

"वोलिए डरने या घवराने की जरा भी वात नहीं। ताकि मैं आपको उसी के अनुसार मदद कर सकूं।" अव वह मेरे विल्कुल निकट आ चुका था।

"देखिए यह वह धरती है जिस पर किसी किस्म का लुकाव-छिपाव, छल-कपट नहीं होता है। जो कुछ भी आपके मन में है, वस निर्भीकता से कह डालिए। ताकि..."

"असल में वात यह है कि मैंने खान साहव के व्यक्तित्व में अजीवो-गरीव विसंगतियां देखीं। जिनसे मैं वेहद प्रभावित हुआ हूं।" अनायास ही मेरे मुंह से निकल तो गया पर मैं अपलक उसे देखता रह गया। सामने खड़ा व्यक्ति मुझे कुछ-कुछ परिचित-सा भी लगा, "इसलिए मैं चाहता था कि

जानूं, इन सबके पीछे कारण क्या है"?

"अच्छा-अच्छा, अब समझा कि आपको लेखन का महगा रोग है। मेरा ख्याल है कि मेरा अनुभव गलत नही होगा। आपको देखकर एक प्रश्न मेरे मन मे उठ रहा है कि इन महोदय पर लिखकर आपके हाथ लगेगा क्या ?" अब वह व्यक्ति मुझे भी अपने पास आने का इशारा कर सड़क के किनारे हरी दूब की ओर चलने लगा, "मेरी तो आपको राय है यदि आप लिखना ही चाहते हैं तो युगधिष्ठाता राजनीतिज्ञो पर लिखिए ताकि अच्छी तरक्की व अच्छी नौकरी तो आपको मिले। और यदि आपको साहित्यिक ख्याति चाहिए तो साहित्यिक मठाधीशो पर लिखते चले जाइए ताकि कभी न कभी वे, एक-दो शब्द आशीर्वाद स्वरूप तुम पर भी लिख दें। और यदि लोगो से अपने पाव पुजवाने हैं तो धार्मिक गुरुओ पर लिखिए। यहा तो···"

मैं अवाक्-सा उसे देखता रह गया। मुझे उसकी वर्दी व बातों मे इतनी ही विसंगति लगी जितनी कि खान साहब के व्यक्तित्व व उनके बारे मे सुनी बातो मे। पर मैं उसके बैठने के आग्रह को टाल नही सका। मैं अपलक उसे देखते उसकी बगल मे बैठ गया।

"खैर यह अत्यत प्रसन्नता की बात है कि आपके मस्तिष्क मे झनझनाहट हुई कि जानें कि वाकई मे खान साहब हैं क्या ? तथा खान साहब के ऐसा होने के पीछे कारण क्या है ? यह ही तो वह बात है जो आपको यहा तक खींच लाई। यह मेरे लिए भी कम हर्ष की बात नही कि आप इधर उस दिन आए, जब खान साहब की असीम कृपा से इधर मुझे चौकीदारी करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। खैर— यहा एक विचारणीय प्रश्न यह है कि आपके मस्तिष्क मे ऐसी झनझनाहट हुई क्यो ? बाल्मीकि के बाल्मीकि, चाणक्य के चाणक्य तथा कालीदास के कालीदास बनने के पीछे चाहे कोई भी कहानी रही हो, मगर, उन क्षणो का भी महत्व कम नही, जिन्होने उन्हे बाल्मीकि, चाणक्य व कालीदास बनाया है। इसी तरह यदि आप उन क्षणो को याद करें जिन्होंने आपके दिमाग को झनझनाया और आपको यहा ला पटका तो आपको ऐसे प्रभावी क्षणो की अमूल्यता का बोध हो आएगा। ऐसे ही एक क्षण का प्रभाव है कि आप मुझे इस वर्दी मे यहा देख रहे हैं। इस वर्दी को पहनने मे मुझे जरा भी लज्जा नही आती है। बल्कि सच पूछो तो मैं गौरव का एहसास करता हू। मेरे मन मे इस वर्दी को पहन कर विचार उठता है कि चाहे अपने देश की धरती की रक्षा करने, अपने को बलिदान देने का मुझे वैसा सौभाग्य प्राप्त न हो जैसा कि मेरे देश के कई उन सपूतो को प्राप्त होना है जो कड़ी सर्दी व तपती लू मे इस देश की सीमाओ पर पहरा देते हैं। पर यही वर्दी मुझे यह एहसास कराती है कि मेरे देश के सैनिक ऐसी ही तो वर्दी पहनते हैं।

तना ही नहीं, इस वर्दी को पहनकर मुझे यह भी एहसास होता है कि इस श में इस देश की जहां कहीं भी दौलत सिमटी हुई है, वहीं, मेरा कोई-न-कोई भाई ऐसी ही वर्दी पहने जहां पहरा देता है वहीं वह खामोश रातों में 'जागते रहो, जागते रहो' कहकर लोगों को भी चौकन्ना होने का संदेश देता है। मगर मेरे भाई, आपको बादशाह साहब की इस धरती में कोई न कोई हमेशा इसी वर्दी को पहने दिखाई तो देगा पर आधी रात में भी वह न आपको डंडा बजाता मिलेगा, न जागते रहो पुकारते हुए ही। आपको यकीन न हो तो आप आधी रात में भी यहां आकर देख सकते हैं। तब आप यह तो पाएंगे कि बाहर वाले गेट पर एक के बदले आपको तीन गेटकीपर तो दिखाई देंगे मगर जागते रहो की आवाज़ कभी भी नहीं सुन सकोगे। आपको यहां हर आदमी गहरी नींद में सोता नजर आएगा। पर जरा सी भी आवाज़ हुई कि इधर का हर बूढ़ा, बच्चा, जवान आपको बाहर दिखाई देगा। जानते हो ऐसा क्यों होता है। ऐसा इसलिए है कि बादशाह साहब ने लोगों के शरीर को नहीं, दिल को जीत रखा है। वह भी ऐसे नहीं जैसे रोटी के लिए या अपनी प्रसिद्धि के लिए साधू-संन्यासी या फकीर अपने यौगिक चकाचौंध को दिखाकर आए दिन अपनी-अपनी सिद्धियों को बेचा करते हैं। जानते हो मैं क्या हूं?"

भला मैं उसे क्या उत्तर देता! अपलक उसकी ही ओर देखता रह गया। मुझे तो अब उसकी प्रत्येक बात और भी अनोखी लग रही थी। यह ही बात थी कि उसकी बातों की तेजी के बीच मुझे यह सोचने का मौका तक नहीं मिल पा रहा था कि यह परिचित-सा तो जरूर लग रहा है मगर यह मेरे संपर्क में कब व कैसे आया?

"ठहरिए परेशान न होइए। मैं स्वयं बता रहा हूं कि मैं वह नहीं हूं जोकि आपको दिखाई नहीं दे रहा हूं जोकि आप मुझे इस समय इस रूप में जहां देख रहे हैं वहीं कभी मेरे दूसरे रूप में भी मुझे देख सकते हैं। इस समय आप मुझे चौकीदार के रूप में देख रहे हैं। इसके अलावा साल में एक दिन आप मुझे बादशाह साहब की धरती की सड़कों पर झाड़ू लगाते जमादार के रूप में भी देख सकते हैं। बाकी सारे दिन आप मुझे विश्वविद्यालय के प्रोफेसर के रूप में देखेंगे। मेरी इन बातों का उद्देश्य न तो आप में अपना दार्शनिक रौब लादना है और न आज के युग के सुसंस्कृत व विद्वत् भाषावादियों की तरह लच्छेदार भाषा के बल पर अन्यों को अपने से हीन समझने का ही स्वांग रचना है। मैं तो सिर्फ इस धरती की हकीकत को आपके सामने रखना चाहत हूं कि खान साहब के असूल के मुताबिक यहां रहने वाले हर आदमी को ऐ स्वेच्छा से करना होता है। ऐसा करने में हम सब भी गर्व अनुभव करते के मेरी बातों का यकीन न हो तो आप स्वयं यहां रहकर यह

तक देख सकते हैं कि स्वयं बादशाह साहब, उनके अब्बाजान तथा उनके दिल्ली वाले चाचा एक दिन चौकीदार व एक दिन यहां झाड़ू लगाते हैं कि नहीं ?" कहते कहते वह एकाएक चुप हो आया। प्रश्न भरी आंखों से मुझे देखने लगा। 'पहले तो आपको इन बातों पर यकीन ही नहीं होगा। यदि यकीन करेंगे भी तो आप सोचेंगे कि एक प्रोफेसर चौकीदारी करने या झाड़ू लगाने को कैसे राजी हुआ। प्रश्न तो यह विचारणीय है पर इसका जरा भी महत्व इसलिए नहीं कि जब इतने पैसे वाले होते हुए, खान साहब स्वयं ऐसा करते हैं तो हम ? फिर एक बात और। क्या मैं जिंदगी के आखिरी क्षण तक भी, कभी यह भूल सकता हूं कि मैं आज जो कुछ हूं वह सब इनकी ही बदौलत हूं।"

ओफ ! कितने अजीब थे वे क्षण, जब एल० डी० सी० बनने की लालसा से दिल्ली की सड़कें छानते-छानते मैं हार गया था। तब हार कर मैं फौज में भर्ती होने लाल किला गया था। इसके अलावा मेरे पास अब और कोई चारा नहीं था। उस पर भी यह कि उसकी पिछली रात मुझे अपनी उस मां की मरणासन्न अवस्था की सूचना तार द्वारा मिली थी जिसने मेहनत मजदूरी करके मुझे मैट्रिक करवाया था। क्योंकि उसके गहने आठवीं तक की फीस व किताबों में खप चुके थे। मुझे आज भी वह क्षण अच्छी तरह याद है जब नवीं की किताबें खरीदने मां ने पिता की आखिरी स्मृति देवताओं को रखने वाले चांदी के दड़ोर को बेचने उठाया था। मां का उस समय का अश्रुपूर्ण चेहरा मुझसे कभी भी भूला नहीं जाएगा। तब इसीको बर्दाश्त न कर मैंने कहा था, 'मां, चाहे तुम कुछ भी कहो, ऐसी हालत में अब मैं नहीं पढ़ूंगा।' तब मेरा इतना कहना ही था कि मां ने जिंदगी में पहली बार मुझे कसकर चांटा मारा था और कहा था, 'कम्बख्त ऐसा कहने के बदले अगर तू आत्महत्या कर लेता तो मैं दुखी तो जरूर होती, पर मुझे एक बात का संतोष तो होता कि तेरे से बेवकूफ लड़कों से तेरे को, बुरी हालत में तो नहीं देख पाऊंगी। खबरदार फिर कभी ऐसी बात की तो। लोगों की छातियों में ऐसे ही सांप लोट रहे हैं कि तू पढ़ रहा है। कई गांव वाले बड़े हितैषी बनकर कहते हैं कि इतना करने से तो अच्छा है कि इसे तो ब्रह्मवृत्ति सिखाओ, उसे तो इसके चाचा ही सिखा देंगे। मेरी कोख से पैदा हुआ है तो इन सबको एक न एक दिन दिखाना कि पढ़कर क्या कुछ किया जा सकता है ?' तब मैंने सिर झुकाकर मां की आशाओं को पूरा करने की प्रतिज्ञा की थी। पर अफसोस कि मैट्रिक के बाद पढ़ाना मां के वश से भी बाहर हो गया। क्योंकि रानीखेत में इंटर कालेज का खुलना एक साल के लिए टल गया। मैंने फिर भी हिम्मत नहीं हारी। दिल्ली आकर नौकरी करते-करते नाइट कालेज से पढ़ने की ठानी। क्योंकि अल्मोड़ा व नैनीताल तो

मेरे लिए लंदन व पेरिस से भी अधिक दूर थे। पर मेरा दुर्भाग्य कि बेसहारा व बेसिफारिशी के कारण नौकरी यहां भी नहीं लग पाई। यह ही कारण था कि आखिर में मैंने सेना में भर्ती होने की ठानी। पर मेरा दुर्भाग्य कि मेरी छाती दो इंच कम थी। तब इसी कारण मुझे भर्ती की लाइन से हटा दिया गया था। तब एक ओर अश्रुपूर्ण पलकों से मैं लाइन से हट रहा था, दूसरी ओर, मुझे ऐसा लग रहा था जैसे घर मेरी मां मर चुकी है। मेरे पास पैसा तो एक-न-दिन हो ही जाएगा, मगर मैं अब मां के मरते समय के चेहरे को कभी भी नहीं देख पाऊंगा···। जानते हो तब क्या हुआ ?"

अब मैं बेचैनी अनुभव कर रहा था। यह जानने का प्रयत्न कर रहा था कि कहीं यह मेरा कोई सहपाठी तो नहीं ? क्योंकि इंटर कालेज के खुलने की बात के टलने के ही कारण मेरी भी पढ़ाई छूटी थी। अब मैं एक-एक कर अपने सहपाठियों को याद करने लगा। तभी पीछे रेलवे स्टेशन की ओर से रेल की सीटी तथा छुक-छुक धुक-धुक सीं-सीं की आवाज सुनाई दी। जिसने मुझे एकाएक ही वह क्षण याद करा दिया जब दिल्ली प्लेटफार्म पर पांव रखते ही मेरी आंखों में आंसू उभर आए थे कि कितना अच्छा होता यदि सारे ज़िले में प्रथम आने के बदले मैं भी सौतेले भाई की तरह फेल हो जाता। कम-से-कम एक साल और पढ़कर इंटर तक पढ़ने की आस लगाए तो रहता। इतना ही नहीं, तब मेरे दिमाग में अपने उस सहपाठी की याद ताज़ा हो आई थी जो पहाड़ के सातों ज़िलों में प्रथम आया था। मैंने तीखी नज़रों से सामने अपने से बातें करते चौकीदार को देखा।

"तब मैं भरती कैंप से जितना दूर होता जा रहा था उतना ही मुझे ऐसा लग रहा था जैसे कोई मुझसे कह रहा है—धिक्कार है तुम्हें। एक ओर तुम्हारी मां मरणासन्न अवस्था में है। दूसरी ओर, तुम उसी मां के पास जाने के बदले इस तरह भटक रहे हो। तब मैं एकाएक ही फूट-फूटकर-सा रोने लगा था। तब ही तो आया था पचास-पचपन बरस का एक आदमी मेरे पास। जो मुझे सांत्वना देते, ले आया था इन खान साहब के पास। मेरा इनके पास पहुंचना ही था कि मेरी ज़िंदगी का नक्शा ही बदल गया। कहां मेरे रिश्तेदार व परिचितों ने मेरी बेकारी को देख, पच्चीस रुपये लौटाने के काबिल भी मुझे नहीं समझा था। वहीं पूरे एक हज़ार रुपये मुझे सौंपते हुए मैंने इनको यह कहते हुए पाया था—तुम होनहार लगते हो। मां का इलाज कर, सीधे यहीं चले आना ?—इतना कहते-कहते वह सहसा रुक गया। एक बार उसने आसमान की ओर देखा। फिर हंसते हुए देखा मेरी ओर। इतना ही नहीं, तब उन्होंने अपने हस्ताक्षर वाला एक कार्ड मुझे देते हुए कहा था—यदि मां के इलाज के लिए और पैसों की ज़रूरत हो तो और लिख देना। यह सुनना ही

था कि मैं अवाक्-सा उन्हें देखता रह गया। फिर जैसे मुझसे यह सब बर्दाश्त ही न हो पाया हो कि मैं झटके के साथ बाहर चला तो आया, पर जितना ही मैं आगे बढ़ रहा था। इतना ही मुझे लगने लगा जैसे मुझसे कोई कहने लगा है—चिंता न करो। वर्ण की इस धरती में अब ऐसी कोई भी माँ बेमौत व बेइलाज नहीं मर सकती है जिसके बेटे के पास बेकारी या अन्य किसी कारण से उसके इलाज के लिए पैसे न हों।…तब घर पहुंच मैंने जब ये सारी बातें माँ को सुनाईं तो रुंधे कंठ से वह बोली थी—बेटा भगवान के हर काम में भलाई ही होती है। भला-बुरा सिर्फ हमारी समझ के कारण है। अब तू ही बता, अगर तू ऐसी हालत में नहीं रहता तो क्या तेरी मुलाकात ऐसे आदमी से होती? मेरे ठीक होने पर तू फिर सीधे उसी आदमी के पास चले जाना। भूलकर भी इधर-उधर मत जाना। क्योंकि जिस भगवान ने पैदा होने के एक साल के अंदर ही, तेरे राह दिखाने वाले पिता को तुझसे छीना था। उसी ने फिर तेरे को इंसान बनाने वाले से मिलाया है। तो…अब भला बताओ मैं उसी खान साहब को कैसे भूल सकता हूं। जिन्होंने मुझे सहारा दे यहां से वहां लाकर खड़ा कर दिया। अब तुम्हीं बताओ मैं कैसे भूल सकता हूं उन क्षणों को जब एक ओर मेरे खून से जुड़े मेरे रिश्तेदारों व परिचितों ने मुझ पर पच्चीस रुपयों तक के लिए विश्वास नहीं किया था तो, वहीं दूसरी ओर विश्वास किया था उस आदमी ने जिसे पहले क्षण मुसलमान समझ मैं जहां घबराया था। वहीं मेरे दिमाग में एक प्रश्न उठा था कि कहीं मैं जेबकतरों व चोरों आदि के गिरोह में तो नहीं फंस आया हूं। मुझे उस क्षण यह क्या पता था कि मैं इस समय एक ऐसे सच्चे इंसान के पास खड़ा हूं जो जाति-धर्म की संकीर्ण सीमाओं से कोसों ऊपर उठा ऐसा इंसान है जिसकी नजरों में आदमी व आदमी में जरा भी फर्क नहीं है। मेरे दोस्त मैं कैसे भूल सकता हूं उन खान साहब को व उनके असूलों को। जिन्होंने मेरा चेहरा देखते ही ताड़ लिया कि मेरी गरीब होनहारी मैट्रिक के साथ ही दफनी नहीं है उसे सिर्फ सहारा देने भर की जरूरत है। क्योंकि जो लड़का मैट्रिक में सातों जिलों को टॉप कर सकता है वह…"

"शे…खर।" अब मैं बचपन की यादों के बीच चीख-सा उठा। हालांकि बेहद बदलाव के कारण मुझे यह अब भी यकीन नहीं आ पा रहा था कि यह वह ही है।

"अरे राजू तुम?" अब वह भी अपने उसी राजू को पहचान चुका था जिससे अलग-अलग कक्षाओं के होने के बावजूद ऐच्छिक विषयों में वह अक्सर मिला करता था। इतना ही नहीं, वर्षों बाद दोनों का बचपन अब दोनों को आलिंगनबद्ध तक कर चुका था। क्योंकि न तो अब वह हो प्रोफेसर शेखर था

और न मैं ही अब यू० डी० सी० राजू। थोड़ी देर बाद जब हम दोनों एक-दूसरे से छूटे तो उसने मुझसे बचपन की कुमायूंनी भाषा में पूछा, "के काम करछ भुलू तू?—मैं तो भुला तुझे पहले ही पहचान गया था। सोचा देखूं तुम..."

इस अप्रत्याशित मिलन ने मेरे रोम-रोम में अजीब-सी गुदगुदी पैदा कर दी। पर अपनी झेंप के कारण उत्तर कुछ नहीं दे पाया। हालांकि जी चाहता था कि एक ही सांस में सारे अतीत को उगल जाऊं। इससे झगड़ा करूं कि लगाव व छिपाव वाली आदत तुम्हारी फिर भी नहीं बदली है। और कहूं कि, मैं तो अभी तक खान साहब जैसे व्यक्ति की खोज ही कर रहा हूं। क्योंकि मैट्रिक के बाद मेरी परिस्थितियों ने मेरी होनहारी को दफना-सा दिया। मजबूरी वश अब तक हमेशा यह ही भूलने का प्रयास भर करता रहा कि एल० डी० सी० तो मैं सिर्फ दफ्तर में हूं घर पर या इधर-उधर तो एक छोटा-मोटा लेखक-सा हूं। पर जब एल० डी० सी० पने से छुटकारे की कोई भी उम्मीद नज़र नहीं आई तो लगभग अठारह वर्ष बाद विवशतावश अकलमंदी का सबूत बी० ए० के सर्टिफिकेट खरीदने की तावड़तोड़ कोशिश में उलझा। फिर इसी बीच कई विश्वविद्यालयों ने अकलमंदी के इस सर्टिफिकेट को खरीदने के प्राइवेट रास्ते एक साथ ही खोल भी तो दिए थे। इस बीच बी० ए० की डिग्री पाने के ही साथ सरकार की एक मेहरबानी के भी कारण एक छोटा-सा बदलाव जरूर आया कि मैं यू० डी० सी० के अखिल भारतीय मुकाबले को पास करने में सफल हो गया। क्योंकि अगर दस साल की सर्विस वाले नोन-टाइपिस्ट एल० डी० सी० लोगों को, टाईपिंग टेस्ट से छूट नहीं मिलती तो शायद यू० डी० सी० भी बनने का सपना संजोने, पैंतालीसवें बसंत के आने की दो-तीन साल और इंतजार करनी पड़ती। उस पर भी हद यह कि एक ओर तो टाईपिंग टेस्ट पास न करने के कारण मैं अपने यू० डी० सी० बनने के हक को भी गंवा चुका तो दूसरी ओर, पिछले पंद्रह वर्षों से लोहा ही कूटता रहा। क्योंकि मेरे फेफड़े इतने सौभाग्यशाली शरीर के अंदर छिपे थे कि टी० बी० के कीड़े उन तक पहुंचने से पहले ही मेहरोली टी० बी० सेनीटोरियम में पहुंचते ही मार दिए गए थे। यह दूसरी बात थी कि टेस्ट का नाम सुनते ही मैं कांपने लगता था। पर बोल मैं एक शब्द भी नहीं पाया। केवल देखता रहा उसकी ओर—अपलक एकटक।

"राजू तुम न भी बताओ। तुम्हारी लगभग सारी स्थिति का मैं अंदाजा लगा चुका हूं। वर्षों से पढ़ाते-पढ़ाते, वह भी सात-आठ साल से नाइट कालेज में, इतना तो अनुभव हो ही गया है।" शेखर ने ही अब बातचीत का सिलसिला जोड़ा, "जब भी मैं अपनी कक्षा में पढ़ते अधेड़ उम्र के बूढ़े विद्यार्थियों

को बच्चों की तरह शैतानी करते देखता हूं, बेचैन हो उठता हूं। मुझे हमेशा अपने अतीत के दिन याद आ जाते हैं कि अगर मुझे प्रान साहब नहीं मिलते तो शायद मैं स्वयं भी इन्हीं विद्यार्थियों के बीच बैठा होता या फिर अपने न पढ़ पाने की भूख को, अपने पढ़ते बच्चों में साकार होते देख, उसे भूलने का प्रयास भर करता या फिर बच्चों को अच्छे नंबर न लाते देख अपने नंबरों की याद में बेरहमी से उन्हें जहां पीटता, वहीं दूसरी ओर, आत्म-ग्लानि व पश्चाताप के आंसुओं के बीच यह सोचता कि इनके कम नंबर आने का कारण यह नहीं है कि ये पढ़ने में नालायक हैं बल्कि यह है कि बदली परिस्थितियों के बदले पाठ्यक्रम को पढ़ाने के लायक जहां मुझे भी रहने नहीं दिया गया है। वहीं दो दो तीन-तीन ट्यूशनों के बल पर अच्छे नंबरों के पाने की भी तो नई-नई तरकीबें खोजी जा रही हैं। क्योंकि जिस आर्थिक विवशता के कारण मुझे पढ़ना छोड़ना पड़ा। वही आर्थिक सम्पन्नता गरीबों के बच्चों के ज्यादा नंबर कैसे सह सकती है? रही बात अपवादों की! अपवाद तो अपवाद ही होते हैं। और या पेशावादी शिक्षा प्रणाली की खामियों के बारे में सोचते-सोचते मैं केवल यह सोचता कि एक चालाक अंग्रेज ने वफादार गुलाम क्लर्कों को जन्मते रहने के लिए इस ऐसी शिक्षा प्रणाली की रचना की थी जिसमें सारे के सारे हिंदोस्तानी दिल व दिमाग से पूरी तरह अंग्रेज और वफादार क्लर्क बन जाएं। वहीं दूसरी ओर उनके साथ जब बीस बीस पच्चीस पच्चीस आश्रित गुलाम हिंदोस्तानियों को यह तक सोचने का मौका न मिले कि शिक्षा का लक्ष्य बच्चों के अंदर सुप्त नैसर्गिक गुणों का विकसित कर उन्हें पराकाष्ठा तक पहुंचाना होता है न कि आज जिस सुधार का स्वांग रचकर सुविधा प्राप्त लोगों द्वारा बाकी लोगों के रास्तों को पग पग पर रोकने की साजिशें करना होता है। सच पूछो तो राज आज यह स्थिति इतनी वीभत्स रूप ले चुकी है कि हम सारे के सारे हिंदोस्तानी जहां दिल व दिमाग से पूरी तरह क्लर्क बन आए हैं वहीं यह क्लर्की [illegible] में [illegible] का रूप ले चुकी है जिसे अब हम छोड़ना तो चाहते हैं पर उसने हमारे [illegible] को ऐसा दब दिया है कि [illegible] फैशन की [illegible] की सारी सामाजिक व्यवस्था के हित [illegible] को सारा [illegible] सामने रखना है। यही वजह है कि हम यह सब आज समझ नहीं पा रहे हैं कि [illegible] क्या कहा है [illegible] तो लम्बी चौड़ी बातें हैं। तुम्हें न [illegible] के बारे में जानना है। जानना तो मैं भी चाहता हूं कि इतना पैसा होने पर भी ये नौकरी क्यों करते हैं और ये इतना पैसा पाने की तरफ क्यों भागते हैं [illegible] कारण क्या है पर मेरी तो समझ में कुछ भी नहीं आता। [illegible] बार मैंने [illegible] साथ [illegible] भी मगर [illegible] अपना [illegible]

दास्तां हैं। पर अलग-अलग होते हुए भी ये सब इतने जुड़े हुए हैं कि यहां की बातें सोचने पर आदमी ठगा-सा रह जाता है। इसका अंदाजा सिर्फ इस तरह की बातों से लगाया जा सकता है जैसे कि हिंदू-मुसलमान-सिख आदि उन दिनों भी इधर प्रेम से रहे जबकि आसपास के दूसरे मुहल्लों में वे एक-दूसरे के खून के प्यासे बन आए। यहां प्रश्न यह है कि ऐसा क्यों ? मेरी नज़रों में यह बादशाह साहब के दिल जीतने का प्रतिफल है। यह भी कम तूफानी बात नहीं है, जब आज का उनका कार ड्राइवर यहां आया था। आज भी उसकी सूरत कम भयानक नहीं। मेरी नज़रों में, ऐसे नाजुक क्षणों में भी, यहां वाले जो हिम्मत नहीं हारते उसके पीछे सिर्फ यह वर्दी ही कारण है, जिसे मैंने पहन रखा है। काश, मेरे देश की धरती का प्रत्येक दिल, ऐसा ही फौलादी बन आता। ताकि मेरे देश की धरती की ओर टेढ़ी निगाह से देखने का कोई भी साहस नहीं बटोर पाता। ओफ, इतना ही नहीं राजू, जब मैं विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों को पढ़ाते-पढ़ाते अपने झाड़ू-पकड़े रूप को याद करता हूं तो मुझे लगता है—जिस भगवान ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र के भेद की बात कही थी, वही आज सिसकियां भरते, घबराया-घबराया-सा कह रहा है—मेरे कहने के अर्थ का तो अनर्थ ही हो गया। मेरा तो यह आशय था कि रूपक की दृष्टि से यदि देखा जाए तो ये सब मेरे एक ही शरीर के अलग-अलग अंग हैं न कि अलग-अलग शरीर के अलग-अलग अंग। क्योंकि शरीर के चारों अंगों में से जब किसी भी एक अंग के कट जाने से सारा शरीर बेकार हो जाता है तो किसी भी एक अंग को घृणा की दृष्टि से देखने से मुझे ग्लानि कैसे नहीं हो सकती है। क्योंकि ये तो सब मेरे ही शरीर के अंग हैं। मेरी नज़रों में न तो कोई छोटा है न बड़ा, न ऊंचा तथा न नीचा और न वह उपेक्षणीय ही।"



जब मैं प्रोफेसर शेखर से अनजान बनने का वायदा ले पुनः बगिया के पास

दास्तां हैं। पर अलग-अलग होते हुए भी ये सब इतने जुड़े हुए हैं कि यहां की बातें सोचने पर आदमी ठगा-सा रह जाता है। इसका अंदाजा सिर्फ इस तरह की बातों से लगाया जा सकता है जैसे कि हिंदू-मुसलमान-सिख आदि उन दिनों भी इधर प्रेम से रहे जबकि आसपास के दूसरे मुहल्लों में वे एक-दूसरे के खून के प्यासे बन आए। यहां प्रश्न यह है कि ऐसा क्यों ? मेरी नज़रों में यह बादशाह साहब के दिल जीतने का प्रतिफल है। यह भी कम तूफानी बात नहीं है, जब आज का उनका कार ड्राइवर यहां आया था। आज भी उसकी सूरत कम भयानक नहीं। मेरी नज़रों में, ऐसे नाजुक क्षणों में भी, यहां वाले जो हिम्मत नहीं हारते उसके पीछे सिर्फ यह वर्दी ही कारण है, जिसे मैंने पहन रखा है। काश, मेरे देश की धरती का प्रत्येक दिल, ऐसा ही फौलादी बन आता। ताकि मेरे देश की धरती की ओर टेढ़ी निगाह से देखने का कोई भी साहस नहीं बटोर पाता। ओफ, इतना ही नहीं राजू, जब मैं विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों को पढ़ाते-पढ़ाते अपने झाड़ू-पकड़े रूप को याद करता हूं तो मुझे लगता है—जिस भगवान ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र के भेद की बात कही थी, वही आज सिसकियां भरते, घबराया-घबराया-सा कह रहा है—मेरे कहने के अर्थ का तो अनर्थ ही हो गया। मेरा तो यह आशय था कि रूपक की दृष्टि से यदि देखा जाए तो ये सब मेरे एक ही शरीर के अलग-अलग अंग हैं न कि अलग-अलग शरीर के अलग-अलग अंग। क्योंकि शरीर के चारों अंगों में से जब किसी भी एक अंग के कट जाने से सारा शरीर बेकार हो जाता है तो किसी भी एक अंग को घृणा की दृष्टि से देखने से मुझे ग्लानि कैसे नहीं हो सकती है। क्योंकि ये तो सब मेरे ही शरीर के अंग हैं। मेरी नज़रों में न तो कोई छोटा है न बड़ा, न ऊंचा तथा न नीचा और न वह उपेक्षणीय ही।"



अब मैं प्रोफेसर शेखर से अनजान बनने का वायदा ले पुनः बगिया के पास

आ गया था। रानीखेत की यादों के बीच कभी बगिया की ओर भी देख रहा था तो कभी धार साफ करते उसी भयावने आदमी को। उसने भी देखा एक-दो बार मेरी ओर मगर वह फिर पूरी तरह मेरी उपेक्षा-सा करता अपने काम मे ही जुट गया था। उसके इस व्यवहार से लगता था जैसे वह दिखने मे जितना डरावना है व्यवहार मे भी उतना ही नीरस है। शेखर ने भी उसके बारे मे ऐसा ही कहा था—मेरी तो राय है कि तुम इधर और सबसे मिल लो, पर उससे नही। क्योकि वह न तो किसी से बातें करता है और न इधर वाले ही उसकी इस आदत के कारण उससे बातें करते हैं। फिर भी यदि तुम उससे बातें करना ही चाहो तो, कम-से-कम उस क्षण तक उसके पास न जाना जब तक वह अपना काम खत्म कर आराम से बैठ न जाए। यही कारण था कि मैं इधर-उधर टहल रहा था। टहलते-टहलते जब मैं पुनः बाग के पास आता, अनायास ही विचार उठते यह अजीबोगरीब विसगति कैसी? इन जैसे फूलो के पास खड़ा होकर यह रूखे का रूखा कैसे? ऐसे माहौल मे तो परेशान से परेशान आदमी भी अपने को थोड़ी देर के लिए भूल ही जाए। तब फिर यह कैसा आदमी है, जो इन फूलो के ही पास कार गैरेज के ऊपर दुमजिले मे रहते हुए भी इतना नीरस है? और जब मैं टहलते-टहलते स्कूल की बिल्डिंग के पास पहुंचता तो दो-चार क्षण हतप्रभ-सा एकमजिली इमारत को देखता रह जाता जिसे शेखर ने इधर की बाजार कहा था।

ऐसा इसलिए नही कि खान साहब के मुहल्ले की चहारदीवारी जतलाने वाली दीवार से वह इमारत कम ऊंची थी। बल्कि इसलिए कि सड़क की ओर उस इमारत की पीठ थी। उस पर भी एक बात और कि स्कूल के पास उस इमारत व दीवार के बीच की बची जगह को एक छोटी दीवार से बद कर दिया गया था ताकि बाजार के अदर जाने वाले हर आदमी को इधर के बदले, इस मुहल्ले की चौड़ाई को समेट इस इमारत की आखिरी ओर ही जाना पड़े। उस आखिरी छोर के पास से मैदान के समानातर एक आठ मजिली इमारत शुरू होती थी जो आधुनिक भवन-निर्माण कला की झलक-सी थी। उसी की बगल से उधर की पुरानी यादो वाली पुराने किस्म की दो मजिली इमारत शुरू होती थी जो बगिया के पास के सामने दिखती थी। पर मेरे लिए इन दोनो नई-पुरानी इमारतो का उतना महत्त्व नही था जितना कि बाजार वाली इमारत का। जिसे न तो पुराने किस्म की भवन-निर्माण कला का चिह्न माना जा सकता था, न नया ही। पर इस सबके बावजूद मैं उधर अधिक नहीं ठहरता क्योकि जब भी उधर मुझे जरा ज्यादा देर होने लगती वही मुझे लगता कि जैसे वह व्यक्ति अपना काम खत्म कर आराम से बैठ चुका है। पर इधर पहुचकर फिर यही देखता कि वह अभी भी काम पर जुटा हुआ है।

पर इस बार ऐसा नहीं हुआ। इस बार उधर आते ही मैंने पाया कि वह अब पुराने कपड़ों को इकट्ठा करने लगा है। मैंने अन्दाजा लगाया कि वह अब जहां कार साफ कर चुका है वहीं दो-चार मिनट बाद ही वे क्षण आने वाले हैं जब मैं उसके पास बैठकर उससे बातें करूंगा। मगर तभी मैंने देखा कि वह एक अजीब-सी खुराफात करने लगा कि एक लंबी-सी छड़ी पकड़कर कार के चारों पहियों को बजाने लगा। उसका यह काम मेरी समझ में जरा भी नहीं आया। पर जब उसने एक लंबी-सी सींक एक जगह कार के अगले भाग में डाली और कार स्टार्ट कर उसे आगे-पीछे करने लगा तो सारी बात मेरी समझ में आ गई कि वह कार की जांच कर रहा था। तभी मैंने देखा कि कार खड़ी कर वह कपड़े उतार, दो-चार औजार पकड़े कार के नीचे लेट गया। मेरे मन में उसके प्रति अब और भी अधिक उत्सुकता पैदा हो आई। मैंने फैसला किया कि चाहे प्रतीक्षा कितनी ही और क्यों न करनी पड़े पर सबसे पहले मैं इसी से मिलूंगा।

सौभाग्यवश, मुझे उसके बाद अधिक इंतजार नहीं करनी पड़ी। पांच-सात मिनट ही बाद उसने कार को गैरेज के अंदर रख दिया। गैरेज को ताला लगा वह वहीं पास ही फर्श पर बैठकर बगिया की ओर ही देखने लगा। उसका बैठना ही था कि मैं बेहद फुर्ती से उसकी ओर लपका। मैं अभी दो-चार कदम आगे बढ़ पाया था कि उसने बेहद तिरछी निगाहों से एक बार मुझे देखा और रौबीले स्वर में बोला, "क्या बात है ? बहुत देर से इधर-उधर चक्कर क्यों···?"

"भय्या मैं तो···।" मैं अभी अपना वाक्य पूरा भी नहीं कर पाया था कि वह बीच में ही झल्लाया, "मैं तो···मैं तो का क्या मतलब ?"

अब मेरे पांव अनायास ही रुक गए। बहुत प्रयत्न करने पर भी आगे नहीं बढ़ पाए। मेरा तो रोम-रोम ही सिहर-सा उठा। झेंपकर मैं मुड़ना ही चाहता था कि मैंने देखा कि उसके रूखे चेहरे पर हल्की-सी हंसी छा-सी आई है और वह सिर के इशारे से अपने प्रश्न को पुनः दुहरा-सा रहा है। अब मेरी जान में जान आई। मैं अब अपने में काफी साहस बटोरते हुए बोला, "असल में मैं जानना चाहता था कि बादशाह साहब के बारे में आपसे···"

"अच्छा, तो आप बादशाह साहब के बारे में जानना चाहते हैं कि वे क्या हैं तथा ऐसा क्यों करते हैं ?" उसने मेरी बात पुनः जहां बीच में ही काट दी वहीं प्रश्न भरी निगाहों से मुझे देखता-देखता रहा। एक-दो क्षण बाद ही एक अजीब-सी हंसी हंसते हुए बोलने लगा, "जानना तो मैं भी चाहता हूं कि आखिर ये बादशाह साहब हैं क्या ? इस तरह पानी की तरह क्यों पैसा बहाते हैं ? इनके व्यक्तित्व में अनोखा ऐसा क्या जादू है जो···पर जब भी मैं

किया अल्लाह या ईश्वर ने जो उसने मेरे पास शक्ति नहीं दी। वर्ना तो… जब अपने एक साथी की मृत्यु का बदला लेने मैंने एक बिरादरी के सात घरों को बाहर से ताला लगवाकर पैट्रोल छिड़क-छिड़ककर आग लगवा दी तो मैं सोचता हूं उस राजा ने तो सिर्फ सैनिकों को या उन बिल्कुल ही लूले-लंगड़े व बूढ़ों को मारा होगा जो भाग नहीं सके होंगे। क्योंकि ऐसे में तो लूले-लंगड़ों तक में अपनी जिंदगी या अपने जिस्म के टुकड़ों को बचाने के लिए भागने की अपार शक्ति आ जाया करती है। पर…पर मैं था कि मैंने अपने आने की सूचना तक नहीं दी। और न उस राजा की तरह ललकारा ही कि जिसे मरना है वह सामने आए, नहीं तो भाग जाए। मैंने तो आग लगाने के बाद ही ललकारा कि यह मेरे द्वारा लगाई गई आग है। वह राजा तो कम-से-कम दौलत को तो ले गया था मैंने तो अक्रोशवश दौलत को तो क्या, उन जानवरों तक को नहीं बख्शा। जिनका केवल इतना कसूर था कि वे उनके घरों के खूंटे में बंधे थे।…आप यकीन करें या नहीं, मैं तब एक ओर खड़ा चीखों को सुनकर अट्टहास करते हुए केवल इस बात की प्रतीक्षा में था कि कब आग बुझे और कब मैं एक-एक कर जली लाशों को एक जगह इकट्ठा कर, पांव से ठोकर मारकर उन्हें गिनूं कि दुश्मन का कोई बच्चा जिंदा तो नहीं बचा रह गया। ताकि बदले की कभी गुंजाइश ही नहीं रहे। इतना ही नहीं, मैंने दूसरों की बहू-बेटियों की इज्जत को इज्जत नहीं समझा। उन्हें सिर्फ ऐसा खिलौना समझा, जिससे दो-चार दिन खेलकर केवल तोड़ना भर होता है। पर आज…

"आज मैं कुछ और ही हूं। कुछ भी वैसा जो आज उन राख हुए घरों व उनके बीच झुलसे होंठों से बादशाह साहब की तरह केवल यह सुनना चाहता है—आदमी पैदा होते समय बुरा पैदा नहीं होता। बुरी होती हैं परिस्थितियां, जो आदमी को आदमी नहीं रहने देतीं। पर अफसोस—सोचता हूं कि कितना अच्छा होता यदि उन सभी चेहरों को एक बार भी मुस्कुराता देख पाता। पर अब एहसास करता हूं कि मैं अपने किए पर प्रायश्चित करने भर के लिए सैकड़ों व करोड़ों जन्म भले ही ले लूं, पर किसी भी जन्म में उन सभी चेहरों को एक साथ देखना तो अलग, उसी रूप में एक को भी कभी नहीं देख सकता। तब मेरा माथा फटने लगता है। तब सोच के ऐसे अभागे क्षणों में सोचता हूं कि आसपास के घरों में घूमकर मुस्कुराते चेहरों को देख यह याद करूं कि झुलसे होंठों पर कभी ऐसी ही मुस्कुराहट रही होगी। ओफ—डरो मत भैया। मेरे खौफनाक कामों की बातें सुन डरो मत। मुझे प्रायश्चित के दो आंसू बहा भर लेने दो। ताकि आखिरात के वक्त मुझे अपनी जबान न खोलनी पड़े। चारों ओर बहने वाली हवा में समाई मेरी इस समय की आवाजें स्वयं बोलें कि कहीं डरकर या घबराकर मैं आखिरात के समय

रोम-रोम आग हो आया था। पहल का निशान शुरू करने से पहले, मैं अट्टहास करते चारों ओर जी भर देखने लगा। रोशनियां धीरे-धीरे स्थिर हो रही थीं। मैंने उनके स्थिर होने तक इंतजार करना ठीक समझा। तभी मैंने देखा कि फिर वही लड़का अकेला और निहत्था मेरी ओर आ रहा है। तब—मेरे दिमाग में विचार आया था कि आज जब कोई मुझे ललकार ही रहा है तो कम से कम उस से हाथ तो मिलाऊं, फिर करूं पहल शुरू। पर तब तक वह लड़का था कि मेरे पास आकर जमीन की ओर झुकते हुए कुछ बोल ही रहा था कि मैं झल्ला उठा—क्या यह ही है तुम्हारी ललकार? जो, मेरे पांवों की ओर गिर रहे हो। तब बादशाह साहब झटके के साथ पीछे हटकर तनकर खड़े होते हुए बोले थे—तुमने गलत अर्थ लगाया है। मैं तो तुम्हें सिर्फ इस धरती के उसूल को बता रहा था। वह भी इसलिए कि मैं सोच रहा था कि कोई बहादुर यहां आया है, उसे इज्जत भी दूं। क्योंकि इस धरती का असूल है कि जब भी किसी आदमी को इम्दाद दी जाती है, इम्दाद उसके पांवों पर रखी जाती है। ताकि वह इस धरती मां को मज-बूरन सलाम करे। इसीलिए मैं तुम्हें इज्जत देते हुए तुमसे यह कहना चाहता था कि पहले इस धरती मां को झुककर प्रणाम करो। फिर जहां से चाहो, ले जाओ। क्योंकि यह धरती जहां ईंटों का जवाब पत्थर से देना जानती है वहीं बहादुरों की इज्जत करना भी जानती है। अपने इसी इम्दाद वाले नियम को तोड़कर मैं तुम्हें सिर्फ इज्जत दे रहा था किंतु···। खैर, अब तुम समझ गए होगे। अब करो पैसा ले जाने वाला अपना काम शुरू। तुम्हें यहां कोई रोकेगा नहीं। यहां तो तुम्हें अट्ठहास करने की जरूरत नहीं थी क्योंकि यहां पैसे लेने से किसी को वैसे भी रोका नहीं जाता है। अगर तुम्हें यह मालूम होता तो न तो तुम अट्ठहास ही करने की आवश्यकता अनुभव करते, न अपने साथ ये हथियार ही लाते। खैर, छोड़ो इन बातों को। इस समय तो अपना काम करो अब शुरू। वैसे तुम जैसे आदमियों के लिए धरती मां को प्रणाम करना और भी जरूरी है। क्योंकि जो व्यक्ति जिस धरती में पैदा हुआ है या जहां रहता है यदि वह उस धरती को सम्मान नहीं दे सकता तो वह दुनिया में कोई भी काम नहीं कर सकता।···तब मुझे बादशाह साहब की बातों पर हंसी आई थी। विचार उठा था कि यह एक ऐसा पागल तो नहीं जिसे अपनी मौत नहीं दिखाई दे रही है। पर वे थे कि जहां उनके चेहरे पर भय का नाम मात्र भी अंश नहीं था। वहीं वे बेधड़क बोले चले जा रहे थे—अब रही बात ललकार की। सो, वह तो हमारी ओर से तब पैदा हो, जब हम तुम्हें रोकें। हम तो तुमसे वैसे ही कह रहे हैं कि जितना चाहो ले जाओ। सिर्फ एक इच्छा है कि इन पैसों को सिर्फ ऐसे गरीबों को बांटना जो गरीबी की परिस्थितियों भर

की भी तो परिस्थितियों ने किया होगा कुछ…? तभी एकाएक मैंने सुना… रही बात ललकार की। मैं सोचता हूं कि तुम अंधेरे में वार करने के आदि हो। जबकि यहां उजाले के वार की बातें हैं। फिर भी मैं तुम्हारा उपकार कभी भी नहीं भूलूंगा क्योंकि तुमने मेरी बात मानकर वार करने में पहल शुरू नहीं की। वर्ना तुम नहीं जानते कि जिस धरती के लोग किसी भी आदमी को कोई भी वस्तु उठाने से नहीं रोकते—तुम जान जाते कि वे ही लोग यदि रोकने पर उतर आएं तो कैसे रोक सकते हैं।…पर अब मैं था कि गोली चलाना तो अलग, गोली चलाने का आदेश दे पाने में भी अपने को असमर्थ पा रहा था। इतना ही नहीं अब मुझे वे क्षण याद हो आए जब अपने पकड़े जाने के भय से मैंने अपनी उस पत्नी तक की हत्या कर डाली थी जिसके पास आने से पकड़े जाने का भय तक मुझे नहीं रोक पाया था। मेरे दोस्त, मेरे खौफनाक शरीर को देख अब घबराने की कोई जरूरत नहीं। अब तो क्या, मैं उस क्षण ही खौफनाक नहीं रहा था जब मैं बादशाह साहब के पांवों में गिर पड़ा था। क्योंकि पत्नी के अंतिम शब्दों की यादों ने मुझे पहली बार कुछ नया-सा अर्थ दिया था। उससे पहले तो उसके 'जहां भी रहो सुख से रहो, शांति से रहो' का अर्थ मैंने केवल हत्या-हत्याएं व लूट-लूटकर धन इकट्ठा करना लगाया था। जबकि अब मैं एहसास कर रहा था कि शांति का अर्थ धन बटोरना और उस बटोरे जाने से घबराकर लोगों को आत्मिक शांति के लिए बांटना नहीं, बल्कि कुछ और है। तभी बादशाह साहब ने कहा था—बाबा, अब तुम मां धरती को प्रणाम कर चुके हो। अब मेरा काम हल्का हो आया है। अब तुम जहां से मर्जी तथा जितना पैसा चाहो ले जा सकते हो। एक बात की प्रार्थना है कि संयोगवश यदि कोई आदमी तुम्हारे पैसा लेने के बीच आ जाए तो उसे मार मत देना। अब मैं चला। पर अब मैं उन्हें जाने नहीं दे रहा था। उनके पांवों को पकड़े सिसकियां भरता-भरता ही चला जा रहा था। तभी मैंने देखा कि मेरे साथी ने पिस्तौल तान ली है। मुझे संदेह हुआ कि कहीं वह बादशाह साहब को तो मारने पर नहीं उतर आया है। खबरदार, अगर इस बच्चे पर गोली…मैं अभी इतना ही कह पाया था कि बादशाह साहब फिर चिल्लाए थे—खबरदार तुम या तुममें से कोई भी आदमी गोली नहीं चलाएगा। क्योंकि गोली की आवाज से यह नहीं भांपा जा सकता है कि गोली किस पर चली है। बोलो, दूसरों पर चली गोली की आवाज व अपने पर चली गोली की आवाज में कोई अंतर होता है क्या? कारण इधर चली किसी भी किस्म की गोली का अर्थ होगा पहल का शुरू होना। तुम समझ नहीं सकते कि पहल की प्रतीक्षा को देखती रोशनियां क्या कर देंगी। संदेह भर के ही तो कारण दुनिया में तूफान उठा करते हैं। जानते हो मैंने रोशनियों को क्या कहा था।

तब मैं और मेरे साथी बादशाह साहब की बात का अर्थ नहीं समझ पाए थे। आज समझते हैं। इतना ही नही, यह सोचते हुए ही आज कांप उठते हैं कि यदि उस समय गोली चलाने की गलती कर दिए होते तो···इससे आगे सोच तक नही सकते। आज···आज मैं सोच के ऐसे क्षणो मे बीच हमेशा यह ही सोचता रह जाता हू कि आज मैं वह ही आदमी हू जो उस दिन डाका डालने यहा आया था या वह हू जो आज हू? आज मैं अपने आप मे आए इस बदलाव के बारे मे जब भी सोचता हू, घबरा उठता हू। हमेशा यही लगता है जैसे मेरा छिपा राज खुल आया है। क्योकि मेरे बारे मे या तो स्वयं बादशाह साहब ही जानते हैं या फिर मैं और अब एक तुम। क्योकि मैं उसी क्षण से पूरी तरह बदलकर यहो रहने लगा था जबकि मेरे बाकी साथी यहा से चले गए थे। मेरा अब और है भी तो कोई नही इस दुनिया मे। ऐसे क्षणो मे मैं बेहद घबरा आता हू। पर···तभी मुझे लगता है जैसे कोई मुझसे फिर कह रहा है—आदमी पैदा होते समय कोई बुरा नही होता। बुरी होती हैं परिस्थितिया, जो आदमी को आदमी नही रहने देती। और तब···तब मैं मन मे हमेशा यही विचार उठता हू कि हमेशा केवल एक बात सोचता हू कि कितना अच्छा होता यदि आदमी उन परिस्थितियो पर काबू पा लेता जो आदमी को आदमी रहने नही देती। ताकि आदमी-आदमी रहता। कई बार तो ऐसा सोचते-सोचते मैं पागल-सा हो आता हू। अपने हाथो हुई मौतों व झुलसती चीखो की याद भर-से काप उठता हू। घबराकर आखें बद कर लेता हू। फूट-फूटकर रोने लगता हू।"

इतना कहते-कहते वह एकाएक चुप हो आया। मैंने देखा कि वह बच्चो की तरह सचमुच ही सिसकिया-सी भरने लगा। तभी एकाएक ही उसने झटके के साथ मुह फेरा और सामने बगिया की ओर अपलक कुछ ऐसे देखने लगा जैसे उधर देख वह आत्मिक शाति का एहसास कर रहा हो। मैं उसकी एक-एक प्रतिक्रिया देख रहा था। रह-रहकर मेरे मन मे उसके प्रति विचार आ रहे थे कि यह ऐसी क्या बात है जो आज यह मुझ जैसे अनजान आदमी के सामने इस तरह खुल-सा आया है। वह भी तब, जबकि यह किसी से बातें नही करता था। तभी मैंने देखा कि वह झटके के साथ मुह फेरकर पुन मुझे ही कुछ ऐसे देखने लगा जैसे अदर-ही-अदर घबरा आया हो कि कहीं उसने आत्म-स्वीकारोक्ति ऐसे आदमी के सामने तो नही कर दी, जिससे उसे नुकसान हो जाने की सभावना हो। तभी वह एकाएक ही फिर बोलने लगा "कई बार इच्छा होती थी कि खुद अपने कारनामो के कारण अपने को पकड़ा दू। तब ऐसे विचारो के कारण जैसे ही मैं बाहर की ओर जाने की कोशिश करता तभी बादशाह साहब के खोले स्कूल के बच्चो को भी डरते देख काप उठता, उल्टे

पांव लौट आता। फिर या तो बादशाह साहब के अपने लिए बनाए मकान के अंदर छिप जाता या फिर उन फूलों को देखता रहता जिन्हें अपने से ज़रा भी न डरता देख मुझे बेहद शांति मिलती। तब दो-चार बार मैंने बादशाह से आग्रह किया था कि मैं अपने को गिरफ्तार करवाने बाहर नहीं जा सकता। मेहरबानी कर आप ही मुझे गिरफ्तार करवा दो। तब वह केवल मुस्करा भर देते थे और मैं अवाक्-सा उन्हें देखता रह जाता। घबराकर अपने किए पर स्वयं ही पछताता-सा अपने कमरे में आ जाता। ईश्वर से प्रार्थना करता — प्रभु मुझ पर रहम करो। मुझे जल्द-से-जल्द मृत्यु दो। हां, यदि मैंने सच्चे दिल से अपने किए पर एक बार भी पछतावा किया है तो जब भी तुम मुझे इस धरती पर पुनः भेजो तब प्रभो मुझे अपने किए की याद भर करने रूप व शरीर तो ठीक ऐसा ही देना मगर साथ में ऐसा वरदान दो कि मैं तो दुनिया में सबको देख सकूं मगर मुझे धरती भर में एक भी न देख सके। एक बात और कि मुझे दिखाई सिर्फ उस क्षण दे जबकि कोई मुस्करा रहा हो। और जब धरती में सामने कोई रो रहा हो, तब मेरी आंखों को न केवल दिखाई दे बल्कि मेरा शरीर ही क्रियाशील न रहे। भय्या तुम्हारा बहुत समय बर्बाद किया। तुम भी मुझे माफी दो या न दो। पर मैं तो तुमसे सिर्फ माफी…"



मैं अब उस जगह पर था जहां से एक ओर तो आठ-दस कदम की दूरी पर आठ मंजिली रिहायशी इमारत शुरू होती थी। दूसरी ओर, लगभग इतनी ही दूरी पर इधर के बाजार के अंदर जाने वाला गेट शुरू होता था। मगर मैं यह फैसला नहीं कर पा रहा था कि पहले बाजार को देख आऊं या इधर के किसी रहने वाले से बादशाह साहब के बारे में जानकारी प्राप्त करूं? इसी कश्मकश में दो-चार क्षण में खड़ा-का-खड़ा रह गया। फिर मैंने मुड़कर पीछे की ओर देखा। उधर कार ड्राइवर व उसका मकान, चारदीवारी वाली

दीवार की ओट मे होने के कारण नही दीख रहा था। पर मुझे ऐसा लग रहा था मुझे विदा देते समय जैसे वह अपलक बगिया की ओर देखता देखता रह गया था वैसे ही वह इस समय भी बैठा है। उसकी इतनी याद आनी ही थी कि एक प्रश्न मेरे मन मस्तिष्क मे कौंध सा आया कि ऐसे बदने लोग साधू-सन्यासियो के सरक्षण म तो अछूते रहते हो हैं। पर यह बात कैसी कि यह बादशाह की धरती मे रहकर भी कानून की नजर मे कैसे नही आया ? या इस मुहल्ले मे भी वैसा ही शहरी वातावरण है जिसमे आदमी अपने अडोसी-पडोसी से कटकर रहने मे अपनी इज्जत समझता है। पर तभी मेरे विचारो मे व्यवधान आ खडा हो गया। सामने नई बन रही इमारत की ओर से आता प्रोफेसर शेखर मुझे दिखाई दिया। वह अब एक अनोखे सगीत के लय को निकालने के लिए लाठी लगातार बजाने लगा था।

शेखर की उस लाठी ने मुझे अपने स्क्वायर के नेपाली चौकीदार की याद ही ताजा नही करा दी। बल्कि, मुझे रानीखेत की पुरानी यादें जहा ताजी हो आईं वही मुझे यहा तक लगने लगा जैसे सामने ही द्रोणागिरी भटकोट त्रिशूल पचशूली व नदादेवी पर्वत शृखलाए साफ दिखाई दे रही हैं। अब वह धीरे-धीरे मेरी ओर बढा चला आ रहा था। मैं अवाक सा उसी की ओर देखता रहा। वह अभी करीब चालीस गज की दूरी पर था। पर वह मेरी पूरी तरह से उपेक्षा-सा कर रहा था। उसकी इसी उपेक्षा ने मुझे अपने वायदे की याद करा दी और मैं झटके के साथ मुडकर इधर की बाजार के ओर मुड गया।

इधर बाजार का नजारा ही कुछ और था। दुकानो व चहारदीवारी वाली दीवार के बीच मुश्किल से केवल कार या ट्रक के जा सकने की जगह शेष थी। यहा तक कि यदि कोई कार अदर जाए तो वह मुड तक नही सकती थी। इसके अलावा उधर दूसरी बात यह थी कि इधर भीड भाड होना तो अलग, इधर से उधर तक एक भी खरीददार नही था। अलबत्ता सबसे आखिरी दुकान पर एक व्यक्ति उस दीवाल के पास साइकिल को ठीक कर रहा था। जिसे देख यह अदाजा सहज ही लगाया जा सकता था कि उधर मे लोग अदर न आए, सोच ही उसे बनाया हो। यह ही वजह थी कि मैं आश्चर्य चकित-सा अभी पहली ही दुकान के बाहर पहुचा था कि जड-सा खडा का खडा ही रह गया। उस दुकान पर कोई भी सामान नही था। वहा पर केवल दो चारपाइया बिछी थी जिसमे दो मजदूर जैसे दिखने वाले व्यक्ति आराम से बैठे थे। हां, उसकी बगल वाली दुकान परचून की दुकान थी जिस पर एक ऐसा व्यक्ति गद्दी पर बैठा था जिसके दोनो पाव जाघ के नीचे थे ही नही। इतना ही नही उसका दाया हाथ भी कुहनी के नीचे नही था। जिसे देख मेरे शरीर मे एक अजीब-सी सिहरन हो आई। कारण, इस तरह शारीरिक रूप से विकृत व्यक्तियो को

देख मेरे मन में सहज ही ऐसी भावना उठ आती है कि भगवान किसी भी आदमी को और कोई सजा दे दे मगर इस तरह की सजा दुनिया में किसी को भी न दे। तभी मैंने देखा कि वह लकड़ी का पांव पहन मेरी ही ओर इशारा कर बोला, "आइए, आइए भाई साहब, आप क्या देख रहे हैं?"

"जी···।" अनायास ही मेरे मुंह से निकला। और मैं धीरे-धीरे उसी की ओर स्वतः ही खिंचा-सा चला गया। उसके पास ही पहुंचकर बोला, "असल में बात यह थी कि मैंने आपके इस बाजार की काफी तारीफ सुनी थी। इसीलिए इसे देखने चला आया।"

"वाह साहब, आज तो आपने बहुत ही खुशनसीबी का दिन दिखाया है जो आप इस गरीबों के बाजार को देखने आए हैं। साहब दरअसल जी तो चाहता है कि पहले आपको मेहमान नवाजी के बतौर चाय-कॉफी पिलाऊं। पर यहां चाय या होटल कोई नहीं। इसीलिए इसे बादशाह साहब के पिता की पुरानी यादें समझिए या हमारी ओर से, जरा दो-चार काजू मेहमान नवाजी के बतौर खाने की मेहरबानी कर दीजिए। यह लीजिए साहब। फिर मैं आपको यहां की एक-एक दुकान खुद दिखाऊंगा।" कहते-कहते वह एकाएक ही मौन होकर कुछ सोचने के लिए-सा अपलक मुझे ही देखने लगा। फिर एकाएक ही बोलने लगा, "आइए यहां ही बैठिए मेरी गद्दी के पास। जब बादशाह साहब अपना पैसा अपना नहीं मानते तो···आप तो सिर्फ काजू खाने भर के लिए यहां बैठने वाले हैं।

"वैसे भी जब इस धरती की किसी भी चीज को हम छाती पर रखकर नहीं ले जा सकते तब फिर अपना-पराया खाली बेकार की बातें नहीं तो और क्या? एक बात और, इस बाजार को सिर्फ यहां के लोगों की जरूरतों को देखकर बादशाह साहब ने बनवाया है। इसीलिए यहां होटल आदि नहीं हैं। कारण, यहां के लोगों के पास इतना फालतू समय नहीं कि होटल में बैठकर बरबाद करें। बादशाह साहब के असूल के हिसाब से सुबह और शाम इधर रहने वालों को पढ़ना होता है चाहे वह साठ साल का ही क्यों न हो। सुबह सात से नौ और शाम को दो-दो घंटे की दो पारियों में यहां सभी को पढ़ना लिखाया जाता है। दिन काम में वैसे ही निकल जाता है। खैर···यह तो और बातें हैं। आप तो यहां बाजार देखने आए हैं। वैसे यह बाजार ऐसा नहीं जो इसकी प्रसिद्धि के कारण यहां लोग देखने आएं। पर अब महंगाई ने इधर की ओर लोगों का ध्यान खींचा है। कारण, यहां हर माल के भाव एक हैं, दो-दो तीन-तीन नहीं। आप इस बाजार को वैसे यहीं से देख सकते हैं कि इधर सामने की इस कतार में छोटी-छोटी खोखाओंनुमा सोलह दुकानें ही हैं। इधर जगह की बहुत तंगी है। तंगी होती कैसे नहीं। बादशाह साहब की

दयालुता के कारण हर साल दो-चार की बिरादरी बढ़ती ही जाती है। यही वजह है कि इधर रहने वालों की दिक्कतें देख उन्होंने एक यहाँ आठ मंजिली इमारत बनवा दी और एक बन रही है। इस धरती की भी अजीब ही दास्ता है।

"एक जमाना पहले यह मुहल्ला एक राय साहब की रियासत थी। तब यहां पच्चीस-तीस परिवार रहते थे जबकि आज यहां दो सौ परिवार तो रहते ही हैं। सुना है जिसे आज आप इस मुहल्ले की बाजार के रूप में देख रहे हैं वह उनके जमाने में घुड़साल थी। अब तो इस मुहल्ले की पुरानी याद दिलाने वाली इमारत या तो सामने वाली पुरानी अधटूटी इमारत है और या फिर यह कोठी जिसमें बादशाह साहब का परिवार रहता है। परिवार इसलिए कि, वे तो खुद उसके पीछे बनी झोपड़ी में रहते हैं। कहते हैं जब तक मेरे देश व धरती का कोई भी आदमी झोपड़ी में रहता है तब तक वे महल में नहीं रहेंगे भले ही झांकने उधर जरूर चले जाएं। इस घुड़साल को भी उन्होंने दुकानों में बदल दिया जिसकी वजह से घोड़ों की देखभाल करने वाले नौकरों के रिहायशी घरों को भी उन्होंने दुकानों में बदल दिया है। कहा जाता है कि इसी घुड़सवारी, जुए व शराब आदि के कारण रायसाहब का दिवाला निकल गया था। एक बार इस बाजार का भी आठ मंजिली इमारत में बदलने का विचार था पर फिर इस विचार को बदल दिया गया। हम सब लोग उनकी बात मानते हैं। उनकी हर बात वजनदार होती है। यह हम आजमा चुके हैं। अब आप यकीन मानिए कि यहां बच्चों की ख्वाहिश हो सकने भर की उम्मीद के कारण विदेशी कपड़ा भी रखा जाता है, पर आश्चर्य कि इधर का कोई बच्चा विदेशी कपड़ा नहीं खरीदता है। यह है बादशाह साहब की वजनदार बातों का प्रभाव। भला जब वे खुद ही विदेशी कपड़ा नहीं पहनते तो यहां रहने वालों की ऐसी इच्छा कैसे हो सकती है। फिर बादशाह साहब का कहना है कि अब तो हमारे देश का कपड़ा विदेशी कपड़ा से बेहतर होता है। एक बात और, विदेशी कपड़ा पहनने से अपने ही वतन का तो नुकसान होता है। हमारे देश की दौलत बाहर जो जाती है। अच्छा तो आपके आखिरी काम के साथ मैं आपसे चलने की अर्ज करूं। यदि आप ही बैठकर बातें करना चाहें तो बात और है।"

मैं अब एकाएक ही उठ खड़ा हुआ। क्योंकि उसके अंग-प्रत्यंग से यह झलक रहा था कि वह मुझे यहां की एक-एक दुकान को दिखाने को उत्सुक है। यही वजह थी कि वह मेरे उठने के साथ ही स्वयं भी उनके के साथ उठा और अगली दुकान की ओर बढ़ने लगा पुनः मुझ उधर की एक-एक बातें समझाने लगा, अच्छा तो चलिए। ये दोनों व मैं पहली चाय दुकान पहनने

की हैं। यहां आपको भाव पूछने की जरा भी जरूरत नहीं। सिर्फ उस चीज़ का नाम बोलना होता है जिसे खरीदना हो। आटा-दाल-चावल आदि-आदि जो चीजें आपको एक दुकान पर दिखाई दे रही हैं ठीक वे ही चीजें आप सभी दुकानों पर पायेंगे। हां, रखने का ढंग अलग-अलग होगा। एक आदमी की भी पांचों अंगुलियां बराबर नहीं होती। जिस तरह यहां भाव एक हैं ठीक वैसे ही यहां आपको कोई कम तोल कर नहीं देगा। साहब, यहां के किसी भी दुकानदार की कम तोलने की इच्छा हो ही नहीं सकती है। कारण, कम तोलना ईमान के खिलाफ है। कुरान में तो क्या किसी भी मजहब में दूसरों को धोखा देना बुरा ही कहा गया है। कम तोलना बुरा ही नहीं, धोखा देना है। फिर सरकार ने जब बांट बना रखे हैं तो उसी बांट के हिसाब से तोला भी क्यों न जाए? यहां सारे दुकानदार अपने को सेवक समझते हैं। समझें भी क्यों नहीं, जब छाती में रखकर अल्ला के पास कोई जा नहीं सकता तो ज्यादा लालच करे ही क्यों? अल्ला की मेहर से दुकानें हैं। और इससे खर्चा हर दुकानदार का निकल ही आता है। वैसे भी बादशाह साहब की इस धरती में इस बात की तो फिकर ही नहीं कि कल क्या जरूरत पड़ेगी, क्या करेंगे? हम ही उनके पास नहीं जाते। जाएं भी क्या, हम तो यह ही सोचते हैं कि यदि मुनाफे में से कुछ उनके स्कूल के लिए दे पाते तो अच्छा था। आखिर एक आदमी तो इतना करे और हम···? यहां की दुकानों में एक खास बात यह है कि यहां कोई ऐसा माल नहीं बिकता जिसमें मिलावट की संभावना हो। यहां मसाले आपको पिसे हुए मिलेंगे ही नहीं। डालडा, तेल, घी के बारे में भी शक की कोई गुंजाइश नहीं कि कहीं कोई ऐसा-वैसा तो नहीं, जिसके खाते ही हम बीमारी मोल ले रहे हों। यहां सील्बंद सामान ही लाकर बेचा जाता है। अब सीलबंद सामान में ही कोई मिलावट हो तो बात दूसरी है। अरे बातों-बातों में हम कपड़ों की दुकानों को पीछे छोड़ आए। खैर···"

अब वह एकाएक ही कापी-किताबों व खिलौनों की दुकान में से एक के आगे खड़ा हो गया। ये ही इधर की दो ऐसी दुकानें थीं जो सजाई हुई थीं। मैं उसकी एक-एक बात गौर से जहां सुन रहा था। वहीं, उसकी एक-एक प्रतिक्रिया व यहां के लोगों की प्रतिक्रियाओं को देख रहा था क्योंकि जिस दुकान के आगे से हम गुजरते उसका ही दुकानदार उसे व मुझे बेहद सम्मान सा देता गद्दी से जहां उठ जा रहा था वहीं वह बड़े ही अदब से सलाम या नमस्ते किया करता था। एक बात और यह कि यहां सभी दुकानें मुसलमानों की ही नहीं थीं बल्कि हिंदू व सिखों आदि की भी थीं। तभी वह बोला, "इधर कपड़ा और जगह से बहुत सस्ता है। कारण, कपड़ों में यहां अनाप-शनाप फायदा नहीं लिया जाता है। और चीजों की तरह कपड़ों में भी

यहां सिर्फ पांच प्रतिशत ही फायदा लिया जाता है। अब ये दो दुकानें खिलौनों व कापी किताबों की दुकानें हैं। बच्चों की भी अजीब दुनिया होती है। इस दुकान में आगे आकर मुझे हमेशा ही अकबर व बीरबल वाले उस किस्से की याद हो आती है जो बच्चों के ख्वाइश के बारे में है। सुना तो उस किस्से को आपने भी होगा कि अकबर तब पिता बना था। बीरबल बच्चा बना था। बीरबल के बच्चेनुमा ख्वाइश के मुताबिक अकबर ने गन्ने के टुकड़े-टुकड़े तो कर दिए पर वह उन्हीं टुकड़ों को पुन जोड नहीं सका था। आपको इस किस्से को सुनाने का यह अर्थ है कि बच्चों की मुराद को कोई भी पूरा नहीं कर सकता है। पर जहा तक हो सकता है, यहा किया जाता है। मसलन यदि किसी बच्चे को कोई खिलौना पसद आ जाए, उस बच्चे या उसके माता पिता के पास पैसा न हो तो भी वह खिलौना उस बच्चे को दिया जाता है। आप सोचेंगे कि ऐसा तो कोई भी दुकानदार नहीं कर सकता, पर बादशाह साहब की इस धरती मे यह किया जाता है। कारण, दुकानदार को उस खिलौने के पैसे, अलग नोट करने होते हैं। जिसे बादशाह साहब के खजाची को दिखाने भर की देर है कि वह पैसा उसके पास से मिल जाता है। ठीक ऐसी ही बात कापी-किताबों के बारे मे यहा की जाती है। अब रही यह बात कि यदि खिलौना एक हो, माग रहे हो दो-तीन। उस हालत मे बादशाह साहब के असूल के मुताबिक वह खिलौना तब तक किसी भी बच्चे को नहीं दिया जाता जब तक बाजार से उसे खरीदने भेजा आदमी लौट न आए। यानी कि एक आदमी सिर्फ इसी काम के लिए बादशाह साहब की ओर से यहां रखा हुआ है। ऐसी बात जब भी हो जाए तो फौरन बाजार से खिलौना मगवाया जाता है। उसके बजार से लौटने पर वैसे खिलौने मिल जाने की हालत मे सबको दे दिया जाता है। न मिलने की हालत मे वह खिलौना उस बच्चे को दिया जाता है जिस बच्चे ने उसकी सबसे पहले इच्छा जाहिर की हो। चाहे उसके पास पैसा हो या न हो। यह भी नहीं देखा जाता है कि वह किसका बच्चा है। ऐसा हो भी कैसे नहीं ? जिस तरह से यहा रहने वालो के बच्चे एक ही स्कूल मे पढते हैं वैसे ही यहा बच्चों की मुराद को पूरी करने की हर कोशिश की जाती है। और तो और खुद बादशाह साहब के दोनो बच्चे इसी स्कूल मे पढ़ते हैं। उस पर भी यह कि न तो इधर का कोई दुकानदार ही बच्चे का नाम लेकर झूठ में उनके खजाची से पैसा लेता है और न इधर के बच्चे ही इस तरह की ख्वाहिश जाहिर करते हैं। यकीन मानिए साहब कि बादशाह साहब की शोहरत ऐसी है कि इस तरह की बातें कोई सोच ही नहीं सकता है। अब मुझे ही देख लीजिए, क्या मैं कभी सोच सकता हू। क्या बताऊं साहब, जब फैक्टरी मे मेरा पाव व बाया हाथ कटा था। तब मुझे इस बात का रोना था

कि मैं मरा क्यों नहीं ? क्योंकि मेरे सामने सवाल यह था कि बच्चों का लालन-पालन कैसे होगा ? फैक्टरी के मालिक ने मुझे केवल एक महीने की तनखा फालतू दी थी। एक हज़ार के करीब मेरा फंड था, वह कितने दिन चलता। यह तो मुझे बादशाह साहब ने संभाल दिया वर्ना मेरे तो खाने के लाले पड़ आए थे। वह भी मेरे साथी के कहने पर। इतना ही नहीं, उन्होंने ठीक होने पर मुझे यह दुकान दी और सामान खरीदने के लिए पैसे भी। अब इसी दुकान से बाप-बेटे हम दोनों का गुजारा चल रहा है। यह तो है मेरी बात, वैसे उनके सभी काम ऐसे ही हैं। अब तुम ही बताओ सात-आठ साल के बच्चे ने अपने पठानी ब्याज वाले अब्बाजान को नहीं बदला ! क्या उसके चार-पांच साल बाद ही इम्दाद देने वाली बात भी कोई कम है ? उनके बारे में यहां यह आम बात कही जाती है कि किसी पहुंचे हुए फकीर या संन्यासी की रूह इनमें आई हुई है वर्ना, इतना जो ये करते हैं कोई भी दुनिया में नहीं कर सकता। अब, वह साके वाली बात देखिए साहब। कितना कमाल है यह ?"

अब वह बीच की एक दुकान को छोड़, अगली दो दुकानों के बीच खड़ा हो गया और मेरे अपने पास पहुंचने की प्रतीक्षा-सी करने लगा। कुछ ऐसे जैसे वह इधर की कोई खास बात मुझे बताना चाहता हो। मैं था कि उसकी लंगड़ाहट में भी छलांग को देखता भर रह गया।

"देखा आपने, तिलकधारी त्रिपाठीजी कुरानशरीफ बेचते हुए भी शास्त्री त्रिपाठी जी ही हैं तो इधर मियां जी मूर्तियां, गीता, रामायण आदि बेचते हुए भी मियां जी ही हैं। यह है बादशाह साहब व बादशाह साहब की धरती की बात। आप यह देखकर चौंकेंगे। हो सकता है आपको बुरा भी लगे। पर साहब मुझसे तो वह दिन भूला नहीं जाता जब सन् पैंतालीस में इन दुकानों का नक्शा दिखाने हम बादशाह साहब के पास गए थे। मुझे याद है कि हम यहां रहने वाले आठ जने गए थे। उनके मजहबी ख्यालों को ध्यान में रखकर हमने उनके इम्दाद वाले मजहबी चार कमरों की नकल के हिसाब से मजहबी चार दुकानें इधर खोलने का ख्याल जाहिर किया था। जानते हो तब क्या हुआ—पहले तो वे रो पड़े। उनका रोना देख हम सभी घबरा आए कि कहीं हम लोगों से कोई गलत काम तो नहीं हो गया। पर तभी वे बोले—दुनिया में तो बहुतेरे मजहब हैं, यदि एक-एक मजहब की एक-एक दुकान खोली जाए तब तो फिर ये सभी दुकानें ही इसके लिए कम पड़ जाएंगी। फिर ज़रा बताइए तो, जिस तरह से मौलवी, शास्त्री, ग्रंथी व पादरी का धर्म अपने-अपने मजहब की बातें करना या कराना है तो क्या दुकानदार का धर्म यह नहीं कि वह, वह माल बेचे जो ग्राहक मांगता है।—उनसे बहस कौन करता। साहब उनकी बात को हम सभी बेहद इज्जत दिया करते हैं। इसलिए हम सब लौट आए।

हममें से एक थे ही मियां जी व एक थे त्रिपाठी जी आगे आए थे कि वे दुकान खोलेंगे। अपनी-अपनी दुकानों पर वे सभी धार्मिक चीजें या सभी धार्मिक ग्रंथ रखेंगे, जिससे कोई भी मांग कर सके। पर साहब उस रात मुझे नींद नहीं आई। मुझे यहां आए भी केवल सात-आठ ही महीने हुए थे। टांग कटने से मेरा शरीर तो कमजोर हुआ था पर मुसलमानी मन तो नहीं। इसी मन के कारण मैंने उसी रात पक्का फैसला किया कि किसी-न किसी समय अकेले में मैं उनसे बातें करूंगा। पर सात-आठ दिन तक मौका नहीं मिला। एक दिन वे अपने रसोइए के साथ कहीं जा रहे थे। मैंने बहुत हिम्मत कर उनसे अपने दिल की बात कह डाली। इस पर वे खिलखिलाकर हंस पड़े। बोले—बाबा शुक्र है अल्लाह या ईश्वर का कि तुम केवल जबान से बातें पूछ रहे हो। शायद तुम्हें पता न हो यहां तो दो दिन पहले इसी कारण मुझे मारने तक की कोशिश हो चुकी है। खैर—अच्छा बाबा जरा इन्हें जयपुर की देवी वाली बात सुनाना तो, जो तुमने मुझे सात-आठ दिन पहले सुनाई थी।

'तब इतना कहकर बादशाह साहब तो चल दिए थे। केवल रहा था सामने उनका रसोइया। जिसने मुझे सुनाया था जयपुर वाला वह किस्सा। जिस पर मुझे आज भी यकीन नहीं होता। पर साहब पहुंचे हुए फकीरों व सन्यासियों की बातें फकीर व सन्यासी ही जानें कि उसमें सच्चाई कितनी है या कि नहीं। बहरहाल उसने सुनाया था कि कहते हैं जयपुर में जो दुर्गा का मंदिर है उसमें सदियों पहले एक पहुंचा हुआ फकीर आया था। हमसायों की खोज के कारण वह वहां मंदिर में पुजारी के पास ही टिका था। उन दिनों हिंदू-मुसलमानों में कोई ज्यादा झगड़ा भी नहीं था। इधर अभी मुसलमान आने भी शुरू नहीं हुए थे। मक्का या उसके आसपास ही फैले हुए थे। कहते हैं साहब, उन्हीं दिनों वहां एक मेला भी लगा। आसपास व दूर दूर के लोग मंदिर में देवी के दर्शन करने आए थे। फकीर ने पुजारी से मंदिर में भीड़ भाड़ का कारण पूछा। पुजारी ने मेले व दर्शन की बातें फकीर को बताईं। इस पर उस फकीर ने दुर्गा के दर्शन करने की इच्छा जाहिर की। पुजारी ने ऐतराज नहीं किया। फकीर उस समय मंदिर के दस्तूर के मुताबिक लम्बी फूल माला, फूल आदि लेकर मंदिर की ओर चल पड़ा। लोग अनजाना देख किनारे-किनारे रुकने लगे। हालांकि भीड़ उस समय इतनी थी कि लोग बड़ी मुश्किल से आगे खिसक पा रहे थे। अल्ला या ईश्वर तो सच्चे दिल का भूखा है। सच्चे दिल की आवाज जहां कहीं से भी निकले उसे कौन रोक सकता है। फकीर थोड़ी ही देर में सीधे मूर्ति के पास पहुंच गए। वहां पहुंचकर बोले—देवी मैं हूं तो मुसलमान पर मैं तुम्हारे और मक्का की तरह और बात नहीं जानता। सिर्फ इतना भर जानता हूं कि तुम्हें मेरे साथ का लम्बा

खानी पड़ेगी—यह वात सुन आसपास खड़े लोग सव हंस पड़े। तभी जाने देवी अपने इस नए भक्त की हंसी वर्दाश्त न कर सकी या कोई और वात थी कि देखते-देखते देवी ने मुंह खोल दिया। तव—तव क्या था, फकीर ने देवी को जलेवियां खिलाईं और 'अल्ला हो अकवर' कहते वाहर निकल आया। इतना ही नहीं, उस समय वहां जितने ही हिंदू थे उतने ही उसके साथ-साथ 'अल्ला हो अकवर' पुकार उठे।

"साहव तव उस रसोइए की इस वात को सुन मुझे भी आश्चर्य हुआ था। शायद आपको भी हो ही रहा होगा। हो भी कैसे नहीं, ये वातें आम आदमी की तो नहीं। पहुंचे हुए फकीरों व संन्यासियों की हैं। इनकी वातें या तो इन जैसे ही जानते हैं या फिर अल्लाह या ईश्वर ही। पर वादशाह साहव के स्कूल की वदौलत मैं यह अच्छी तरह समझ चुका हूं कि धर्म तो इंसानों में प्रेम वढ़ाने के लिए होते हैं जवकि आज धर्म के नाम पर आदमी-आदमी से नफरत करता है। ऐसा महज़ इसलिए कि दुनिया भर में धर्मों की ठेकेदारी ऐसे वेमजहवी लोगों के हाथ में आ गई है जिनका न तो अल्ला ताला से मतलव है और न कर्म-धर्म से ही। इतना ही नहीं, वादशाह के स्कूल की वदौलत आज मैं एहसास करता हूं कि जिस तरह से देवी को जलेवी खिलाने के वावजूद वह फकीर 'अल्ला हो अकवर' ही वोल सकता है और जिस तरह उसकी आवाज़ के पीछे आवाज़ बुलंद करने वाले हिंदू भी, फिर देवी के ही भक्त रह सकते हैं, तव फिर गीता, रामायण व मूर्तियां अपनी दुकान में रखकर एक मुसलमान मुसलमान व कुरान शरीफ वेचते हुए भी एक हिंदू हिंदू कैसे नहीं रह सकता? खैर, छोड़िए इन वातों को। ये वातें वादशाह साहव की धरती की वातें हैं, वाहर की नहीं। वाहर की वातों से हमें मतलव भी नहीं। हम तो अपनी इधर की वातें जानते हैं। चलिए अव आपको इधर के हकीम, वैद्य व डाक्टरों की दुकानें दिखाऊं।

"ये चार दुकानें भी यहां की इतनी ही कमाल हैं जितनी कि ये वैद्य, हकीम, होमियोपैथ डाक्टर व डाक्टर की दुकानें हैं। इन्हें एक तरह से यहां का अस्पताल भी कह सकते हैं। अस्पताल भी ऐसा कि जिसमें ये चारों एक दूसरे को तिरछी निगाहों से नहीं देखते हैं। वल्कि जव भी कोई मरीज इधर आता है। और अपनी मर्जी के मुताविक मरीज जिसके पास भी जाता है तो वह उसका इलाज करता है। यदि उसकी वीमारी उसकी समझ नहीं आती है तो वह वेहिचक दूसरों से सलाह लेता है। कई-कई वार तो ये चार के चार उस मरीज को देखते हैं। फिर फैसला करते हैं कि इसका इलाज उनमें से कौन करेगा। इतना ही नहीं, यहां की एक खास वात यह भी है कि कभी-कभार यदि इधर कोई ऐसा आदमी आ जाए जिसके पास अपने या अपने मरीज के

इलाज के लिए पैसे न हों तो भी उसका इलाज किया जाता है। इतना जरूर है कि उसका नाम और पता नोट कर लिया जाता है और उससे कसम की एक मामूली रस्म अदा करवाई जाती है कि यदि वह ठीक हो गया तो वह, वे सब पैसे जब भी उसके पास होंगे लौटाएगा या इधर फालतू काम करके उसे लौटाएगा। मगर कसम की रस्म के लिए यहां बादशाह साहब के मजहबी कमरा जैसे अलग-अलग कमरों में जाकर रस्म अदा नहीं करनी होती है। सबको केवल अपने-अपने मजहब के मुताबिक एक जगह पर खड़ा होकर कसम खानी होती है। पर इसके मान यह नहीं कि वे पैसे वैद्य, हकीम या डाक्टर को उस दिन नहीं मिलेंगे। उन्हें तो खिलौनों की तरह बादशाह साहब के खजांची से मिल ही जाएंगे। अंतर यह कि बच्चों को जहां पैसा लौटाना नहीं होगा, वहीं, बड़ों को यह पैसा, वास्तविक पैसे से भी अधिक इसलिए लौटाना होगा कि इस प्रकार इकट्ठा हुए पैसे से ऐसे ही नए मरीज के लिए इलाज की व्यवस्था की जा सके। दूसरा इसलिए कि बड़ों का काम सिर्फ पढ़ना नहीं बल्कि बच्चों का पालन-पोषण करना भी होता है।"



अब मैं इधर की मार्केट से बाहर लौट आया था। जी चाहता था कि कुछ देर यहीं बैठ या तो विश्राम करूं या फिर बाहर निकल्सन रोड जा किसी होटल में चाय या खाना खा आऊं। दोबारा फिर यहां आकर शेष लोगों से मिल, खान साहब के बारे में जानकारी हासिल करने का क्रम जारी रखूं। क्योंकि अब तक मैं इधर जिन तीनों से मिला था तीनों की बातें दिलचस्प व अजीब थीं। विश्वास नहीं हो पाता था कि ये बातें इसी धरती की हैं या किसी कल्पना लोक की बातें हैं। यही वजह थी कि जहां बेहद थकान व भूख के बावजूद बाहर जाने की जरा भी इच्छा नहीं हो आ रही थी, वहीं यह इच्छा जोर पकड़ती चली जा रही थी कि चाहे मुझे एक-दो दिन ही लोगों में

मिलने में लग जाएं पर बादशाह साहब के बारे में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त न करूं, तब तक मैं यहां से लौटूं ही नहीं। और अधिक लोगों से तब तक मिलता ही रहूं जब तक मैं यह न जानूं कि उनके इस व्यवहार के पीछे कारण क्या है और इतना पैसा होते हुए ये नौकरी क्यों करते हैं ?

मैं इन्हीं विचारों में उलझा था कि मैंने देखा, सामने की आठ मंजिली इमारत के नीचे वाले सबसे पहले क्वार्टर के बाहर खड़ा एक व्यक्ति प्रश्न भरी आंखों से मुझे देख रहा है। अब मैंने भी देखा उसी की ओर। उसकी ओर देखना ही था कि मैंने देखा कि उससे आठ-दस क्वार्टर आगे एक ऐसा व्यक्ति कुर्सी पर बैठ कर चर्खे पर ऊन कात रहा है जिसके दोनों पांव नहीं थे। मैं अवाक्-सा उसी को देखता रहा। बारीकी से देखने पर पता चला कि चर्खा ठीक उसी के शरीर के अनुरूप विशेष रूप से बनाया हुआ था। क्योंकि उसे चलाने वाला घुटनों के पास बनाया हुआ था जबकि आमतौर पर वह बिल्कुल नीचे पांवों पर बना होता है। मेरे पांव अनायास ही उसी व्यक्ति की ओर बढ़े ही थे कि मुझे पहले वाले व्यक्ति ने बीच में ही रोक सा दिया। उसने उत्सुक स्वर में मुझसे पूछा, "आइए, इधर आप किसे खोज रहे हैं ?"

भला अब मैं उसे क्या उत्तर देता ? क्योंकि मैं किसी विशेष आदमी को तो खोज नहीं रहा था। मैं तो उन सभी को ही खोज रहा था जो खान साहब के बारे में जरा-सा भी जानते हों। यही बात थी कि मैंने उसके प्रश्न का उत्तर तो दिया नहीं। पर इसी बीच उसने अपने प्रश्न को पुनः दुहरा दिया, जिसके कारण अनायास ही मेरे मुंह से निकला, "भाई मैं इधर आया तो था बादशाह साहब से मिलने, पर सोचा कि रहने वालों से भी मिल लूं।"

"धनभाग हमारे, आइए, आइए। आखिर बादशाह साहब से जो मिलने आए उसके दिमाग में छोटे-बड़े, ऊंच-नीच का ख्याल कैसे आ सकता है।" कहते-कहते वह एक अजीब-सी जितनी फुर्ती में अंदर गया उतनी ही फुर्ती में हाथ में दरी लिए लौट आया। और उसे उतनी ही फुर्ती में बिछाते हुए बोला, "बैठिए, इधर बैठिए। अगर आप इजाज़त दें तो अपनी बिटिया सत्तू से आपके लिए एक कप चाय बनाने को कहूं।"

"भय्या इसमें पूछने की क्या बात है ? मैं तो···।" उसका मन जीतने की नीयत से मैं बोल उठा। उसकी प्रतिक्रिया जानने अपलक, उसे देखने लगा।

"बेटी सत्तू, आज एक बाबूजी की खातिर करने का भाग मिला है। जरा इनके लिए अच्छी-सी चाय बना ला तो।" अब उसकी प्रसन्नता का ठिकाना ही न था। शायद यही वजह थी कि वह उछलकर-सा अपने दरवाज़े पर गया। "देखना बिट्टी दूध-चीनी ठीक डालना। पत्ती भी ठीक डालना। ऐसा न

हो कि बादशाह साहब के स्कूल की बदनामी कर बैठें", मैं अब अवाक्-सा उसे देखता का देखता रह गया। लगा कि वह जो कुछ भी कह रहा है सच्चे दिल से कह रहा है, बल्कि मुझे तो उसके अंग-प्रत्यंग में उनके प्रति सच्चा सम्मान दिखने-सा लगा।

"एक ज़माना था कि मन में पीड़ा उठती थी कि लोग हम क्यों छोटा समझते हैं? हमसे नफरत क्यों करते हैं? पर अब ख्याल आता है कि कसूर उसके पीछे हमारा भी कम नहीं था। मैं तो सच कहता हूं साहब कि आज मुझे ही अपने पुराने दिनों का देख घिन-सी आती है। पर साहब, हम वैसे रहते नहीं तो और क्या करते? न तो हमें कोई समझाता था कि ऐसा हम रहते क्यों हैं? और न हम ही अक्ल थी। बैस अकेली अकल करती भी क्या? इसके लिए तो पैसा होना चाहिए। वैसे दुनिया में अच्छी तरह रहना कौन नहीं चाहता है। पर पैसा हो, तभी तो ''। पर आज अब बादशाह साहब के चार पंडितों की बदौलत हम अच्छी तरह जानते हैं कि हम वैसे क्यों व किस कारण रहते थे। उनको कोई मास्टर जी कहता है कोई मौलवी जी, कोई कुछ तो कोई कुछ। पर साहब मैं तो सोचता हूं उन लोगों ने हमारी आंखें खोल दी हैं कि हम अपने आपको ठीक करने के लिए क्या करना चाहिए और कैसे रहना चाहिए। उन्होंने हमें न सिर्फ थोड़ा-बहुत पढ़ना ही सिखाया बल्कि गुनना भी सिखाया है। अब हम झूठमूठ में अंगूठा टिकवाकर धोखा कोई भी नहीं दे सकता है। आज जब मैं अपने पुराने दिनों को याद करता हूं तो लगता है जैसे हमें बादशाह साहब ने नरक से सुरग में ला दिया है। अब हमें साफ-सफाई का भी पता चल गया है कि उसकी क्या कीमत होती है? और ''

बहुत-कहते वह एकाएक ही रुक आया। एक बार उसने मेरी प्रतिक्रिया जानने मेरी ओर देखा और फिर अपने पुराने ही लहजे में बोलने लगा, 'आज आप हमारे घर के रहन-सहन को देख यह अंदाजा नहीं लगा सकते हैं कि हम किस जाति के हैं।' जाति-पांति के पीछे रहन-सहन ही तो सबसे खास बात है। रहन-सहन बनता है पैसा से। हां बाबू जी, अगर आपकी इजाजत हो तो जरा बिटिया से सूजी बनाने को कहूं?

मैंने सिर हिलाकर अपनी स्वीकृति तो जाहिर की मगर मैं अपनी हंसी नहीं रोक सका। पर लगा जैसे बदली हवा में हम अभी नाप तक ही पहुंच पाए हैं, अंत तक नहीं।

बिट्टी जरा सूजी बना तो। हां बादशाह साहब के स्कूल की इज्जत रखना। कहीं ऐसा न हो कि ये सोचें उस नाम की सूजी ही बना सका। आज छुट्टी के कारण वह अपने घर पर है। पर सब लोग पहले की ही तरह रहते हैं। तब मैं सोचता हूं कि कितना अच्छा होता यदि व

लोग, मेरे देश व धरती के सभी ऐसे लोग भी हमारी तरह रहते ! बादशाह साहब के पंडितों की बदौलत हमें यह पता चल गया है कि दुनिया में करोड़ों, मेरे ससुराल वालों से भी बदतर जिंदगी बसर कर रहे हैं। उसका पीहर भी उधर ही है जिधर हमारा लोहा गला कर कलपुर्जे बनाने का कारखाना है। थोड़ा-बहुत गुजारे लायक मिल जाता है वहां से। असली भरोसा तो साहब हमें अपने बादशाह साहब का है।" उसने एक बार आसमान की ओर देखा, फिर सजल नेत्र सामने बादशाह साहब के मकान की ओर देखते हुए पुनः बोल उठा, "क्या बताऊं साहब सात-आठ साल पहले मेरे कारखाने में पूरे सात महीने तालाबंदी रही। कारखाने के मालिक हमें पूरी तरह गिड़गिड़ाने पर उतरे हुए थे। उन्हें और कारखानों के मालिकों की शै मिली हुई थी। पर मजाल जो हमें इसके बावजूद किसी किसम की किल्लत रही। कारण, हमारे साथ के लगभग सभी यहां रहते हैं। भला बादशह साहब का जिसके सिर पर हाथ हो, उसे किसी किसम की किल्लत कैसे हो सकती है। तब उस दौरान हम लोग उनसे कहते-कहते थक गए कि साहब, कुछ कारखाना-वारखाना लगा दीजिए। हम सब जी जान से काम करेंगे। पर बादशाह साहब थे कि कहते हैं, यह मेरा काम नहीं...अब आप देख ही रहे हैं कि यह जो आठ मंजिली बिल्डिंग है इधर से उधर तक। मेरा खयाल है पूरे सवा सौ परिवार रहते हैं इसमें। अगर हम सब इनके कारखाने में काम करते तो हम क्या नहीं कर देते ? अपने बादशाह साहब के नाम पर काम कर हम धरती-आकाश एक कर देते। पर...वैसे उनका सोचना भी ठीक है। कोई लोहार है तो कोई मोटर मैकेनिक तो कोई कुछ। पर साहब इतना मैं सच्चे दिल से कहता हूं जब भी मैं लोहे की भट्टी में काम करता हूं बार-बार यही सोचता हूं काश मेरे जो हाथ यहां दूसरों के यहां काम कर रहे हैं वे अगर इनके यहां काम करते तो कितना अच्छा नहीं होता। दुनियां उलट सकती है पर मैं उनका उपकार कभी नहीं भूल सकता हूं। मैं तो क्या मुझ जैसे यहां रहने वाले सारे लोग।" अब वह एकाएक ही कुछ ऐसे मौन हो आया था कि जैसे कुछ कहने के लिए सोच रहा हो। पर तभी मैंने देखा कि वह सिसकियां-सी जहां भरने लगा, वहीं दोनों हाथ जोड़ता-सा उधर की ओर देखने लगा जिधर बिना पांवों वाला आदमी चर्खा कात रहा था। फिर एकाएक ही बोला, "साहब उस दिन की याद आते ही मन घबरा उठता है, जब ऊपर से लोहे की एक सिल्ली-सी गिरने पर इसके दोनों पांवों कट गए थे। अभागे भीकू दादा की कहानी अजीब ही है। उनसे एक महीने पहले इसकी बीबी भी मरी थी। वह तो इसके भीख मांगने की नौबत आ जाती, अगर खान साहब इसे नहीं सम्हालते तो। मजदूर का सहारा उसके सिर्फ़ हाथ व पांव होते हैं, क्योंकि उसके पास

सिर्फ इतना पैसा होता है कि वह एक दिन की रोटी खाकर वह अगले दिन के लिए मजदूरी जो करता है। अगर उसके हाथ पाव ही उसके न रहें तो, उसका तो इस धरती का भगवान् भी अपना नहीं रहता है। क्या बताऊं साहब, हम लोगों के लिए तो म भगवान् स भी बढ़कर हैं। इनके जैसा सभी न भी स.ी, थोड़ा बहुत ही ऐसा सभी करने लगते तो पता नहीं हमारा देश कितना आगे हो जाता। वैसे तो साहब मैं तो मजदूर आदमी हूं। इतनी गहरी बातें जानता नहीं, पर साहब बादशाह साहब की वजह स अब यह जान गया हू कि यह जो सारा चक्कर है उसका राज क्या है? अब बताइए साहब मेरे इस एक कमरे व रसोई वाले घर का इधर किराया सिर्फ पन्द्रह रुपया है, यहां तक कि बिजली पानी भी उसी म है। सुना है वे तो यह भी लेने को तैयार नहीं थे। पर इधर के पुराने लोगों ने कहा कि कम-स-कम हम बिजली-पानी का पैसा तो दें। इसी कारण यह पैसा भी यहां के सयाने लोगों ने खुद ही तय किया है। बस है भी ठीक कि एक आदमी इतना करे और हम हद है साहब इन मकानों की टूट फूट आदि की मरम्मत वे खुद ही करवाते हैं। जबकि आजकल तो मकान दिलाने भर के दलाल बीच म ही सात-आठ महीनों का किराया चपत कर जाते हैं। बिट्टो जरा जल्दी कर तो बाबूजी को शायद देर हो रही होगी। ओ मनू मनू

आई पापा आई। बस थोड़ी सी देर है।

अच्छा अच्छा। क्या बताऊं साहब मैं तो इनका एहसान कभी भी नहीं भूल सकता। मैं क्या इधर वाले लोग इधर और आना चाहते हैं सोच बादशाह साहब ने अपना भी बगीचा कटवाकर तक और इमारत बनवानी शुरू कर दी है। हालांकि माली कहता था कि तक भी मुस्कराते फूल को देख के रोने तक लगते थे। साहब अगर आप उनके बारे म जानना ही चाहते हैं तो आप माली म जरूर मिल उसने राय साहब के दिन भी देखे हैं इधर के। खैर यह तो और बात है। साहब ना हम यही थे कि यहीं काम करें। पर उन्होंने इस बात को [illegible] साफ मना कर दिया कि जो लोग इधर उधर कच्ची पक्की नौकरी पर है व उसे काम छोड़कर इधर काम न करें। कारण मजदूरों की कमी नहीं है। अच्छा है मुझ कुछ और लोगों को मदद करने का मौका मिलेगा। [illegible] पर भी [illegible] साहब उधर उन रहा इमारत के पास झोपड़ीनुमा [illegible] मंजिल [illegible] में जो [illegible] रहते हैं व इसके अलावा इस दो मंजिली इमारत म [illegible] जिन लोगों के लिए [illegible] नई इमारत बनवा रहे हैं। [illegible] काम [illegible] कारण है कि उनके दमुन कमरा के [illegible] बनवा [illegible] है। [illegible] लोग भी उनमें रह सके जो उस इमारत को बना रहे हैं। आज [illegible] देखा था कि मजदूरों

इस बार उसे हल्की-सी खांसी छूट आई थी। "मैं तो हमेशा सोचता हूं कितना अच्छा होता यदि इनके चाचाओं के कारखानों में मुझे भी काम करने का सौभाग्य मिलता। सुना है गाजियाबाद के पास जो कार बनाने का इनके एक चाचा का कारखाना है। वहां, और जगह काम करने वाले मजदूरों से इनके मजदूरों को दुगुनी तनखा मिला करती है।"

अब वह चुप हो आया था। हम दोनों चाय व सूजी खा रहे थे। वह गौर से मुझे देख रहा था। शायद जानना चाहता था कि उसकी बिटिया ने बादशाह साहब के स्कूल की इज्जत रखी है या नहीं? सूजी वैसे भी बेहद स्वादिष्ट बनी थी, उस पर भी उसे लाते समय इतना तक ध्यान रखा गया था कि चखने की उतावली में जीभ या मुंह जल न बैठे। इस बात से तो मुझे यहां तक लगा जैसे एक सत्तू ही क्या इधर का हर आदमी, फूल-पत्ते व इधर की धरती का कण-कण तक यह ध्यान रखता है कि इनके बादशाह साहब की शोहरत के खिलाफ कोई बात न कर बैठे। यही वजह थी कि मैं बोला, "सूजी तो बेहद स्वाद···"

"सच?" अब वह फूला नहीं समाया। उसके अंग-प्रत्यंग में एक अनोखी प्रसन्नता छा आई। मेरे देखते-देखते उसने अपनी प्लेट में से आधी सूजी मेरी प्लेट में डाल दी। मैंने व्यावहारिकतावश मना तो किया पर मन ही मन सोचा चलो निकल्सन रोड जाने की अब जरूरत नहीं रही। अब मेरी थकान पूरी गायब-सी हो आई। सोचा अब तो शाम तक भी यहां लोगों से मिलता रहूं तो भूख व थकान तंग नहीं कर सकती है। थोड़ी ही देर में जब हम दोनों ने चाय भी खतम कर ली तो, वह पुनः अपनी बात बताने की उतावली-सी में मुझे देखने लगा।

"हां, तो साहब मैं उस दिन को कभी नहीं भूल सकता। उन दिनों हमारे कारखाने की हड़ताल को लगभग दो महीने होने को हो आए थे। ब्याज वाले तो जानते थे कि एक न एक दिन मजदूरों व मालिकों का झगड़ा निपट ही जाएगा। पर आटा-दाल-चावल वाली दुकान वाला इन बातों को नहीं जानता था। जानता भी कैसे, उस बिचारे को तो मैं हर महीने ब्याज से बचे पैसों में से रो-धोकर ही दिया करता था। साहब तब उसने आटा-दाल देने से मना कर दिया। उसमें उसका भी कसूर क्या? आटे-दाल के लालच में दूसरे कारखानों में गया। वे पूछते पहले कहां काम करते थे? झूठ मुझसे बोला पहले भी नहीं जाता था। मुझे बताना पड़ता। तब वे कहते—हटो-हटो यहां से। गद्दार हड़तालिए के लिए हमारे यहां काम नहीं···। हड़ताल क्या हो गई, मैं गद्दार हो गया। मैंने रोटी के कारण उन दिनों फावड़ा खोदना चाहा। गारा उठाना चाहा, पर वहां भी सभी जगह मुझ जैसे कई बदनसीब पहले से

ही आस लगाए खड़े होते थे। ओफ पेट का यह गड्ढा आदमी को कितना गिरा देता है आज मैं एहसास करता हूं। अब उसने एकाएक ही दोनों हाथों से अपने दोनों कान पकड़ लिए थे। जानते हो तब क्या हुआ ? तब तीसरी रात बच्चों को भूखा पेट सोते देखना मुझसे बरदाश्त नहीं हुआ। मैंने जब भूखी नजरों से अपनी पन्द्रह-सोलह साल की बिटिया की ओर देखा था। जिसे उसकी मां बर्दाश्त न कर सकी। बोली थी—खबरदार जबान से ऐसी बात निकाली तो ठीक नहीं होगा। कभी भगवान के नाम पर घर पर कुछ पैसे होंगे ही। उन्हें ही ले जाकर ले आना कल जहर। मुसीबतों को हंसते सहने की हिम्मत का ही नाम है गरीबी। देख ली तुम्हारी हिम्मत। खबरदार ऐसी जबान न खोलना। तब मैं कांप उठा था। उस सारी रात मेरी आंखों में नींद नहीं थी। तब उन्हीं उनींदी आंखों के बीच हम दोनों ने फैसला किया था—चाहे जैसे भी हो कल आखिरी बार भर पेट खाएंगे और फिर सभी खाने में मिले जहर के साथ मर जाएंगे। पर सवाल था—जहर भी कहां से खरीदा जाए ? क्योंकि उधार ही यदि मिलता तो आटा नहीं आता। भगवान के नाम पर दस पैसे भी पचालीस ही निकले थे घर पर। तब अगली सुबह मैं उन्हें ही लेकर चला था। पर फिर वही सवाल था कि जहर लाया कहां से जाए। मुफ्त तो जहर भी नहीं आता था। तब साहब मुझसे एक बहुत बड़ी गलती हुई। जिसका मुझे तब जरा भी एहसास नहीं था। इसका भी एहसास मुझे बादशाह साहब ने ही करवाया। वरना साहब मैं इतना गिरा हुआ नहीं था। जहर के लिए भी भले ही मैं अपना खून बेचता। पर बस रात सिसक कभी नहीं बचता जैसे मैंने बचा था। साहब मुझे इसी का दुःख है। ओफ

तब साहब चार दिन का भूखा मैं खून बेचकर अभी सड़क पर पहुंचा ही था कि मैं सिर चकराने के कारण गिर पड़ा था। तभी मिले थे मुझे ये बादशाह साहब। मुझे अच्छी तरह याद है तब इनके अलावा सड़क पर चलते लोग कार व बसों वालों में से किसी ने भी मेरा ख्याल नहीं किया था। तब कार रोककर ये ही आए थे मुझे उठाने तब जब इन्होंने मेरे बारे में पूछा तो मैं रो पड़ा था। मेरा रोना बर्दाश्त न कर सके। तब इन्होंने मुझे कार में बिठाकर मेरे घर ही नहीं छोड़ा था बल्कि ये तब तक हमारे घर में रहे थे जब तक हमने खाना नहीं खाया था। खाने के लिए पैसे भी इन्होंने ही दिए थे। तब दूसरे दिन अपनी कार में बिठाकर ये हम सबको इधर लाए थे। तब से मैं यहीं हूं। आप कितना अच्छा होता यदि मुझ जैसे कपूत का यदि कोई बादशाह साहब की तरह से यह जान पहले बना रहता। साहब आज जहर खरीदने के लिए खून बेचा समय के अपने मन की बातों को जब भी मैं सोचता हूं तो मेरी आंखों के सामने एक और ही जहां के लोग होते हैं जो

कहा करते हैं कि मुसलमान इस देश में भले ही रहते हैं, पर वे देश के
वफादार कभी नहीं रह सकते हैं। वहीं दूसरी ओर मेरी आंखों के
ये बादशाह साहब होते हैं जो हमारी सरकार की खून देने की अपील
थ हम सबको इकट्ठा करते हुए यह कहते हैं कि सरकार की खून देने
अपील आई है। इसलिए मेरी सबसे प्रार्थना है कि सबके सब ज़्यादा-से-
दा खून ही न दो, बल्कि इस बात का भी खयाल रखना कि तुम खून उनके
ए दे रहे हो जिन्होंने ठीक होकर फिर दुश्मन से टक्कर लेने लड़ने जाना
। इसीलिए जिस समय तुम्हारे शरीर से खून लिया जा रहा हो उस समय
से सोचना, जैसे लड़ाई के मैदान में कोई और नहीं लड़ रहा है बल्कि तुम
खुद लड़ रहे हो। ऐसा न हो कि अगर तुम्हारे दिमाग में यह भी खयाल आया
कि यह खून तुम अपनी मर्ज़ी से नहीं, सिर्फ बादशाह साहब के कहने से दे रहे
हो तो ठीक नहीं होगा। मेरी आत्मा को गहरा दुःख होगा। क्योंकि अगर
तुम्हारे ऐसे सोच के क्षणों में दिए खून ने मेरे देश के एक भी जवान को बुज़-
दिल बना दिया तो, पता नहीं मेरे देश के कितने बहादुर जवानों को तथा मेरी
कितनी मां-बहन को इसका दंड भुगतना पड़ेगा। लड़ाई के मैदान में तो एक की
ज़रा-सी भी गलती से दुश्मन की जीत तक हो सकती है।" इतना कहते-कहते
उसने दोनों हाथों से सिर के बालों को जकड़-सा लिया। "आज मैं बादशाह
साहब के चार पंडितों की बदौलत दोनों के सोच में फरक पाता हूं। एक
कहता है सिर्फ खून दो। दूसरा···आज साहब, बादशाह साहब ने हमारी आंखें
खोल दी हैं। अब हम अच्छी तरह समझ गए हैं कि जो लोग मरे दिल से हमसे
खून देने की बात कहते हैं ये वे ही हैं जो एक ओर तो, जब हम रोटी के लिए
हड़ताल करते हैं तो ये कहते हैं गद्दार हड़तालिए के लिए हमारे यहां काम
नहीं। दूसरी ओर ये जानते हैं कि यदि इस तरह एक जगह भी हड़ताल काम-
याब हो गई तो एक दिन ऐसा आ जाएगा, जब दिन दूना रात चौगुना होने
वाला मुनाफा कम हो जाएगा। इतना ही नहीं, वे यह भी जानते हैं कि
बुरे-से-बुरे समय में ये अपने-अपने देशों से भागकर कहीं दूसरे देश में भी जा
सकते हैं जबकि हम···साहब तब जहर खरीदने जब मैं खून बेचने गया था तब
मैं इन सब बातों से अनजान था। पर अब नहीं। अब मुझे पता चल चुका
है कि जो लोग बुझे दिल सिर्फ खून देने की बात करते थे ये वे ही लोग हैं जो
एक ओर हिंदू, मुसलमान, सिख, ईसाई कहकर हमें आपस में लड़वाते हैं तो
दूसरी ओर मज़दूर और मज़दूर को भी लड़वाते हैं।···ऐसा सोचूं भी कैसे
नहीं। एक ओर तो वे लोग थे जिन्होंने मुझे लड़की की ओर बुरी नज़र से
देखने व जहर खरीदने की इस हद तक मजबूर किया था। दूसरी ओर
बादशाह साहब थे जो मुसलमान जैसे होते हुए भी कुछ और ही थे। ओ

साहब तब मुझसे एक गलती और हुई। तब इनके मुँह से सत्तू की माँ तथा बिटिया के लिए भी मा सुन मुझे विश्वास नहीं हुआ था कि कहीं यह सब कुछ उसी बिटिया के पीछे तो नहीं। जिस बिटिया के शरीर से खिलवाड़ करवाकर मैंने पेट का गड्ढा भरने की बात तक सोची थी। यही कारण था कि तब उस पहले दिन हम उनके साथ नहीं चले थे। चले थे दूसरे दिन, जब मैं इनके बारे में सब-कुछ सुन चुका था। तब मुझे, जब यह सब कुछ पता चला था कि ये तो कुछ और ही हैं तो साहब मैं रो पड़ा था कि मैं ···? पर अपने लिए पर मैं कर क्या सकता था। तब घर लौटकर जब मैंने सब बातें सत्तू की माँ को सुनाईं तो वह बोली थी—सुना था कि दुनिया में सबसे बड़ा दानी राजा बलि हुआ था, पर यह कौन? आज साहब दिन बीतने में देर नहीं लगती। बिटिया की शादी भी बादशाह की वजह से हो गई है। पर साहब जब से हमारे देश पर हमला हुआ है तब से बार बार मेरे मन में एक ही बात सुई की नोक की तरह चुभती है कि कहीं मेरे उस रोने [illegible] ने, मेरे देश के किसी जवान को बुजदिल बना दिया हो तो कहीं बादशाह साहब की आत्मा दुखी न ···



अब मैं खान साहब के मुहल्ले के बारे में [illegible] मिलना चाहता था। पर [illegible] कि वकील उनमें से एक के बच्चों के [illegible] पुस्तकों की खरीददारी में [illegible] था। यही कारण था कि [illegible] पुरानी इमारत के दालान की सीढ़ियों के नीचे [illegible] था और इस समय इधर न होकर मैं जामा मस्जिद के [illegible] में चक्कर [illegible] कि [illegible] पर [illegible] की तैयारी कर और [illegible] के खरीददार [illegible] की भूखी नज़रों को मात देकर [illegible] अपने

ज्ञान का उन पर रौब हांकू। इतना सोचना ही था कि मेरी आंखों के सामने मेरे परममित्र वाहती का चित्र उभर-सा आया। जिन्होंने मुझे इस अजीबो-गरीव वाजार की विचित्रता से जहां परिचित कराया था। वहीं, मुझ में हर इतवार इस वाजार में घूमकर किताबें खरीदने का सुंदर शौक जगाया था।

तव पहले दिन जव मैं वाहती के साथ कवाड़ी वाजार गया था मैंने वेहद घुटन का अनुभव किया था कि मैं खरीददारी करने ऐसे वाजार आया हूं जहां के वारे में आम धारणा यह है कि इधर चोरी का माल विका करता है। जिस तरह से चोरी करने के ही वरावर चोरी करने वाले व्यक्ति को शह देना गुनाह है इसी तरह चोरी का माल खरीदना भी तो कम गुनाह नहीं। तव मैं केवल यह ही सोचता-सोचता रह गया था। पर अव जव भी मैं इधर आता हूं, एक अजीव-सी शांति का एहसास होता है। कारण मैं यहां से, जहां केवल किताबें खरीदता हूं, वहीं, यह भी जान चुका हूं कि किताबों की वैसे भी चोरी नहीं होती है। हां, छपने से पहले उनकी चोरी अवश्य होती है। इतना ही नहीं, मैं अव यह तक जान चुका हूं कि यहां किताबें उन लोगों की विका करती हैं जिनको किताबों से लगाव तो जरा भी नहीं। केवल, अपने-अपने ड्राइंग रूम में किताबों को सजाने का उन्हें शौक जरूर होता है। वह भी इसलिए कि जो भी उनके कमरे में आए वह उसे वुद्धिवादी या इंटलेक्चुअल कह सके। ऐसे ही किताबी शौक वाले वुद्धिजीवियों की वदौलत कवाड़ी वाजार में किताबों का वाजार हमेशा ही गर्म रहा करता है। क्योंकि ड्राइंगरूम में किताबों की अधिक भर्ती की स्थिति में या इधर-उधर वदली की स्थिति में वे उन्हें अधिकांशतः कवाड़ियों को ही वेच देते हैं। यही कारण था कि मुझे यहां जहां कई तथाकथित सम्माननीय व्यक्तियों को समर्पित, लेखकों के हस्ताक्षर वाली पुस्तकें मिलीं। वहीं मुझे यहां कई ख्याति प्राप्त व दुर्लभ पुस्तकें मिलीं। जिसके कारण मैं यह सोचने से अपने को नहीं रोक पाता हूं कि इंटेलेक्चुअल को तो अपनी रुचि की किताबों से ऐसा लगाव होता है कि वह उस से विछुड़ने की सपने में भी कल्पना नहीं कर सकता है। तव फिर, ये कैसे लोग होंगे जो···?

यही कारण था कि इस तरह की दुर्लभ पुस्तकों की खरीददारी करने वालों की एक वहुत वड़ी जमात यहां हमेशा चक्कर लगाया करती थी। फिर यहां कई वार तो ऐसी किताबें तक मिल जाती थीं जो प्रकाशकों के यहां तक नहीं मिलती थी। मैं कवाड़ी वाजार की इन्हीं यादों को याद करते-करते, वहां किताबों की खरीददारी करने वाले चेहरे को याद करते-करते, इधर के चार पंडितों के चेहरों को पहचानने का प्रयत्न कर रहा था। इसी प्रयत्न के वीच मैं अभी पुरानी वाली इमारत के लगभग आखिरी छोर पर पहुंचा ही था कि उधर

अपने दूर के रिश्ते के मामा की लड़की दीप्ति को नये ही रूप में देख भौचक्का रह गया। बेचारी वह भी मुझे जड़वत् खड़ी की खड़ी देखती ही रह गई। उसे एकाएक ही लाल साड़ी पहने तथा माथे में सिंदूर लगाए देख, मेरी आंखों में प्रसन्नता के जहां आंसू उमड़ आए, वहीं मैं क्षण-दो क्षण बाद उसी की ओर खिंचा चला गया। उसके पास पहुंचा ही था कि 'दद्दा' कहते हुए उसने पैलागी या प्रणाम किया और आंखों की अव्यक्त मगर स्पष्ट भाषा में अंदर चलने का उसने मौन आग्रह किया।

भला मैं इस आग्रह को कैसे नहीं स्वीकारता। अब मेरी आंखों के सामने बचपन की कई वे मधुर स्मृतियां दिखने-सी लगीं कि जब मैं ननिहाल में जाया करता था। उसकी व मेरी उम्र में अंतर भी तो अधिक नहीं था। वह केवल छः साल ही तो मुझ से छोटी थी। उसके बारे में मैंने जो सुना था उसमें व अब में अंतर था। इसी अंतर की प्रसन्नता में मैं उसके साथ अंदर तो चला, पर मेरे मन में उसके बदले जीवन को जानने की तीखी जिज्ञासा हो आई कि आखिर यह मामला क्या है? क्योंकि मुझे तो उसके बारे में यह जानकारी थी कि करीब पंद्रह साल पहले उसकी शादी हुई थी। मगर, शादी होने के तीन महीने के अंदर ही उसके माथे का सिंदूर पुछ गया था। जब हमें इस दुःखद समाचार की जानकारी हुई थी, तब मां बेटे हम दोनों ने खाना नहीं खाया था। तब जब मैंने उसे पांच-छः महीने बाद सफेद धोती पहिने देखा था तो मेरा माथा ता फट-सा आया था। रह-रहकर मन में तब विचार उठे थे जब चालीस साल की उम्र पार कर, दो-दो तीन-तीन बच्चों के होते हुए, पत्नी के मरने पर पुरुष दूसरी शादी कर सकता है तो एक ऐसी कम-उम्र वाली औरत पति के मरने पर शादी क्या नहीं कर सकती है? जब कानून द्वारा सती-प्रथा को रोका जा सकता है तो दूसरे कानून द्वारा ऐसी अभागिन नारी को जीवन भर तड़पने-छटपटाने से बचाया क्या नहीं जा सकता है। तब मैं काफी रात तक इसी बारे में सोचता तो रहा था मगर इस बात पर सोचते ही घबरा उठता था कि यदि यह सब संभव हो भी जाए तो क्या व युवक इस बदलाव को सफल बनाने को आगे आएंगे जिनकी शादी के लिए उनके माता-पिता पुरानी परिपाटी के ही लिहाज से कल्पना किया करते हैं। तब ऐसी स्थिति में उस कानून का लाभ क्या? इन्हीं विचारों में पुरानी यादों को याद करते-करते मैं अभी दीप्ति के कमरे के मोड़े पर बैठा ही था कि सारी स्थिति मेरी आंखों के सामने साफ हो आई। सामने दीवाल में टंगे एक चित्र से यह बात स्पष्ट थी कि दीप्ति के भरे जीवन में जो यह बदलाव आया है वह सब प्रोफेसर शंकर के ... के कारण आया है। ... पर भी हद यह थी कि प्रोफेसर शंकर तथा दीप्ति के सिर पर मुकुट बंधा था। यह भी कई

लोगों के बीच। जिसने तो मेरे मन में तूफान-सा खड़ा कर दिया कि क्या इन दोनों की शादी बारात के रूप में हुई है ? क्योंकि विधवा विवाह वाली बात या घटनाएं तो इस बीच कई सुनीं तो जरूर, मगर बाकायदा ऐसी बारात के साथ शादी देखना तो अलग, सुनी तक नहीं थी। यही कारण था कि अब जहां मेरे मन में शेखर के प्रति अपार श्रद्धा उमड़ आई, वहीं मुझे लगने लगा जैसे ऋषि व मुनियों की तपोभूमि पहाड़ सांस्कृतिक थाति को बचाए रखने को जहां आमादा थी, वहीं वह अब सांस्कृतिक पुनरभ्युदय कराने को तुल-सी आई है क्या ? तभी मैंने पाया कि दीप्ति मुझे देख जहां मुस्कुराने लगी, वहीं वह एकाएक ही बोल उठी, "क्यों भय्या तुम्हारी भी आंखें झूठे ढिंढोरची मुल्ला, मौलवियों, पादरियों, पंडितों की तरह यह सब बरदाश्त नहीं कर सकती हैं क्या ?"

मैं अवाक्-सा उसे देखता ही रह गया। मेरा सिर स्वतः ही लज्जा से झुक आया। मेरे लिए अब उन दोनों के संयुक्त चित्र तक को देखते रहना भी कठिन हो आया। इच्छा हुई कि कहूं—वैणा तुमने मुझे गलत समझा है। हकीकत तो यह है कि मैं ज़िंदगी में आज पहली बार खुश हूं। इच्छा हुई कि कहूं। भला जिसे खुश देख सकने की कल्पना सपने में भी न की जा सकती हो, उसी को खुशी देख, खुशी न हो तो कब हो। रही बात मेरे बरदाश्त की, मैं तो उन आदमियों में से हूं जो धर्म को कभी भी पूर्ण नहीं मानते हैं। इतना ही नहीं मैं तो उन लोगों में से हूं जो जीवन की छोटी-छोटी बातों में धर्म की टांग घसीटना नाजायज़ मानते हैं। क्योंकि आज के बदले धार्मिक या आर्थिक परिवेश में धर्म का अर्थ परम सत्य की खोज न होकर आत्मा व आत्माओं का आम द्वंद है पर प्रकट में बोल कुछ भी नहीं पाया। अपलक देखता रहा उसी की ओर। तभी वह 'अरे चाय' कह झटके से मुड़ी। पता नहीं मेरा यह मौन वह सह न सकी या बातों की दिशा मोड़ने, कुछ सोचने को, एकांत [illegible] चाहती थी।

सर्दियों का छोटा दिन अब काफी ढल चुका था। कभी मैं कमरे की एक-एक वस्तु को देख रहा था तो कभी देख रहा था दरवाजे से दिखते नई इमारत बनाते मजदूरों को। जो अब अपना-अपना काम छोड़ जगह-जगह टोलियों में बैठे खाना खा रहे थे। उनका इस तरह खाना खाना बेहद भला लग रहा था तभी एकाएक ही मेरी निगाह मेज पर रखे एक और चित्र पर पड़ी। मेरी आंखें वहां टिकी की टिकी रह गईं। उस चित्र के प्रोफेसर शेखर तथा दीप्ति को तो मैं पहचानता था, मगर उस चित्र की एक महिला व चार व्यक्तियों को मैं नहीं पहचान पाया। हालांकि चारों की सूरत तो कुछ-कुछ परिचित-सी लग रही थी। पर यह याद नहीं आ रहा था कि इन्हें देखा कहां है। तभी एकाएक ही मुझे

याद आया कि हिंदू, मुसलमान, सिख व ईसाईयों के धार्मिक गुरु से लगने वाले उन चारों को मैंने कबाड़ी बाजार में देखा था। यह याद आना ही था कि मुझे वह पहला दिन भी याद हो गया जब इनमें से एक को देखते ही मेरे मित्र याहूती झल्ला उठे थे, कि जिस दिन ये लोग इधर दिखाई दें उस दिन समझो कि अच्छी किताबें इनकी नजरों से बच नहीं सकती हैं। ये किसी भी विषय की अच्छी किताब को छोड़ते ही नहीं हैं, पर तभी जब मेरी निगाह दीप्ति के साथ वाली महिला पर पुनः जा पड़ी तो उसने मेरे मन मस्तिष्क में तूफान-सा खड़ा कर दिया। आखिर यह कौन होगी? निश्चय ही यह कोई विशेष ही होगी जो'' इतना तो क्या, इस सोच के बीच मुझे यह सब ध्यान नहीं रहा कि दीप्ति चाय टेबल पर रखकर मुझे अपलक देख रही है। इसका पता मुझे तब चला जब उसने मुझ से पूछ ही लिया—"क्यों दद्दा क्या देख रहे हो इस फोटो को?"

अब तो इस प्रश्न के कारण मेरी हालत और भी अजीब हो आई। मैं अवाक्-सा उसे देखता रह गया पर अब वह उस चित्र के प्रत्येक व्यक्ति का परिचय कुछ ऐसे कराने लगी जैसे वे साक्षात मेरे सामने खड़े हों। उसने बताया, "पीछे जो पांच व्यक्ति खड़े हैं उनमें सबसे दायें मेरे पति प्रोफेसर शेखर हैं जिनकी बदौलत मैं आज यहां हूं, वर्ना तो शायद जिंदगी भर तड़पती ही रहती। ससुराल वालों ने तो वैधव्य के दूसरे ही दिन मुझ पर से निकाल दिया था। ओफ, कितनी भयानक थी वह सास जब दसवें ही दिन को पति का तेहरवां मुझे जहां मानना पड़ा। वहीं अकेली अपना [illegible] भाग-विभ्राट मायके का ही चलने को विवश होना पड़ा। ऐसी स्थिति में लड़की का मां बाप के अलावा और कौन होता है। और तो उस साथ साथ [illegible] का यह बाप खड़ [illegible] हैं। ओफ, क्या कुछ नहीं हो जाता [illegible] साथ उस सास। यह भी एक अजीब ही कहानी थी कि एक ओर तो मेरे दुर्भाग्य का भाग सिर नीचे झुका चीता [illegible] सामने से रास्ता छोड़ दूर चला गया था। दूसरी ओर उस समाज व ठेकेदार नर-पिशाच मेरे ससुराल व सम्मानित चार व्यक्ति [illegible] उन्हीं दुर्भाग्य के क्षणों में मुझे नष्ट करने को आमादा हो आए। तब न चाचा की चिल्लाहट थी पर प्रश्न था उस घमासान जंगल में मेरी चीख सुनता कौन [illegible] अपना [illegible] से भय से उधर [illegible] जाने का साहस [illegible] बात थी कि मेरी चीख उसी [illegible] मेरे शरीर का [illegible] थे कि उसी [illegible] [illegible] छाया था। [illegible] इधर यहां [illegible] [illegible]

नहीं यह एक मादा प्राणी की दूसरे मादा के प्रति नैसर्गिक सहानुभूति थी या कोई दैवी शक्ति की महती कृपा—मैं कह नहीं सकती। जीवन की ठोकरें खा-खा व इस अजीवोगरीव धरती में रहकर दैवी शक्ति के प्रति मेरी धारणा अब कुछ ऐसी हो आई है कि अधिक चढ़ावा चढ़ाने में समर्थ व अधिक दान देने वालों की रिश्वत देख-देख अब ईश्वर की भी नज़रों में फर्क आ गया है। वर्ना ऐसा कहीं भी संभव नहीं कि ईमानदार आदमी तो जीवन भर तड़फता व छटपटाता ही रहे जबकि दुनिया भर के पापी व झूठे व्यक्ति दिनों-दिन फलते व फूलते रहें। हालांकि कहा यह जाता है कि वह सबको सजा देता है। पर मैंने तो ऐसों को सज़ा मिलते, कभी भी देखा नहीं। पता नहीं बदली परिस्थितियों में उसका दंड-विधान ही बदल गया है या कोई और बात हो। अब रहे इस चित्र के बाकी चार आदमी। ये चारों इधर के चार पंडित कहलाते हैं। ये चारों इधर रहने वालों को सुबह व शाम पढ़ाते हैं। बाकी इस चित्र में हम दो जो हैं उनमें से एक तो मैं ही हूं। दूसरी है बादशाह साहब की बेगम। जो कि मेरे लिए हमेशा ही पहेली है। जब भी मैं इनके बारे में सोचती हूं तो विश्वास नहीं होता है कि···

"भय्या! वैसे तो आजकल गरीबों से हमदर्दी की बातें करना एक तरह से जहां फैशन बन गया है वहीं ऐसे लोग भी गरीबों के हमदर्द मसीहा बन आए हैं जो न तो एक दिन खाना न मिलने के कारण भूखे रहे हैं और न जो टपकती झोंपड़ी में या कड़ाके की सर्दी में मजबूरन रहे हैं। पर इनकी बात ऐसी नहीं। ये तो खुद ही कहती हैं कि वे तो ऐसे मां-बाप की बेटी हैं जो अपनी बेटी को ऐसे घर देने की सपने में भी नहीं सोच सकते थे। वह तो होनी ही कुछ और होनी होगी, वर्ना उनकी शादी तो चौथी बीवी के रूप में पचपन साल के एक बूढ़े से तय हो गई थी। जो कि उन्हें बिलकुल भी पसंद न था। यही वजह थी कि वे अपनी ज़िंदगी की भीख मांगने, अपने चाचा के यहां इधर किसी बहाने आ गई। उनके चाचा खान साहब के रसोइया थे। उन्होंने मौका पा इस बात का जिक्र उनसे कर दिया। जिस पर खान साहब तुरंत ही खुद उनसे शादी करने की बात बोल बैठे। जिसने उनकी बदनसीबी का नक्शा ही बदल दिया। ये ही तो कारण है कि वे अपने पति के साथ एक मामूली झोंपड़ी में बड़ी ही सहजता से जहां हंसी-खुशी रहती है वहीं कीमती कपड़े पहनती ही नहीं। कहती हैं कि जब दुनिया में करोड़ों ऐसी औरतें हैं जिनके पास तन ढंकने तक को कपड़े नहीं, तो मुझे कीमती कपड़े पहनने का हक नहीं है···।" कहते-कहते दीप्ति सहसा चुप हो आई। बड़े ही गौर से मेरी प्रतिक्रिया जानने मुझे ही देखती रह गई, "भय्या तुम्हें शायद यकीन न हो, ये तो हर पल, हर क्षण गरीबों की सेवा में जुटी ही रहती हैं। तुम्हें अगर

मुझपर यकीन न हो तो तुम इस कमरे से तीसरे कमरे में जाकर खुद देख आओ कि उधर बन रही इमारत में काम कर रही मजदूरिनों के बच्चों की देखभाल इस समय वे खुद कर रही हैं या नहीं ? वैसे ऐसे बच्चों की देखभाल करने के लिए इन्होंने दो मजदूरिनें नियुक्त कर रखी हैं। इसके अलावा बारह से चार तक ये यहां औरतों को दिन में पढ़ना-लिखना सिखाती हैं। इनके साथ औरतों को पढ़ाते मुझे बेहद सुख मिलता है। परमात्मा ने वैधव्य से जूझने, रोटी के सहारे के लिए पढ़ने की मुझे अच्छी अक्ल दी थी। वही अक्ल आज मेरे काम आई। इनके साथ सेवा का सौभाग्य मुझे भी मिला है।'

अब मैं अवाक् सा दीप्ति को देखता का देखता ही रह गया। मेरी प्रसन्नता का ठिकाना भी अब नहीं था। कारण खान साहब के बिल्कुल वैयक्तिक जीवन की कई उन बातों का पता चल रहा था, जिनके बारे में जानकारी मिल सकने की मुझे जरा भी आशा नहीं थी। और दीप्ति थी कि लगातार बोले ही चली जा रही थी, 'वैसे मैं अपने को मुसलमान औरतों में सबसे सौभाग्यशाली महिला मानती हूँ। कारण इन्हें सौत का दुख जरा भी नहीं भोगना पड़ा है। कहती हैं कि जब मेरी शादी हुई थी तब मुझे अपनी शादी की बातें सपनों की-सी बातें लगी थीं। कहां झोंपड़ी में रहने वाले मेरे माता-पिता, कहां ये ? तब मैं इनके घर की रानी तो बन आई मगर मैं अंदर ही अंदर घबराती थी। मैं दो चार दिन में ही अंदर ताड़ गई थी यह तो खान साहब की वजह से इन्हें मुझे बहू स्वीकारना पड़ रहा है वर्ना अगर उनकी जगह कोई भी दूसरा आदमी होता तो इधर मेरा जीना दूभर हो जाता। गरीब मां-बाप की बेटी तो जरूर थी पर अक्ल में गरीबों की कमी नहीं थी। तब तक सास मैंने अपनी नानी से सुना—हम मुसलमानों के यहां तो चार चार बीवियां रखना मजहब के मुताबिक बिल्कुल जायज है। अभी ना अशरफ की गर ही शादी हुई है। नवाब साहब की पोती का रिश्ता आया है उन्हें इस शादी के बावजूद एतराज नहीं है। तब मेरे पांवों के नीचे की धरती ही खिसक आई थी। मुझे लगा था कि नवाब साहब की पोती इधर आई नहीं कि मेरी दशा यहां नौकरानी की जैसी हुई नहीं। मैं उसी क्षण में गुमसुम सी हो आई थी। तब उसी दिन मेरे मायूस चेहरे को देख खान साहब ने मेरी मायूसी का कारण पूछा था। पहले तो मैं कुछ भी नहीं बोली पर जब उन्होंने बहुत ही जोर दिया तो मैंने उन्हें सारी बातें बता दीं। तब वे खिलखिलाकर हंस दिए थे। बोले थे—अव्वल तो हमारी मजहबी किताबों में यह कहीं भी लिखा नहीं है कि हर मुसलमान को दो तीन या चार शादियां करना ही पड़ेगा। फिर मैं तो तुम्हारे अलावा दुनिया भर की हर औरत को मां का सम्मान देना चाहता हूं। तब मैं सौभाग्यवती सी ... ... थी। मुझ उन पर

विश्वास नहीं हुआ था। क्योंकि दुनिया की हर जाति के पुरुष ऐसे मौकों पर ऐसी ही बातें किया करते हैं। पर अब अविश्वास का प्रश्न ही नहीं उठता है। अब तो ऐसी बात देखते-देखते अट्ठारह साल हो आए हैं। इतना ही नहीं, अब तो इस बात की देखा-देखी यहां की मेरी और मुसलमान बहिनों तक को सौत का दुःख नहीं देखना पड़ा है।

"ये बातें खान साहब की बेगम ने मुझे उस दिन बताई जब शादी के बाद मैं भी इधर की औरतों को उनके साथ पढ़ाने लगी थी। उससे पहले तो वे अकेली ही पढ़ाती थीं। तब अपने पति से उनके बारे में बातें सुन मैं जहां आश्चर्यचकित रही थी वहीं उनके प्रति मेरे मन में अपार सम्मान हो आया था मगर जाने क्या बात थी कि तब मैं मालकिन व नौकर के रिश्ते के एहसास से अपने को नहीं रोक सकी थी। पर धीरे-धीरे मुझे उनकी सादगी व बराबरी के व्यवहार ने, और भी कायल कर दिया। तब एक दिन मैंने उनकी प्रशंसा की बातें की थीं। जो उन्हें ज़रा भी अच्छी नहीं लगी थी। वे उस क्षण जहां एक ओर हंस दी थीं वहीं बोली थीं—बहिन क्या मेरी तोंद फुलाकर मेरे को भी तुम नाकारा बनाना चाहती हो क्या? क्योंकि किसी को भी नाकारा करने के लिए झूठी प्रशंसा का हथियार एक ऐसा हथियार है जो कि धीरे-धीरे उसकी मौत ही करके छोड़ता है। तब उसके चौथे या पांचवे दिन जहां ये सब बातें सुनाई, वहीं, मुझे ईरान की महारानी व राजकुमारी के उन कामों के बारे में जानकारी दी जिन्होंने ईरान की महिलाओं का भाग्य ही बदल दिया है। अब रही मेरे अपने काम की बात, सच कहो तो ज़रा औरतों को पढ़ा देना और थोड़ी-बहुत उन्हें मदद कर देना भी कोई काम है। काम तो वह होता है जिससे दिशा ही बदल जाए। उनकी इन बातों ने तो मेरा मन-मस्तिष्क ही झकझोर दिया था। तब जब मैंने अपने पति को दिन की ये बातें सुनाई तो वे भी खिलखिलाकर हंस पड़े थे और बोले थे—जानती हो तुमसे मुझे शादी करने की जो प्रेरणा दी उसके पीछे स्वयं ये ही हैं। यह भी एक अजीब दास्तां है। ये मुझे प्यार में भय्या कहकर पुकारती थीं और मैं इन्हें मां का-सा सम्मान देता था। तब एक दिन औरतों को पढ़ाकर लौटते समय ये मुझे रास्ते में मिली थीं। जाने क्या बात थी कि अचानक ही मुझसे बोली थीं—तुमसे यदि एक भीख मांगू तो बोलो, क्या दोगे मुझे? तब भला मैं मना किस मुंह से करता। मेरी वही मां मुझसे भीख मांगे जिसके पति ने मुझे जिन्दगी दी थी। तब मेरी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहा था। मेरी आंखें डब-डबा आई थीं कि आज ऐसा सौभाग्य मुझे कैसे मिल आया। तभी तो तब मैंने कहा था—आप इशारा भर दीजिये। मैं अपनी जिन्दगी भी कुर्बान करने से नहीं हिचकूंगा। मेरा इतना कहना ही था कि भराए से स्वर में वे

बोली थीं—वैसे मुझे तुमसे ऐसा कहने का जरा भी हक नहीं है। यह तुम्हारा बिल्कुल निजी मामला है। पर जाने क्यों, मैं कहे बिना नहीं रह पा रही हूं। अच्छा तो सुनो फिर—यदि किसी बाल विधवा के मुर्झाये होंठों को मुस्कान में बदल दो तो यह कर देना। कम से कम मेरी एक बहिन···एक अभागिन बहिन को तुम्हारे साथ देख सकूं तो अपने को धन्य समझूंगी। तब मैंने सिर झुकाकर अपनी स्वीकृति तो दी थी पर अगले क्षण यह सोच कांप उठा था कि यदि मेरी मां ने इसका विरोध कर दिया तो फिर नई समस्या उठ खड़ी होगी। तब फिर मुझे अपनी दो माओं में से एक की खुशी को अपनी खुशी माननी पड़ेगी। पर धन्य कि जब मैंने अपनी मां को यह बात सुनाई तो वे बोली थीं—कि कितना अच्छा होता यदि तू किसी ऐसी ही को बहू बनाकर मेरे सामने खड़ा होता, और कहता—मां कैकयी के कहने पर राम ने वनवास स्वीकारा था। मैंने भी अपने को जिन्दगी देने वाली मां के कहने से यह ऐसी शादी की है और कहता—मां हम दोनों को आशीर्वाद दो। तब मैं अपने को धन्य समझती। अच्छा कोई बात नहीं, एक जमाने मैंने दीप्ति को अपनी बहू बनाने की सोची थी। क्या पता···"



अब मैं नई बन रही आठ मंजिली इमारत के पास खड़ा था। इधर काम कर रहे मजदूरों में से, कम से कम एक से बातें करने की मन में अगाध इच्छा थी। इसके बावजूद मैं इमारत के पास अकेला खड़ा था। कारण, इस इमारत के चारों ओर तीन-चार चक्कर तो लगा गया पर इधर मुझे एक भी मजदूर सुस्ताता नहीं मिला। पता नहीं इधर काम करते सभी मजदूर शारीरिक रूप से इतने स्वस्थ थे कि सुस्ताना उनकी मजबूरी न थी और या सिरदर्द या पेटदर्द का बहाना बना सुस्ताने की बदनियत अभी उन तक पहुंची न हो। और तो और, आठवीं मंजिल तक गारा पहुंचाते मजदूरों का ध्यान अपनी

ओर खींचने में मैं ने दो-एक बार कुछ खुराफात तक की। मगर वे थे कि मेरी पूरी तरह उपेक्षा-सी करते केवल काम ही करते रहे। इतना तो क्या, गारा उठाती मज़दूरिनों के बीच में उन मांओं की आंखों की बेतावी को देखना चाहता था, जिनके बच्चे और जगहों की तरह खुले आसमान के नीचे भूखी नज़रों से अपनी मांओं को भले ही न देख रहे हों, पर खान साहब की बेगम के संरक्षण के बावजूद अपनी-अपनी मांओं के सानिध्य के लिए अकुला तो इधर भी रहे ही होंगे। क्योंकि एक मां मजदूरिन होने से पहले जहां मां होती है। वहीं बच्चा चाहे अमीर का हो चाहे गरीब का, बच्चा तो बच्चा ही होता है। पर आश्चर्य कि लाख प्रयत्न करने पर भी किसी मज़दूरिन के चेहरे पर ऐसे भाव नहीं दिखाई दिए कि उसे विवशतावश ही काम करना पड़ रहा है वर्ना तो वह अवश्य ही अपने लाड़ले के पास होती। जबकि पालनों में झूला झूलते दूध की शीशियों से दूध पीते नौ-दस बच्चे मैंने उधर देखे थे। तब उन्हें देख मुझे याद आया था अपनी बेकारी का वह दिन जब मैंने भी गारा उठाया था। तब मैंने इन्हीं गुनाहगार आंखों से देखा था एक मज़दूरिन को अपने खामिंद से महज इसलिए पिटते कि वह गारा उठाना बीच में ही छोड़ अपने रोते-बिलखते दूधमुहे को दूध देने चली गई थी। वह भी ऐसे समय जब कि उनकी मजदूरी की आत्मा को खरीदे हुए वह ठेकेदार सामने ही खड़ा था जो ऐसे बच्चे वाली मज़दूरिनों को काम पर लगाता ही नहीं था। यह ही कारण था कि यह सब देख मुझे अब यह एहसास हो आया था कि यदि इधर किसी मजदूर से बातें करने का सौभाग्य मिलेगा तो केवल छुट्टी के बाद ही, उससे पहले नहीं। क्योंकि इधर चक्कर लगाते-लगाते या खड़े-खड़े मुझे पूरे पैंतालीस मिनट तो हो आए मगर न तो इधर मुझे कोई कामचोर मजदूर ही दिखा और न किसी के चेहरे पर कामचोरी के भाव ही। बल्कि इसका ही यह प्रतिफल था कि मेरे मन में रह-रहकर विचार उठ रहे थे कि यदि अपनी खामियां छिपाने जो लोग मज़दूरों की कामचोरी की बातें बड़े ही जोर-शोर के साथ किया करते हैं उनमें से दो-चार यहां आकर इस निष्ठा व काम को देख लेते तो कितना अच्छा नहीं होता!

सर्दियों का छोटा दिन सांझ के झुटपुटे में बदलने, शेष दो घंटे के लिए अकुला-सा रहा था। इसीलिए छुट्टी की प्रतीक्षा करना सहज न था। मजबूरन अब मैं भारी-भारी कदमों से खान साहब के महल की ही ओर चल पड़ा। मैंने गौर से गेट की ओर देखा। उधर कार गैरज में ताला लगा था और न इस समय उधर खान साहब की कार का ड्राइवर था। पता नहीं अब उसके लिए बगिया के फूलों में खोया रहना भी संभव न था या फिर वह इनके बारे में सोचते-सोचते गैरज के ऊपर वाले अपने घर पर आराम कर रहा था। पर

उधर की ओर देखना ही था कि मुझे सामने ही एक व्यक्ति हाथ में खुरपा लिए फूलों की क्यारियों के बीच से झाड़-झंखाड़ उखाड़-उखाड़कर फेंकता दिखाई दिया। उसके कांस से फूले सिर व दाढ़ी के बालों को देख मेरा माथा ठनका कि यह अजीब-सी विसंगति कैसी? एक ओर तो मजदूर बच्चों तक के लिए यह व्यवस्था, दूसरी ओर करीब अस्सी-नब्बे वर्ष के व्यक्ति के द्वारा यह काम? पर तभी खयाल आया कि बहुत संभव है कि बागवानी के कार्य में इसे बहुत ही दक्षता हो। इस व्यक्ति के पीछे भी कोई विचित्रता हो? क्योंकि इधर के हर व्यक्ति की ऐसी ही अजीबोगरीब कहानी या बातें हैं। यही कारण था कि मुझे जैसे कोई दुर्लभ वस्तु-सी दिख आई हो, मैं उसी की ओर खिंचा जहां चला गया वहीं, बगिया के किनारे खड़े हो बोला, "बाबा फूलों की गोलाई कर रहे हो क्या?"

"कौन, कौन बेटा सूरज" बेटा"।" कहते-कहते वह व्यक्ति एकाएक ही जहां झटके के साथ उठ खड़ा हुआ। वहीं, पलकों के ऊपर अपने दोनों हाथों से अर्ध चन्द्र-सा बनाता मेरी ओर ही दौड़ा चला आया। भला अब मैं उत्तर क्या देता। मैं सूरज थोड़े ही था। अवाक्-सा उसे देखता रह गया। तब तक वह मेरे बिल्कुल ही पास आ चुका था। अपने माथे में दोनों हाथों को हटा मुझे कुछ ऐसे देखने लगा जैसे उसे हकीकत का पता चल चुका हो और या वह पागल हो। फिर दोनों हाथों की कांपती अंगुलियों से मेरे दोनों बाजुओं को दबाते हुए फुसफुसाया, "बेटा तुम जो भी हो खुश रहो। हमेशा आबाद रहो। तुमने कम से कम मरने से पहले एक बार मुझे इस बात की तो याद करा दी कि कभी मेरे बेटे भी मुझे ऐसे ही पुकारते थे। इधर के बाकी लोग जहां पहले मुझे राजा साहब कहते थर-थर कांपते थे। वहीं, अब बाबा कहा करते हैं। बाबा नहीं बेटा। बाबा तो"'"

उसके इतने प्यार भरे स्वर व हाथों के स्पर्श ने तो मेरे रोम-रोम को पुलकित कर दिया। इतने प्यार से तो मेरे पिता तक ने मेरे शरीर को कभी स्पर्श नहीं किया था। यही कारण था कि दो-चार क्षण तो मेरी ऐसी स्थिति हो आई कि मुझे विश्वास ही नहीं हुआ कि मैं कहां खड़ा हूं या कहीं और। मैं अवाक्-सा उसे ही देखता रह गया। तभी मेरी आंखों के सामने अपने पिता का वह चेहरा याद हो आया जिसने मुझे तो मैट्रिक के बाद पढ़ना छुड़वा दिया मगर दोनों सौतेले भाइयों को सामर्थ्य के बाहर कालेजों में जबरदस्ती जहां दाखिला दिलाया वहीं आए महीने सौ-सवा सौ रुपयों की मेरे सामने मांग ऐसे रखी जैसे कि पिता होने के नाते यह उनका नैसर्गिक हक हो। हालांकि मुझे लगभग इतनी ही तनखा मिलती थी। पर मेरी विवशता यह थी कि मेरी मां उनके साथ रहती थी जो किसी न किसी बहाने पिता या सौत

से मार तो खाती रहती थी पर फिर भी उनके लिए पैसा भेजने को जोर ही देती थी। यही कारण था कि मैं तव उनके लिए अपना व अपने बच्चों का पेट काट पूरे पांच साल पचास रुपये माहवार भेजता रहा था। उस पर भी हद यह कि पिता के मुंह से मैंने कभी नहीं सुना कि तूने कुछ किया क्या है 'कुछ ···कुछ भी तो नहीं किया है'। जवकि कर्ज़ स्वीकार कर काफी अर्से तक मैं अपने सौतेलों को एल० डी० सी० न वनने देने की ज़िद में अड़ा रहा था। वह भी उस स्थिति में जवकि समय के तकाजे के कारण और वाप तक वेकार वेटे को एक दिन भी खाली खिलाना अव बुरा मानने लगा है। तभी एकाएक ही मैंने एहसास किया कि उसने मेरी वाजुओं को दवाना जहां छोड़ दिया है वहीं वह आर्त स्वर में वोलने लगा है, "माफ करना भय्या। वदनसीवी के पागलपन के वीच मैंने तुम्हें अपना सूरज समझा था। सुवह का भूला भी कभी-कभी शाम घर लौट आता है। मेरी मंद वुद्धि ने अपने एक वेटे का नाम जव सूरज रखा था, तव वह यह भूल गई थी कि सूरज न तो सुवह उगता है न शाम को अस्त होता है। वह तो एक ही जगह स्थिर रहता है। सूरज के उदय व अस्त होने की तो मुझ जैसे वदनसीव लोग मात्र कल्पना किया करते हैं। मेरी अगर वदनसीवी न होती तो जिसका एक वेटा व्रिगेडियर हो, एक डिपुटी सेक्रेटरी हो, एक वहुत वड़ी फर्म का मालिक हो, दो और भी करीव पंद्रह सौ के करीव ले रहे हों। उसी को दूसरे के मुंह वावा सुन अपने वेटों की याद थोड़े ही ताजा होती? ओफ कितना वदनसीव हूं···"

अव उसे एकाएक ही तेज खांसी छूट आई थी। जिससे तो उसका अंग-प्रत्यंग ही तड़फ-सा उठा। फिर थोड़ी देर वाद जैसे ही उसकी खांसी रुकी तो वह धाराप्रवाह भाषा में कुछ ऐसे वोलने-सा लगा जैसे किसी को अपनी वात सुनाने भर को वह वहुत अर्से से वेचैन हो। वोला, "भय्या तुमको मेरी वातें पागलों की जैसी लग रही होंगी। आज मेरी दशा ही ऐसी है। यह मेरी इस दशा का ही तो फल था कि डिपुटी सेक्रेटरी के रौव में मेरे वेटे ने अपने कमरे में वैठे आदमियों से जव यह कहा था कि यह आदमी हमारे घर में नौकरी किया करता था। वह तो मेरा वेटा अपने चपरासी से तव धक्का मरवाकर मुझे अपने कमरे से निकलवा ही देता अगर मैं गुस्से में आग-ववूला न हो गया होता। तव मुझे जाने क्या हो आया, मैं पागल-सा ही हो आया। मुझे नहीं मालूम मैं तव क्या-क्या उससे कह गया। तव मेरी वातें सुन उसके कमरे से दोनों अफसर वाहर चले गए थे। ठीक वैसे ही जैसे मेरा व्रिगेडियर वेटा मेरे आक्रोश को वरदाश्त न कर अपने कमरे से वाहर चला गया था। पर उसने मुझे थोड़ी-वहुत इज्जत दी थी कि मैं उसका पिता तो नहीं हूं हां, उसके गांव के रिश्ते का चाचा हूं। भय्या वे सव ठीक कहते थे। ऐसा वे कहते भी

क्यों नहीं, आज मेरे पास फूटी कौड़ी नहीं है। दुनिया में जिस किसी के भी पास पैसा न हो उसे ऐसा न सुनना पड़े तो, और किसे सुनना पड़े। ओफ, कितना काला दिन था वह, जब मैं अपने बेटों पर यकीन कर अपने पैसों का उनके नाम बटवारा कर गया। तब मैं यह समझ नहीं सका था कि बिना पैसे वाला पिता इसका अपवाद होता है। काश, मैं तब पत्नी की तरह बेटों की बदनियती ताड़ गया होता। कितना विरोध किया था तब उसने, उसने तो उसके पहले ही दिन से खाना छोड़ दिया था। पता नहीं तब मेरी मति को क्या पत्थर पड़ गया था। ओफ, कहां बटवारे से पहले वे सब मेरे आगे-पीछे घूमते थे। कहां, वे सबके सब जब तब दिखावा दिखाते कि यदि हम उनके यहां रहे होते तो उन्हें और अधिक आराम मिलता। कहां बटवारे के बाद सारे सब हम दोनों को फूटी नजरों से देखने लगे। इतना ही नहीं, पत्नी को तो उनमें से एक भी बरदाश्त नहीं करता था। उनकी बीवियां हमें बातों-बातों में ताने देने लगतीं। यह सब मेरी बेवकूफी नहीं तो और क्या जो मैं इस बात को भूल गया कि जिस व्यक्ति के पास पैसा न हो, उसका दुनिया में रिश्तेदार, अड़ोसी-पड़ोसी तथा बिरादर तो अलग उसकी अपनी बीवी तक जब अपनी नहीं रहती है तब उसके बेटे उसके अपने कैसे रह सकते हैं।"

इतना कहते-कहते वह एकाएक ही सिसककर रो पड़ा। एक बार उसने प्रश्नभरी आंखों से मुझे कुछ ऐसे देखा जैसे जानना चाहता हो कि मैं उसकी बातों पर विश्वास कर रहा हूं या नहीं? उसकी इस तरह की मदद भरी आंखों ने तो मुझे अपने मौसेरे भाई की उन निगाहों की याद ताजा करा दी जिन निगाहों से वह मुझे बार बार उस सुबह देख रहा था। जिस दिन, मेरे एल० डी० सी० पद के सरकारी क्वार्टर में जगह की कमी को देख दूसरी जगह बिना बताए चला गया था। तब जब शाम दफ्तर से घर लौटकर मुझे इस बात का पता चला था तो मैं स्तब्ध सा खड़ा का खड़ा रह गया था। और सोचता-सोचता रह गया था कि क्या यह वह ही सगा भाई है जिसे एल० डी० सी० न बनने देने के लिए कभी मैंने जद्दोजहद की थी। तब मुझे याद आया था—दस पंद्रह दिन पहले पिता का वह चेहरा जिसे देख मैं घबरा उठा था कि कहीं वे मेरी उम्र मां के साथ [illegible] और [illegible] को नहीं करने को उतावले हैं जिसमें मैं क्षण-भर के लिए भी [illegible] पास घर [illegible] देना चाहता हूं। पर मां [illegible] कि पग पग पर अपमानित होते [illegible] भी [illegible] के साथ रहती है। तब उन्होंने [illegible] शब्दों में हम सबको [illegible] दी थी [illegible] दूर दूर रहना अच्छा होता है। दूर रहने से ही प्रेम बना रहता है। अब तुम लोगों को अलग अलग रहना चाहिए। आजकल तो सभी अलग अलग ही रहते हैं। फिर यहां जगह की भी तो कमी है। तब मैं अवाक सा [illegible] देखता रह गया था कि

अगर ये वातें सात-आठ साल पहले कहते तो कितना अच्छा होता। तब मेरा अपना खर्चा तो ठीक चल रहा था जबकि आज करीव तीन हज़ार कर्ज सिर पर है, वह भी इन ही लोगों की वदौलत। मैं अभी इतना ही याद कर पाया था कि तभी एकाएक ही वह अजीवोगरीव पिता फिर वोलने लगा, "भय्या दुनिया में वहुत से लोग जो चाहते हैं कि उनकी मौत ज़रा और देर से हो, उनकी मौत उतनी ही जल्दी हो आती है। जवकि मैं चाहता हूं कि मेरी मौत जल्द से जल्द आए। मगर जितना ही मैं उसे वुलाता हूं उतना ही वह दूर खिसकी ही नहीं, वल्कि वंटवारे के वाद पूरे चौदह वर्ष और खिसक आई है। ओफ, जितने मैंने पाप किए हैं उनका फल भी तो भोगना है अभी और···

" यह फल भोगना नहीं तो और क्या है? कहां एक जमाने पहले, जवकि इस चहारदिवारी के मालिक राय साहव थे। तव मैं इधर के लोगों के लिए सचमुच ही राजा साहव था। क्योंकि राय साहव तो ऐशोइशरत व शराब के नशे में हर समय धुत पड़े रहते थे। कई वार तो यहां तक हुआ कि शाम उन्होंने अपने अंग्रेज हुकमरानों को खुश करने के लिए शराव की पार्टी व नाच-गाने का प्रोग्राम तय कर रखा था कहां वे शराव के नशे में धुत रहते थे। तब आड़े वक्त मैं ही आता था उनके काम। घंटे भर में ही मैं सव व्यवस्था कर देता था। व्यवस्था हो कैसे नहीं? पैसे की थैली जिसके मुंह पर मारो उसी से जो चाहो करा लो। तव ऐसे आड़े वक्त काम आने का मुझे ही तो मिलता था तोफा। ऐसे ही अनाप-सनाप तोफे का तो यह फल था कि मैं अपने पांचों वेटों को उन स्कूलों में पढ़ा सका जहां खुद राय साहव के वच्चे पढ़ते थे। वेटों की ज़िदगी वनाने के लिए क्या नहीं किया मैंने? उसी का नतीजा यह कि जहां दो रूखी रोटी के लिए हम दोनों को एक जमाने तरसना पड़ा, वहीं जव हमारी रोटी भी उनके लिए भारी वन आई तो एक दिन अचानक ही तीर्थयात्रा करवाने की वात सुन हम दोनों चौंक उठे थे। तव जिस सुवह सूरज के साथ हमने तीर्थयात्रा पर इलाहावाद जाना था उस रात हम दोनों की आंखों में नींद नहीं थी। हमें यकीन नहीं हो पा रहा था कि जो दो रोटी ठीक से हमें नहीं देते हैं वे तीर्थयात्रा कराने कैसे ले जा रहे हैं। तव पत्नी ने इसका विरोध किया था। पर मैंने सोचा था ज़िदगी में पाप ही पाप किए हैं यदि ये तीर्थयात्रा की वातें कर ही रहे हैं तो कोई हर्ज नहीं। क्या पता इस वहाने त्रिवेणी में स्नान ही हो जाए। यही सोच हम दोनों उसके व उसकी पत्नी के साथ चल पड़े। ओफ, इलाहावाद स्टेशन के वाहर हमें विठा, धर्मशाले का वहाना वना वहू व वेटे अचानक ही गायव हो गए। तव हम दोनों के पास एक रुपया पैंसठ पैसे थे। तव हम पूरे दिन, भूखे-प्यासे उसी जगह उनका इंतज़ार ही करते रहे कि कव वे लौटें व कव हमें धर्मशाला ले जाएं। तव

उन्हें लौटते न देख मैं घबरा उठा था कि कहीं श्रवणकुमार के माता-पिता की तरह हमारे साथ तो कोई अनहोनी न हो आई है। पर प्रश्न था—हम करें तो करें क्या ? पल्ले में पैसे नहीं, ऊपर से अनजान जगह अलग। तब जब मैंने यह बात पत्नी से कही तो वह झल्ला उठी थी कि रायसाहब को ठगने की तो तुम में खूब अकल थी अब तुम में इतनी समझ नहीं कि जो अभी भी यह समझ नहीं पा रहे हो कि हमें यहां तीर्थयात्रा कराने नहीं बल्कि हमसे अपना पिंड छुड़ाने लाया गया है। ताकि बहुओं व बेटों को अपने स्तर के दोस्तों के बीच हमें देख अपमानित न होना पड़े। पास रहने पर या तो फिर देना पड़ेगा या फिर···

तब दूसरी सुबह हम दोनों बेसहारे उधर को ही चले जिधर कुंभ मेले का स्नान करने लोग जा रहे थे। पास ही गंगा, यमुना व सरस्वती का वह संगम स्थल था जिसके दर्शनों के लिए हिंदू लालायित रहते हैं। उधर तीर्थ-यात्रियों के झुंड के झुंड हंसते-गाते खुशियां मनाते मां गंगा की स्तुति करते आगे बढ़ रहे थे। पर हम थे कि बचे-खुचे जिंदगी के बाकी दिनों की आशंकाओं के बीच घबराए-घबराए आगे बढ़ रहे थे। हमने देखा कि पंडे उधर की ओर बढ़ने वाले हर यात्री से उनके मूल स्थान व आने के स्थान का नाम पूछते थे। यदि वह उनका यजमान होता तो वे उसके साथ ही लेते थे। नहीं तो वे अपने नए यजमान की तलाश में और नए यात्रियों से पूछते थे। पर अफसोस कि हमसे एक भी पंडे ने बात नहीं की। शायद पेशे में अभ्यस्त पंडे हमारी दशा व घबराई-घबराई पलकों को देख सहज में ही भांप जाते थे कि हम उन यजमानों में से नहीं हैं जिनकी उन्हें खोज है। भला जिस यजमान की जेब नंगी हो, उसे कौन अपने यहां टिकने देगा ? तब थोड़ी ही दूर आगे चलकर हमने देखा सड़क के दोनों ओर कतारें बनाए नग्न-अर्धनग्न, लूले-लंगड़े कोढ़ी और लंबे-लंबे हाथ फैलाए 'अम्मा रोटी दो · बाबा रोटी दो' की पुकार करते तीर्थ-यात्रियों से दया की भीख मांग रहे हैं। तब यह देख मेरी आंखों के आगे घना अंधेरा छा आया था। माथा फटने-सा लगा था कि क्या अब हम भी ऐसे ही 'अम्मा रोटी दो, बाबा रोटी दो' कहते भीख के लिए हाथ ओढ़ना पड़ेगा ? यह सोचना ही था कि सिर चक्कर-सा खा गया। घबराकर मैं सड़क के किनारे बैठ गया, जिधर भिखमंगे बैठे हुए थे। पर मजबूरन मेरा वहां बैठना हो था कि मेरी पत्नी भी बैठ गई। इसके अलावा हमारे पास कोई भी और चारा नहीं था। अभी वहां हम बैठे दो पल ही हुए थे कि एक बड़ी भयावनी सूरत हमारे सामने खड़ी हो दाएं हाथ की अंगुलियों के इशारे से कुछ ऐसा संकेत करने लगी जैसे वह हमसे कुछ मांग रही हो। हमारी समझ में यह कुछ भी नहीं आया कि यह कह क्या रहा है ? तभी वह झल्ला उठा भीख

मुड़ाई कई मशीक व्यापारियों की तरह पैसा कमाने के लिए जानबूझकर करवाई नहीं गई थी बल्कि सचमुच में ही पैसा न होने के कारण हुई थी। यह भी उनकी लापरवाही व घबराहट के कारण। वर्ना उन अंग्रेजों के राज में उनकी कुड़क हो जिनके यहां वाइसराय तक पार्टी में शरीक होते थे। उनका तो इशारा भर करने की देर थी कि उनकी कुड़क कराने वालों की कुड़क उस समय हो जाती। पर ओफ'' ये बातें तो बैसे और ही हैं ?'''बातें तो कुछ और ही हैं मेरी। मेरे साथ इतना ही हुआ होता तो कोई बात थी। हद तो यह थी कि भीख मांगने के कर का देने के बाद जहां दो जून रोटी के लिए पैसे नहीं बचते थे। वहीं कड़ाके की सर्दी में खुले आसमान के नीचे सोना पड़ता था। मुझे वह दिन आज भी याद है जब मेरी पत्नी मरी थी। उस दिन एक दयालु तीर्थयात्री ने ठंड से ठिठुरती मेरी पत्नी का मरने से करीब एक घंटे पहले एक गिलास चाय पिलाई थी। मगर अफसोस कि चाय के लिए तरसती मेरी भूखी आंखों ने उसे वह चाय भी पूरी नहीं पीने दी। तब उसने इस अवस्था में बावजूद हिंदुत्व की सी रक्षा करने आधी चाय पी बाकी मुझे दे दी थी। तब मैं था कि मना करने के बदले उस चाय को भी पी गया। तब उस क्षण हमने दस-बारह दिनों बाद चाय पी थी। तभी एकाएक ही मैंने देखा था कि सारे के सारे आसपास के भिखारी एकदम एक ओर भागने लगे हैं। मैंने भी तब पत्नी को उधर चलने को कहा था। क्योंकि बीस पच्चीस दिन के अनुभव के बाद अब मुझे इतनी पहचान हो चुकी थी कि हवालात जाने के लिए जब पुलिस से डंडे पड़ते हैं तो भिखारी कैसे चलते हैं। जब कोई दाता रोटी बांटने आया होता था तो उसकी ओर वे कैसे दौड़ते थे। तब पत्नी खिसक नहीं सकी थी। तब मैं भागा था अकेले ही उधर जिधर मेरे हमसाथी भाग रहे थे। मैंने सोचा कि पत्नी ने अपने को मिली भीख में से आधी चाय मुझे दी है मैं भी अपने को मिली भीख की रोटी में से आधी दे उसके एहसान का कर्ज चुकाऊंगा। मगर अफसोस कि मेरी बारी आने में बाकी पहले ही दाता की रोटी खत्म हो चुकी थी। हालांकि भी कम नहीं। मुझसे शारीरिक रूप में ताकतवर हर भिखारी मुझे पीछे धकेलता धकेलता हो चला आ रहा था। जब मैं खाली हाथ लौटा तो तब जिंदगी में पहली बार उसके मुंह मरने भरी नजरों में देखा था कि मैं रास्ते में ही रोटी खा आया हूं। उस धोखा दे रहा हूं। जिसे मैं बरदाश्त नहीं कर पाया। हकीकत उसे बताना चाहता हूं भी लेकिन बता पाया। कारण तभी वह जहां बहुत बुरी तरह छटपटाई वहां उसका सिर एक ओर झुका हो रहा बल्कि उसके मुंह में गाढ़ा काला खून की एक धार निकली।

'अब मुझे यह समझने में जरा भी देर नहीं लगी कि मामला क्या है? अब तो वह सोच मेरे पांवों के नीचे की धरती खिसक आई कि पत्नी की

लाश का अपने को वारिस वतलाऊं कि नहीं ? वारिस अगर वतलाऊं तो किस मुंह से ? क्योंकि इलाज कराना तो अलग, दो जून रोटी तक उसके लिए जब जुटा नहीं पाया तो कफन व दाह-संस्कार तो वहुत वड़ी वात थी। और यदि लावारिस वना उसे वहीं छोड़ दूं तो छोड़ूं कैसे ? पूरे साठ वर्ष का साथ था। अव अगर हम विछुड़ रहे थे तो एक ऐसी स्थिति में जिसमें चाहता तो था चिता के पास तब तक खड़ा रहूं, जब तक उसकी आग की आखिरी चिंगारी स्वयं वुझे नहीं। पर विवशता थी कि वार-वार मुझसे यही कहे जा रही थी कि इस लाश को लावारिस वना जल्दी भागो यहां से। वर्ना यदि लोगों को हकीकत का पता चल गया तो मुसीवत आ खड़ी होगी। इसी असमंजस के वीच कोई और उपाय न सूझ, मैंने जल्दी-जल्दी में चीथड़े हुए अपने कोट से छोटा-सा कपड़े का टुकड़ा फाड़ा। उसे फेंका पत्नी की लाश के ऊपर। साथ ही डाला था लाश के ऊपर पास से उठा लकड़ी का एक छोटा-सा टुकड़ा।"—कहते-कहते उसने दोनों हाथों की हथेलियों से जहां अपना मुंह ढक-सा लिया वहीं वह सिसक-सिसक वोला, "ओफ, कहां मैं तव आत्महत्या करने रेलवे लाइन की ओर वढ़ा था। कहां मुझे उधर पूरे पचास रुपये मिले थे। यह भी एक संयोग था कि मैंने तव सोचा आत्महत्या ही यदि करनी है तो कम से कम ऐसी जगह तो करूं जहां मेरे वेटों को पता चले कि मैंने ऐसा किया है। तव मुझे याद आया था लोदी रोड, तेइस ब्लाक के अफसरी क्वार्टरों के सामने भी तो है रेलवे लाइन। जहां से मेरे उस वेटे का घर सामने दिखता है जो अभी भी धर्मशाले की खोज कर रहा है। तव पत्नी की याद आते ही मैं फिर पागलों की तरह पत्नी की लाश की ओर भागा था। तव मैंने देखा था कि पत्नी की लाश के पास जहां आसपास के भिखारी इकट्ठे हो आए हैं वहीं पुलिस के चार सिपाही उसे सरकारी मुर्दा समझ उठाने की तैयारी कर रहे हैं। तव मेरा माथा फट-सा आया था। आंखों के आगे अंधेरा छा आया। लगा जैसे कोई मुझे धिक्कार रहा है। कह रहा है तुम आदमी हो या जानवरों से भी वदतर ? इसी जानवरी जिंदगी को अभी भी जी रहा हूं। वह तो खान साहव की वदौलत जी वहल जाता है। इन फूलों की वगिया के वीच मैं अपने-आपको पूरी तरह भूल जाता हूं। आज तुम्हारे वावा शब्द ने मुझे पुरानी यादें करा दीं। नहीं तो···"



अब मैं खान साहब के बारे में और अधिक जानकारी हासिल करने पुनः नये व्यक्ति की तलाश में था। कारण, माली अब मेरे सामने से झटके के साथ उठ चुका, बागबानी के काम में कुछ ऐसे मग्न हो चुका था जैसे चोटी पर चोट खाने का कारण वह अपने कर्तव्य-निर्वाह में कमी पाता हो…और जैसे इसलिए वह अधिक कर्तव्यनिष्ठ होना चाहता हो' और या फिर जैसे मुझसे बातें करते गवाए समय की कमी को वह पूरा करना चाहता हो। तब उसके इस तरह के लौटने का देख मैं दो-चार क्षण अवाक्-सा उसे देखता ही रह गया। पर वह था कि मेरी पूरी तरह उपेक्षा-सा करता हुआ तन्मयता के साथ अब फूलों की क्यारियों को पाइप से पानी देने लग गया था। तभी एकाएक ख्याल आया—कभी इसने भी अपने मृतक आदि को ऐसे ही पाला-पोसा होगा। इतना सोचना ही था कि इस प्रश्न ने मेरे मन को भी दहला दिया कि यदि मेरे लड़के ने भी मेरे साथ ऐसा ही किया तो? इससे आगे सोच पाना भी मेरे लिए कठिन हो आया। कारण मेरा तो लड़का अकेला था। लड़कियां तो पराया धन होती हैं। चकराकर मैंने अपना मुंह उसकी ओर से फेरा ही था कि मैंने पाया—खान साहब के मकान के दरवाजे पर खड़ा एक व्यक्ति मुझे इशारों ही इशारों में बुला रहा है।

अब मैं धीरे-धीरे उसी की ओर बढ़ चला। पर अभी मैं चार आठ ही कदम चल पाया था कि पुनः माली की ओर देखा तो पाया कि आश्चर्यचकित रह गया। अब इधर खान साहब का कार ड्राइवर भी आ चुका था। शायद वह भी इधर पाइप से पौधों को पानी देने लगा था। तब इसका तो था कि उसकी तरफ नजरअंदाज करता चल दूं और कि यदि मैं खान साहब के दरबार में इमदाद की आशा ले आया हूं तो उसका उद्धार करता चलूं कि कर्तव्य से पूरी तरह मुक्त हो सकूं। क्योंकि न जाने एक ऐसी बात है जो आदमी को जरा

क्षण प्रतिक्षण और अधिक कर्जदार बनाती चली जाती है। वहीं आदमी को क्षण प्रतिक्षण घुलाती है। जिसके कारण मेरी खुशी फिर एकदम गमी में बदल गई। हालांकि खान साहब की वजह से मैं कर्जदारी से उऋण तो हो गया था मगर मैं अपने को खान साहब का भौतिक न सही, मानसिक कर्जदार-सा ही अनुभव कर रहा था। इसी कारण कर्ज व कर्जदारी के बारे में सोचते-सोचते मैं अपने साहुकारों को याद करने लगा। अभी सात-आठ साहुकारों को ही याद कर पाया था कि एक अजीबोगरीब आदमी की याद आते ही जहां मैं सहम-सा उठा, वहीं मुझे लगा कि जो भी व्यक्ति एक बार कर्जदार बन जाता है, उसका उऋण हो जाना आसान नहीं। जाने-अनजाने कोई न कोई साहुकार रह ही जाता है।

ओफ, कितना अजीब था वह दिन। जब मेरे पास पंचर लगाने भर को भी दो आने नहीं थे। तब अपनी इसी विवशता के बीच, अपने बेकारी के दिनों को कोसता मैं भरी दुपहरी कनाट प्लेस से सरोजिनी नगर को चला आ रहा था। तब जैसे ही मैं लाल बहादुर शास्त्री जी की कोठी के सामने वाले चौराहे के पास पहुंचा ही था कि सामने एक साइकिल वाला बैठा देख, प्रश्नभरी आंखों से मैं उसे देखता ही रह गया। तब मैंने सोचा था—काश, मेरे पास पेंचर लगवाने के पैसे होते। तब उसने मुझे अपने पास बुलाया था। पर जब उसे मेरी खाली जेब का पता चला, पहले तो उसने भी एक गहरी उसांस भरी। फिर उसने 'कल दे देना' कहा था। जिसके कारण मैंने राहत की सांस ली क्योंकि इस जमाने में अनजान व्यक्ति पर यकीन की बात असंभव-सी थी। आदतन उस व्यक्ति के प्रति जानकारी हासिल करने की अगाध इच्छा हो आई। तब संक्षेप में उसने स्वयं ही अपने गर्दिश के दिनों की कहानी सुनाई थी कि बंटवारे से पहले करांची में उसकी जूते की काफी बड़ी दूकान थी। और अब उसे यह काम करना पड़ रहा है। तब मैंने निश्चय किया था कि अगले दिन उसे दो आने के बदले कम से कम आठ आने दूंगा। मगर मेरा दुर्भाग्य कि अगले दिन के बाद वह मुझे उस जगह कभी बैठा मिला ही नहीं। पता नहीं उसके सामान को कमेटी उठा ले गई थी या उस पर कोई और आफत आ पड़ी थी। इतना याद आना ही था कि एकाएक मुझे लगा जैसे सुबह मोरी गेट पर पिटने वाला व्यक्ति कोई और नहीं था, बल्कि वह ही साइकिल वाला व्यक्ति था। अब तो मेरा माथा ही झनझना उठा। मैं अभी उसके पिटने से लेकर चोरों की तरह खिसकने के सारे क्षणों को याद कर ही रहा था कि मैंने सुना, "आइए भाई साहब आइए। क्या आप इस दरबार में इम्दाद की आशा लिए तो नहीं आ रहे हैं? यदि हां, तो मेहरबानी कर दो-चार मिनट इंतजार कर लीजिए।"

अब मैं इनसे पहले कि उसे अपने मकसद को पूरी तरह समझाता कि वह

मेरी बातों की उपेक्षा-सी करता नुमाज पढ़ने लगा। उसका नुमाज पढ़ना मुझे बेहद भला लगा। इतने नजदीक से मैंने अपने किसी मुसलमान भाई को नुमाज पढ़ते, पहले कभी नहीं देखा था। जी चाहता था कि मैं लगातार उसे नुमाज पढ़ते ही देखता रहूं। पर उसने नुमाज पढ़ने में अधिक समय नहीं लगाया। थोड़ी ही देर में वह पुन: मेरे सामने आ खड़ा हुआ। अब मैं संदेह में अपने आने के मकसद को बताने ही लगा था कि वह बीच में ही बोल उठा, "माफ करना साहिब, आपको थोड़ी देर अकेले रहना पड़ा। इसके लिए मैं माफी चाहता हूं। कारण, बादशाह साहब के असूल के मुताबिक जिस तरह रोटी या बाल-बच्चों के लालन-पालन वाले और काम जरूरी हैं। वहीं अपने-अपने मजहब के मुताबिक मजहबी सब कायदों को पालना भी जरूरी है जिनका संबंध आत्मा से है, शरीर से नहीं। हां, इतना वे जरूर कहते हैं कि ये दो बातें अलग-अलग हैं। इन दोनों को एक-दूसरे के साथ मिलाना किसी भी लिहाज से ठीक नहीं। आदमी या सारी इंसानियत यहीं पर गल्ती करती है जो'''खैर ये तो लंबी-चौड़ी बातें हैं। फिर, इस समय इनसे मतलब भी नहीं, आप तो बादशाह साहब के बारे में जानना चाहते हो। वैसे तो आप उनसे खुद ही बातें कर लीजिएगा, पर एक बात उनके बारे में जानने के लिए यह जरूरी है कि आप यह जानें कि यह जो यहां खजाना है वह क्या है? कारण, आजकल देश भर में काले धन की पेचीदा समस्या है। जगह-जगह आए दिन छापे पड़ रहे हैं। पर यहां आज तक न तो कोई छापा पड़ा है और न मेरे ख्याल में आगे भी कोई पड़ेगा ही। इस धरती पर मैंने तो केवल एक बार पुलिस देखी। वह भी तब जब बादशाह साहब ने खुद ही उसे बुलाया। कारण, यहां सब सच्चा पैसा है। ईमान का पैसा है, हराम का नहीं। मेरा ऐसा कहने का मतलब किसी धन्ना सेठ या साहूकार की तरह अपना बचाव पेश करना नहीं है। हो सकता है आपको मेरी इन बातों में यकीन न हो। पर मुझे तो यहां के हालात देखते-देखते कोई करीब बीस साल हो गए हैं। मुझे अच्छी तरह याद है कि पहले-पहले इधर भी कई बार शक में सरकारी आदमी जांच करने आए, पर यहां के हालात देख केवल लौटे ही नहीं, बल्कि यह सिफारिश कर गए कि यहां, इस धरती पर ये जो कुछ भी काम करते हैं, करने ही नहीं दिया जाए, बल्कि सरकार को चाहिए कि इन्हें हर किस्म की सुविधाएं प्रदान की जाएं। क्योंकि इस धरती में देश की धरती के खिलाफ कोई काम नहीं किया जाता है। एक बात और, यहां दौलत तिजोरियों या संदूकों में छिपी नहीं है बल्कि बाईं ओर के तीन कमरों में जमीन पर खुली पड़ी है। जिसे कोई भी देख सकता है। इसका लेखा-जोखा मेरे पास जो यह रजिस्टर रखा हुआ है उसमें बाकायदा बिल्कुल सही लिखा जाता है। हां सकता है आपका मन

हो कि दौलत के सही हिसाब-किताब को रखने वाला कोई और रजिस्टर हो जैसा कि आज लगभग सभी व्यापारी रखते हैं। पर यह यहां कदापि नहीं। क्योंकि जब अल्लाह सच्चा है...जब उसके दरबार में झूठ चलता नहीं है तो फिर अल्लाह के बंदे के यहां झूठ कैसे? फिर एक बात और, यहां इस धरती में पैसा जोड़ना या बचाना अच्छा नहीं समझा जाता है। यहां इस धरती का तो सबसे बड़ा काम इम्दाद देना समझा जाता है। और तो और, अगर कोई आदमी यहां से अपने-आप पैसा उठाना चाहता है तो उसे रोका नहीं जाता है बशर्ते कि वह खान साहब की पैनी निगाहों के आगे टिक सके जो कि कठिन है। फिर वह अपनी ज़रूरत के मुताबिक उठाकर ले जा सकता है। उस पर भी उससे एक अर्ज की जाती है कि वह जितना भी पैसा यहां से ले जाए उसे बाहर वाले रजिस्टर पर दर्ज करवा दे। वह भी इसलिए कि यहां का हिसाब-किताब सही व सच्चा रहे। साहब, मैंने तो आज तक यहां ऐसा कोई भी आदमी नहीं देखा, जिसने पैसा गलत लिखवाया हो। इसका कारण यह भी है कि अंदर जाने से पहले उसे अपनी जेबें खाली दिखानी होती हैं। दूसरा इसका कारण यह है कि इधर के पैसों के बारे में आम खयाल है कि अगर किसी ने भी बादशाह साहब के पैसों से या उनसे किसी भी किस्म का धोखा किया तो उसका भी भला नहीं होता है। यही कारण है कि न तो यहां झूठमूठ के ज़रूरतमंद आ पाने का साहस बटोर पाते हैं और न ऐसों की कतार खड़ी करवाने के माहिर लोग इनको परेशान करवाने की साजिश कर पाते हैं। वर्ना तो ऐसे लोग गरीबों के सच्चे हमदर्द, इस दरवाज़े को कहां बख्शते? ऐसा खयाल हो भी कैसे नहीं? सच्चे साधु-संन्यासियों व फकीरों को कोई धोखा कैसे दे सकता है? आप सोचेंगे कि अपने-आप पैसा उठाने की इच्छा रखने वाले की अंदर जाने से पहले जब जेब खाली करवाई जाती है तो झूठ बोलने पर आदमी को अपने पकड़े जाने का खतरा होता है या वह डर के मारे ऐसा करेगा नहीं। पर यह बात नहीं है। जेब खाली इसलिए करवाई जाती है कि कहीं किसी आदमी ने अपने पाप की कमाई का एक पैसा भी अंदर छोड दिया तो बस...फिर पैसा एक ऐसी बला है जो बड़े से बड़े आदमी को भी डिगा सकता है। एक बात और, ऐसा कर देने पर हिसाब-किताब भी तो गलत होने का खतरा रहता है। साहब एक बात कहूं तो बुरा मत मानना। मैंने यह अपनी आंखों से देखा है कि देश के बड़े-बड़े पैसे वाले इनकी शोहरत को सुन अपने दानखाते में से कुछ न कुछ यहां देना चाहते हैं, पर ये किसी भी हालत में उनके पैसों को नहीं स्वीकारते हैं। इसका मतलब यह कदापि नहीं कि औरों की वह कमाई, ईमान की कमाई नहीं है, पर यह बादशाह साहब का उसूल है। कहते हैं जिस दिन उनके खानदान के पास पैसा नहीं रहेगा, तब ही

शायद···अब आप सोचेंगे कि आखिर इतना पैसा इनके खानदान के पास कहां से आता है ? यह हमारे लिए भी पहेली ही है। मुझे तो खजांची होने के नाते सिर्फ पैसा खतम हो जाने की उम्मीद देखते ही बादशाह साहब की अम्माजान को बताना भर होता है। बस फिर देखो उसके एक-दो दिन बाद ही यहां फिर पैसा ही पैसा आ जाता है। रब्ब जाने यह क्या कमाल है···"

अब वह मेरी प्रतिक्रिया-सी जानने अपलक मुझे देख रहा था। और मैं था कि और अधिक जानकारी हासिल करने की उत्सुकता में कभी उसे ही देखता था कभी अंदर महल की ओर। क्योंकि यहां के प्रत्येक व्यक्ति से सुनी विचित्रता की बातों के क्रम से ये बातें और भी अधिक जोरदार थीं। यही कारण था कि मैं उसकी बातें सुन तो जरूर गौर से रहा था पर कुछ भी प्रश्न उठाना अपने वश से बाहर समझ रहा था। तभी वह स्वयं ही पुनः बोलने लगा, "हो सकता है आपका यहां आने का कोई खास मकसद हो। पर हमें उसकी जरा भी फिकर नहीं। कारण, यहां सब काम सच्चा है। अल्लाह सच्चा तो अल्लाह के बंदे का काम झूठा कैसे ? कुछ लोगों ने पहले एक बार अफवाह उड़ाई कि ये हीरे-जवाहरात की तस्करी का काम करते हैं। पर आप यकीन मानिए, ये देश की किसी भी कीमती चीज का देश से बाहर जाना बरदाश्त नहीं करते। बल्कि इधर-उधर से कीमती चीजों को यहां लाना पसंद करते हैं। वैसे इनकी जरूरतें ही ज्यादा नहीं हैं। इनकी बेगम भी बड़ी ही सादगी से रहती हैं। पर दुनिया में हर तरह के लोग होते हैं। एक बार कुछ हिंदू भाइयों ने इनके बारे में यह अफवाह फैला दी कि ये देश के लिए जासूसी करते हैं। उसी देश से इन्हें यह पैसा मिलता है। पर जब तुम इनके खयालों के बारे में जानोगे तो नाराज़ होगे। यही कारण है कि एक-दो बार इन पर शक किया गया। कुछ दिन छानबीन भी जारी रही। पर हद है भाई इसी दिशा में मैं तुम्हें एक बात सुनाता हूं—एक बार यहां विदेश के लिए जासूसी करने वाला एक आदमी किसी के पास रहने लगा। क्योंकि छानबीन के बाद सरकार ने पाया था कि खान साहब पर तो क्या यहां रहने वाले किसी एक भी आदमी पर शक नहीं किया जा सकता है। उसने इसी कारण इस स्थान को चुना। मगर वह बादशाह साहब के साथ पुलिस के यहां के कई आदमियों की नजरों से बच कैसे सकता था जिन्हें अंदर से साहब ने कई अजीबोगरीब तरह के काम सौंप रखे हैं। यही कारण था कि सरकार की जिंदगी में पहली बार इधर पुलिस का दल यहां तक आ पहुंचा और उठे। तब जनाब बादशाह साहब ने स्वयं उस व्यक्ति को पकड़कर पुलिस के सुपुर्द किया था। मैंने जिंदगी में पहली बार उन्हें इतना गुस्से में देखा। तब जासूस कह रहा था कि साहब मुझे बख्श दीजिए। मैं अब यह काम नहीं करूंगा।

मैं यहां से स्वयं चला जाऊंगा। पर ये थे कि उसे बुरी तरह फटकार रहे थे कि किसी भी किस्म का और अपराध मेरी नजरों में क्षम्य है, पर मेरे देश की धरती मां के खिलाफ वाला कोई भी काम मेरी नजरों में क्षम्य नहीं। इतना ही नहीं साहब, तब जब वह व्यक्ति रोने व गिड़गिड़ाने लगा तो उनका खून ही खौल-सा आया था'''और उन्होंने कहा था—अपने मजहबी दूसरे देश के बारे में हमदर्दी रखना अलग बात है पर ऐसे देशों के साथ हमदर्दी के माने यह कदापि नहीं कि उस देश के नाम पर अपने देश के खिलाफ काम किया जाए या ऐसा करने वालों की मदद की जाए। क्योंकि जो व्यक्ति अपने देश के खिलाफ ऐसे काम कर सकता है, वह हैवानियत की किसी भी सीमा तक जा सकता है। ऐसे व्यक्ति से न तो कुछ उम्मीद ही की जा सकती है और न वह जिंदा रहने देने लायक आदमी ही है। साहब तब उन्होंने उस आदमी को पकड़ाकर ही चैन नहीं लिया, बल्कि जिसके पास वह टिका था उसे भी इधर से निकाल दिया। तब वह अपने अनजानेपन को जाहिर कर रहा था। माफी मांग रहा था। पर वे थे कि माने ही नहीं। कहने लगे कि मैं तुम्हें यहां से इसलिए नहीं निकाल रहा हूं कि तुम ऐसे आदमी हो। बल्कि इसलिए कि इससे यहां रहने वाले दूसरे सबक लें। और फिर, यहां ऐसा कभी भी न हो। वैसे भी साहब आप देख रहे हैं न सामने, बादशाह साहब ने अपने महल के दरवाज़े पर देश की सभी जबानों में लिखवाया हुआ है कि 'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'। आप हिंदू-से लगते हैं इसीलिए मैं आपको आपकी ही जबान में बताता हूं। क्योंकि उनका यह भी असूल है कि जहां तक हो सके, आदमी को दूसरे की उस जबान में बातें करनी चाहिए जो दूसरे की मातृभाषा हो।

"खैर मेरे खयाल से, आपको इन बातों से कोई मतलब नहीं। आपको हो भी तो, मुझे नहीं। मेरा काम तो सिर्फ बादशाह साहब के खजाने का हिसाब-किताब रखना भर है। मुझे इस बात से भी कोई मतलब नहीं कि यहां यह जो पैसा आता है वह कहां से आता है? यह उनका व उनकी अम्माजान का काम है। मेरा काम हिसाब-किताब रखने के साथ-साथ उतने समय तक खजाने की चौकीदारी करना भी है, जितने समय तक मैं यहां रहता हूं। उसके बाद ये ही सब काम दूसरा खजांची करेगा। इसीलिए मैं आपको बादशाह साहब के खजाने की चंद बातें बताता हूं। सामने दाईं ओर किताबों का खजाना है। उसके बारे में या तो यहां के चार पंडित जानते हैं या फिर खुद बादशाह साहब। वैसे यहां बैठे-बैठे जब मुझे भी बोरियत होती है तब किताबें ला-ला मैं भी पढ़ता हूं। मैं किताबों वाले इस खजाने के बारे में ज्यादा नहीं जानता। केवल इतना भर जानता हूं कि इधर दुनिया भर की मजहबी किताबें हैं, किस्से

कहानियाँ भी। एक बार यहाँ की एक किताब में मैंने पढ़ा कि हिंदुओं का दौलत का एक देवता होता है जिसका नाम कुबेर होता है। उसके हाथ में नेवले की शक्ल की एक थैली होती है, उसी में वह दौलत रखता है। देवताओं को जब कभी दौलत की जरूरत होती है, उस समय वह उस जरूरत भर देवता को पैसे निकालकर दे देता है। मगर उसकी खासियत है कि वह थैली को हमेशा मूठ पकड़े रहता है। मेरा खयाल है उसी से दुनिया भर के मजहब वालों ने यह सीखा कि दौलत को थैले या तिजोरियों में छिपाकर रखना चाहिए। पर साहब, बादशाह साहब का खजाना तिजोरी में छिपाकर नहीं रखा जाता है। आप सामने वाले कमरे के दाईं ओर के तीन कमरों में जाकर जमीन पर खुला इनका खजाना देख सकते हैं। इसका अर्थ यह कतई नहीं कि बादशाह साहब हिंदू भाइयों के हर अच्छे काम का उल्टा ही काम करना चाहते हैं और न वे किसी तरह से अपने को कोई नया मजहबी पीर-पैगम्बर ही साबित करना चाहते हैं। वे तो बस, अपने को आदमी मानते हैं। वे तो अक्सर कहा करते हैं—अगर दूसरों की तादाद बढ़ाने को दूसरों का धर्म बदलने लगूँ तो फिर होगी मजहबी लोगों में व मुझ में फर्क ही क्या रहा? सही मानें में आदमियत तो यह है कि आदमी में आदमी के प्रति ज्यादा से ज्यादा हमदर्दी पैदा की जाए। फिर दौलत के बारे में उनका खयाल ही कुछ और है। उनका कहना है कि जो लोग दुनियावी दौलत को दौलत समझते हैं वे भूल करते हैं। असली दौलत तो 'अंदर' की कमाई की दौलत है। दुनियावी दौलत जिसे हम देखते हैं यह सिर्फ एक या दो-चार की दौलत नहीं है यह तो इस धरती में रहने वाले सभी की मिली-जुली दौलत है। धरती की दौलत को आदमी जिंदगी भर अपनी समझ, छाती पर चिपकाए रहता है। क्या उसे वह अपने साथ ले जा सकता है? इसलिए जब आदमी उसे अपने साथ नहीं ले जा सकता है तो उसे छिपाना कहाँ तक उचित है। इसीलिए अच्छा यह है कि उस धरती की दौलत को धरती पर खुला छोड़ दो। धरती उसे खुला देख खुश होगी। बहुत खुश होगी और अधिक हीरे जवाहरात आदि उगलेगी। साहब आपने बातों ही बातों में मुझे वह दिन याद करा दिया जब बादशाह साहब के लिए उस पैसे को लौटाने मैं इधर क्या आया मेरी तो जिंदगी ही बन गई। साहब पैसे तो तब मैं एक-एक पैसे के लिए बदनियती किया करता था। [illegible] अल्लाह ने अच्छी अक्ल दी या यह [illegible] बादशाह साहब से मिलना [illegible] होगा जो मैं पूरा भया था [illegible] बैठा। तब तक और [illegible] सामान [illegible] टी० बी० अस्पताल में दाखिल था। [illegible] कारण दुकान पर न जा सकने की वजह से [illegible]

लिया था। तब एक ओर इतने पैसे पा मेरे मन में रह-रहकर ये विचार उठ रहे थे कि वैसे तो इस बीमारी से लड़ने की ताकत दिलाने पत्नी को जरूरी फल आदि तो मैं खिला नहीं सकता था। मगर भगवान ने ही मुझे ये पैसे उसके इलाज के लिए दिलाए हैं, क्योंकि डाक्टरों के कहने के मुताबिक पूरे दो साल इस बीमारी के इलाज में लगते हैं। उस पर भी दवाओं से ज्यादा फल आदि इसमें चाहिए। पर जाने क्या बात थी कि जब भी इन पैसों को अपने पास रखने की सोचता, तभी ख्याल आता—पता नहीं जिस आदमी के ये पैसे छूटे हों उसका भी कोई आदमी मेहरौली अस्पताल में दाखिल न हो। कहीं उसने उसके इलाज के लिए पठानी ब्याज पर कर्ज ले-लूकर ये पैसे जमा न किए हों। यदि ऐसा ही कुछ हुआ हो तो कहीं अल्लाह मुझ पर और खफा न हो जाए। अपनी करनी के कारण पहले ही इतना कुछ भोग रहा हूं फिर तो जाने क्या कुछ न हो जाए···। तब घबराकर मैंने सामने कुतुब की लाट व उसके सामने चन्द्रगुप्त की लाट की ओर देखा था। हालांकि पत्नी की बीमारी के कारण मैं दस-पंद्रह दिन से इन्हें रोज ही देखा करता था, पर जाने क्या बात थी—गुप्तकालीन स्तम्भ को देख उस बार मेरे मन में नए ही विचार उठ खड़े हुए कि क्या जिस भारत के स्वर्णयुग की कहानी यह लोहे का स्तम्भ सुना रहा है···क्या उसी भारत में लोगों का चरित्र अब इतना गिर गया है कि दूसरों के गिरे पैसों को अपना समझ बैठे···। तब मैंने निश्चय किया था कि चाहे कुछ भी हो जाए मैं इन पैसों को अभी इसी समय लौटाऊंगा। इन्हीं विचारों के कारण मैं बस में बैठ भी गया। पर जाने क्या बात थी कि मैं पैसे लौटाने, जितना ही आगे बढ़ रहा था, उतना ही अधिक मैं जहां बेचैनी अनुभव करने लगा, वहीं मुझे ऐसा तक लगने लगा जैसे मेरी बीमार पत्नी व मेरे भूखे-प्यासे तीनों बच्चे मुझ से कुछ ऐसा कहने लगे हैं कि पापा तुम क्या कर रहे हो। यहां तो आज दिन पर दिन बेईमान लोग दिन दूने रात चौगुने फल-फूल रहे हैं। तब तुम यह क्या कर रहे हो। तुमने तो बेईमानी तक नहीं की। इन पैसों को मत लौटाओ। इनसे मां का इलाज भी हो जाएगा, हमारा भी कुछ दिन पेट भर जाएगा। पर अल्लाह की मेहर थी कि मैं यहां पहुंच ही गया। खान साहब के सामने क्या खड़ा हुआ कि उनके एक ही प्रश्न को सुन रो पड़ा। अपनी सारी कहानी उन्हें सुना गया। तब उन्होंने मुझे गले लगाया था। बस, वही क्षण मेरी जिंदगी का मोड़ साबित हुआ था। खैर, छोड़िए इन बातों को। पर क्या करूं, मन उनकी तारीफ किए बिना मानता ही नहीं। उन्होंने तो वैसे उसी क्षण मुझे यह काम सौंप दिया। पर पत्नी की बीमारी के कारण चार महीने बाद मैंने जब यह नया काम संभाला तो उनके महल के इन कमरों में ऐसे ही पड़े पैसे देखे तो मैं

भौंचक्का ही रह गया। मैंने दुनिया में अमीर तो नहीं देखे, पर मेरा ख्याल है शायद ही ऐसा कोई होगा जो दौलत को ऐसे रखेगा। तब इन हालातों को देख मैं बहुत परेशान हुआ कि मेरी ईमानदारी को देख इन्होंने मुझे यह काम तो सौंपा, पर यह सारा काम ऐसा है कि जिसमें कभी भी आदमी बेईमान बन सकता है। क्योंकि वह चाहे कितना ही ईमानदार हो अगर···यही कारण था कि मैंने एक दिन इस पर एतराज किया तो इन्होंने मुझे समझाया कि यह जो धन तुम देख रहे हो जानते हो इसे किसने कमाया है? जरा ठंडे दिमाग से सोचो। क्या तुम्हारे ही जैसे दूसरे हाथों ने इसे कमाया है या नहीं? जानते हो यह धन, उन हाथों की सारी जरूरतों को पूरा करने के बाद का बचा हुआ ऐसा पराया धन है जिसे कोई भी गलत आदमी लेने की हिम्मत नहीं कर सकता है। हां, इसमें से कुछ धन लेने का उनको पूरा हक है जिनके पास नहीं है। अब तुम जरा गौर करके, तजुर्बा करके बताना कि जब आदमी की जरूरतें पूरी हो जाएं तो वह लालच करता है या नहीं? एक बात और, मैंने तुम्हें इसके हिसाब-किताब का काम जो सौंपा है जानते हो क्यों? क्योंकि मुझे विश्वास है कि जब तुम इतनी परेशानियों के बावजूद पैसा लौटा सकते हो तो क्या तुम अब लालच कर सकते हो?···साहब मैं तब समझ नहीं पाया था। पर अब समझ रहा हूं। ताज्जुब कि इधर से न तो कोई गल्ला पैसा उठाकर ले जाता है और न किसी की भी ऐसी नियत ही होती है···मेरी ऐसी नियत हो भी कैसे? जब भी ऐसा ख्याल आता है तभी मन में विचार उठता है जब वे खुद इतनी सादगी से रहते हैं, हमेशा दूसरों की भलाई ही किया करते हैं, तो हम ऐसी हिमाकत कैसे करें? और तो और, वे हलुवा-पूरी आदि तक नहीं खाते हैं। कहते हैं जब तक दुनिया में एक भी ऐसा अल्लाह का बंदा रहेगा जिसे भरपेट रोटी नसीब न हो तो वे तब तक हलुवा-पूरी आदि नहीं खाएंगे। साहब आप यकीन मानिए हलवा-पूरी खाने की मेरी खुद की इच्छा नहीं होती है। एक मेरी ही क्या, यहां रहने वाले हर आदमी की यही हालत है। अलबत्ता मेहमान नवाजी के लिए होता सबके घर पर जरूर। खान साहब कहते हैं मेहमान नवाजी दुनिया में सबसे बड़ा धर्म है। अब तक तो मैंने केवल यह सुना था कि दुनिया में दूसरों को उपदेश देने से पहले जो आदमी अपने जीवन में उसे पहले लागू करते हैं उनकी बात में अजब असर व जादू होता है। वही ऐसे ही लोगों की बदौलत यह सारी दुनिया या इन्सानियत टिकी हुई है। पर ऐसे आदमी करोड़ों में बिरले ही होते हैं। यदा-कदा ही हुआ करते हैं। अब यह अपनी आंखों से ही देख लिया है। साहब, जरा सामने उधर की ओर देखिए तो जिधर बादशाह साहब नई इमारत बनवा रहे हैं। देखा न···

"क्यों साहब, देखा अपने ! अंधेरा होने को है मगर वहां काम कर रहे मजदूर अभी भी किस लगन से काम कर रहे हैं। कैसी फुर्ती है उनमें। आप यह देख ताज्जुब करेंगे। क्योंकि आपको और जगह इस तरह काम करते मजदूर दिखाई ही नहीं देंगे। कारण यह कि, यहां काम करता हर मजदूर इस बात को जानता है कि वह जो इमारत बना रहा है वह किसी दूसरे के लिए नहीं, बल्कि अपने या अपने जैसों के लिए बना रहा है। अब भला बताइए, जब हर आदमी यह एहसास करने लगे तो वर्षों का काम महीनों में ही खतम न हो तो कैसे नहीं हो ? साहब, पहले तो हमें इतनी अकल नहीं थी कि इन बारीकियों को समझ सकें। पर अब खान साहब के चार पंडितों की बदौलत हम सब समझ गए हैं कि दुनियां का कोई भी मजदूर, कभी भी बेईमान नहीं बनना चाहता है···और कभी भी वह कामचोरी नहीं करना चाहता है। कामचोरी व बेईमानी तो उसे वे लोग सिखाते हैं जो हलुवा-पूरी-पिस्ता-बादाम खाते तो मजदूरों की ही बदौलत हैं पर उनके प्रति एहसानमंद कभी भी नहीं होना चाहते हैं। यही कारण है कि एक ओर अभावों में जीती इंसानियत के फेफड़ों को फुलाती गरीबी, सस्ता होने के कारण जहां एक ओर उनमें पानी ही भरती-भरती चली जाती है वहीं उसे प्लूरसी व ऐसी और बीमारियों के कारण तड़फाती-तड़फाती ही चली जाती है। वही दूसरी ओर, अमीरी की तोंद दिन दूनी रात चौगुनी फलती-फूलती ही चली जाती है। जो कि दुनिया-भर के सभी झगड़ों की जड़ है। खान साहब के चार पंडित कहते हैं कि जब तक दुनिया में यह ही क्रम चलता रहेगा, तब तक जहां आदमी व आदमी आपस में लड़ते रहेंगे, वहीं दुनिया के देश भी लड़ते ही रहेंगे। हालांकि सचाई यह है कि आदमी व चींटी की जिंदगी में जरा भी अंतर नहीं। यदि ऐसा नहीं होता तो आदमी अपनी कमाई अपनी छाती में रखकर ले तो जाता। यही वजह है आज जब मैं खान साहब के चार पंडितों की बातों पर विचार करता हूं तो मुझे लगता है मेरी पत्नी के फेफड़ों में भरा पानी जो सुइयों की मदद से पीठ से निकाला गया। वह मुझे, मेरी पत्नी व मेरे बच्चों को सुखाने वाली मेरी अपनी गरीबी के सिसकते कराहते आंसुओं का एकत्रित रूप था। कारण मैंने उस दूकान को उस क्षण तक अपना समझा, जब तक पत्नी की बीमारी की स्थिति में नौकरी से मुझे निकाला नहीं गया। तब मुझे इन बातों की जरा भी समझ नहीं थी कि मेरे मालिक ने आठ वर्षों में जो दस कोठियां बनाई हैं वे कैसे व कहां से बनाई हैं ? मैं तो इसे अपने भाग्यों के अंतर की बात समझता था। पर अब मैं एक-एक बात को समझता हूं कि यह भाग्यवादी जहर हमें धार्मिक गुड़ के साथ मिलाकर क्यों व किसलिए खिलाया जाता है··· तथा इस क्रम की शुरुआत कब व क्यों शुरू हुई है ? इतना ही नहीं अब मुझे

इस बात का भी पता लग चुका है कि लू लगने से जो आदमी मरता है उसका लू लगने से पहले हमेशा पेट खाली रहा करता है। कारण भरे पेट व्यक्ति को लू जहां कभी-कभार ही लगती है वहीं खाली पेट वाला व्यक्ति तो गर्म हवा का पहला झोंका भी बरदाश्त नहीं कर सकता है। ऐसा इसलिए कि खान साहब के चार पड़ितों की बदौलत पाने व अन्न की कमी में क्षण प्रति क्षण घुलने के अंतर को अच्छी तरह समझ चुका हूं। खैर छोड़िए इन बातों को। ज़रा बताइए तो आप इम्दाद की आशा से यहां आए हैं या…"



अब खान साहब का भजाचो मुझे उनकी अम्माजान के पास छोड़ गया था। उसकी नज़रों में उनके बारे में जानकारी हासिल करने के लिए यह बहुत ज़रूरी था। मुझे अपने कमरे में बिठा वे किसी आवश्यक काम से दूसरे कमरे में चली गई थी। कमरे में अब अकेले मैं था। कमरे में दो चटाइयां व एक बड़े से लकड़ी के बक्स के अलावा और कुछ भी नहीं था। बक्से के ऊपर तरतीब से गीता, कुरान शरीफ, बाइबिल व ग्रंथ साहब रखे हुए थे और उनके पीछे थीं—आठ-दस मोटी-मोटी किताबें। एक चटाई पर मैं बैठा था। दूसरी पर औंधा लेटा तुलसी का मानस था। यह सब देख तो यह शक संदेह हो आता था कि यह किसी हिंदू का कमरा तो नहीं। मैंने अभी इस विसंगति के बारे में सोचना भी शुरू नहीं किया था कि उनकी अम्माजान इस पुर्ती से आकर मेरे सामने आ बैठीं जैसे मुझे अकेले कमरे में छोड़कर जाना उन्हें बेहद अखरा हो। इतना ही नहीं, मेरे पास बैठने के अगले ही क्षण उन्होंने पूछना शुरू कर दिया कि मैं कौन हूं तथा यहां किस मकसद से आया हूं? मुझे उनके स्वर में स्वयं अपनी मां से भी अधिक प्यार का आभास-सा मिला। यही कारण था कि मेरी आंखों में जहां आंसू उमड़ से आए वहीं मैं खान साहब से अपने मिलने से लेकर अब तक की सारी बातें तो अलग, संक्षेप में अपने

जीवन की अनेक वारीकियां तक वता गया।

"वेटा तुम्हारे मुंह से सक्सेना का नाम सुन व तुम्हारी वातें सुन मुझे लगता है कि तुम मेरे वेटे अशरफ के वारे में वहुत-कुछ जानते हो और ज़्यादा जानना चाहते हो।" मेरी वात खतम होते ही वे कुछ इस उत्सुकता से वोलीं जैसे वे केवल इस प्रतीक्षा में हों कि कव मैं अपनी वात खतम करूं व कव मुझे धैर्य वंधाने की वातें वे सुनाएं, "वेटा सुख-दुःख ही तो जिन्दगी का दूसरा मिला-जुला नाम है। इससे ज़रा भी घवराना नहीं चाहिए। क्या वताऊं वेटा, तुमने तो मुझे अपने पुराने वे दिन याद करा दिए जव हमारी भी माली हालत अच्छी नहीं थी। मुझे आज भी वह दिन अच्छी तरह याद है जव अचानक ही अशरफ के चाचा व चाची कावुल से आए थे। तव मेरे घर आटा तक नहीं था। वैसे तो गृहस्थी में ऐसा कई लोगों के साथ होता ही है, पर उस साल तो हमारे साथ कुछ ऐसा हुआ कि वैसा मैंने कभी देखा ही नहीं। एक ओर तो, मेरी दो वड़ी दीदियां यानि कि अशरफ की वड़ी माएं गुज़रीं तो दूसरी ओर, अशरफ के अव्वाजान लगभग आठ महीनों तक वीमार रहे। उसी साल हमने पैसा जोड़कर यह मकान व मुहल्ला खरीदा था। तव हम उस समय दाने-दाने तक को मोहताज-से हो आए थे। अपने किराएदारों के पास आटे के लिए जाना मुझे अच्छा नहीं लगा। तव मैं काफी हिम्मत कर सक्सेना के घर गई थी आटा मांगने। तव उसकी दीदी ने ही रखी थी मेरी लाज। लोग अपने वुरे दिनों को भूल जाते हैं, पर मैं नहीं भूल सकती। अल्लाह या ईश्वर की मेहर से उसके अगले दिन मेरे इनको एक वनिए की दुकान में मुनीम-गिरी का काम मिल गया। हालांकि उससे पहले कभी नौकरी नहीं की थी। ये पैसों को व्याज पर लगाने व मेवों को वेचने का ही कारोवार किया करते थे। उसी दिन से हमारा भाग वदलना शुरू हुआ। यह वात तव की है जव अशरफ हुआ भी नहीं था। अशरफ तो उसके वाद हुआ। तव एक हमारी ही ऐसी हालत नहीं थी, वल्कि अशरफ के सातों चाचाओं की ऐसी ही हालत थी। यह वात दूसरी है कि औरों की हालत हमसे कुछ अच्छी थी। वैसे तो हमारी भी हालत पहले वुरी नहीं थी। दो रोटी का गुजारा चल ही रहा था। हां, वनिए की दुकान पर मुनीमगिरी का काम लगने के सात-आठ ही महीने वाद हमारे पास एकाएक वहुत सारा पैसा आ गया जिसे हमने खूव व्याज पर लगाया, पर वेटा हमारे पास पैसा तो भले ही आया, मगर औलाद न होने का दुःख एक ऐसा दुःख था जो हमें अव और ज़्यादा अखरने लगा।

"वेटा, आदमी औलाद पाने के लिए क्या नहीं करता। मैं अच्छी तरह से जानती हूं, चाहे आदमी किसी भी मज़हव को मानने वाला हो, पर औलाद एक ऐसी चीज है जो आदमी को अपने मज़हव से भी हटकर वह सभी कुछ

करने का मजबूर कर देती है जिससे औलाद के मिलने की उम्मीद हो। आज तुमने मुझे वे सारे के सारे दिन याद करा दिए जब मैं औलाद के लिए सारे दिन, सारी रात रोती-रोती रहती थी। दूसरों के बच्चों को देख, मन में केवल यही सोचती थी कि ये कैसे भाग लिए आए होते होंगे जो ''। इतना ही नहीं दूसरी औरतों को गोद में बच्चा लिए देखती तो मेरे मन में जहां उसके बारे में ईर्ष्या होती थी, वहीं मेरा मन यह करता था कि कितना अच्छा होता अगर मैं भी ऐसे ही किसी बच्चे को गोद में लिए होती'' । बेटा क्या बताऊं, तब मैंने अपने मजहब के मुताबिक इल्म अल यकीन के हिसाब से जहां कई दिन अपने घर कुरान शरीफ की वे आयतें पढ़वाईं जिनके बारे में कहा जाता था कि अल्लाह की मेहर से यकीनन बच्चा होता है। इतना ही नहीं, जादू-टोना व तावीज तक पहने। पर'''। इतना ही नहीं, मैं हर साल खैरियात में गरीबों को रोटी भी खिलाती रही। मगर अल्लाह की मेहर नहीं हुई। होती भी कहां से, मौल्वी जी हमेशा ही अबजद के नजूमे के हिसाब से यह कहते थे कि, हम दोनों की तकदीर में औलाद है ही नहीं। ऐसा ख्याल एक मौल्वी जी का ही नहीं, लगभग सभी उन मौल्वियों का था जिन्हें हमने अपने अबजद के नजूमे दिखाए थे। हां, एक मौल्वी ने यह जरूर कहा था कि वैसे तो तुम्हारी तकदीर में औलाद है ही नहीं। हां, अगर कोई मुर्शिद या पीर ही दुआ दे दे, तो बात दूसरी है। तभी तुम्हारी ऐन अल यकीन पूरी हो सकती है। पर सवाल था कि ऐसा पीर मिले कहां ? इसके लिए मैं सिंध, लाहौर, अजमेर, जयपुर, हैदराबाद वगैरह कई जगह गई। कई जगह कई मजारों पर चालीस-चालीस दिन दुआ मांगने, मैं सुबह के अंधेरे में जाती रही। दो बार तो मैंने कई गरीबों तक को एकसाथ चालीस दिन खैरियात की रोटियां भी खिलाईं। मगर'''

"बेटा, अब अल्लाह की दुआ से मुझे औलाद मिल गई है। मगर अब हमेशा ही अल्लाह या ईश्वर से यही प्रार्थना करती हूं कि दुनिया में ऐसा कोई भी मां-बाप न रहे जिनकी औलाद न हो। अल्लाह सभी को औलाद की दुआ दो। पर मैं'''मैं उन दिनों को कभी नहीं भूल सकती, जब मैंने औलाद के लालच में वह सभी-कुछ किया जो लोग बताते थे। अब क्या बताऊं बेटा, मैं एक बार उस मदर के पास भी गई, जिसके बारे में लोगों के मुंह से सुना था कि उसके हाथ फेरने भर से ही जहां कई बीमारियां दूर हो जाती हैं, वहीं औलाद की मुराद भी पूरी हो जाती है। मैं ये बातें इसलिए नहीं कह रही कि किसी का दिल दुखाना चाहती हूं। मैं तो सिर्फ यह बता रही हूं कि औलाद की मुराद आदमी को क्या नहीं करवाती है। तब जिंदगी में मैंने भी पहली बार प्रभु ईशू की प्रेयर की थी। हां, मदर ने जो मुझसे या हमसे ईसाई बनने

की बात की, वह मैं दिल से नहीं मान सकी। मानती भी कैसे, मैंने तो अपने मज़हब के कायदों से सुना था कि असली पहुंचा हुआ फकीर वह होता है जो मांगता तो कुछ भी नहीं है सिर्फ देता ही देता है। हो सकता है मेरी मुराद पूरी नहीं होने का यह ही कारण हो। पर यह हकीकत है कि मेरी औलाद की मुराद ईशू की प्रेयर से पूरी नहीं हुई। तब मुझसे किसी ने कहा कि जामा मस्जिद या निजामुद्दीन के इलाके में मस्त कलन्दर फकीर कभी-कभी दिखाई देता है। वह अगर दुआ दे दे तो शायद...। पर सवाल यह था कि वह मिले कहां? तब मैं कई बार रात-आधीरात अपने उनके साथ इधर-उधर भटकती फिरती थी। उन दिनों तो मेरी यह हालत हो आई थी कि अगर कोई बूढ़ा भी मिलता तो मैं उसे ही मस्त फकीर समझ बैठती थी। ऐसे में दो-तीन बार तो मेरे साथ बड़ा बुरा वाकियात होते-होते बचा। दुनिया में कौन-सा ऐसा मज़हब है, जिसमें ऐसी मजबूरी का नाजायज फायदा लोग उठाना नहीं चाहते है। मगर कहते हैं कि अल्लाह या ईश्वर जिसके साथ हो, उसका कोई भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता है। सो इसी कारण मैं तीनों बार बच गई। कारण, मेरी चीख-पुकार सुन आसपास से लोग या ये आ जाते थे। पर इससे क्या, मेरी दिन पर दिन बढ़ती उम्र मुझे अब खाने को आती-सी दिखती लगने लगी। जब रात सोते-सोते मुझे सपने आते कि जैसे मेरे कमरे में कोई घुटनों के बल चल रहा है। कोई पास ही आ रो रहा है। पागलों की तरह उठ खड़ी होती। हकीकत को जान फूट-फूटकर रोने लगती और फिर रात-आधीरात मस्त कलन्दर फकीर की खोज में निकल पड़ती। हां, तब धीरे-धीरे मुझे यह मालूम हो आया था कि मस्त कलन्दर फकीर तो इतने ऊंचे दर्जे का फकीर होता है कि उससे पूछने या बात करने की जरूरत नहीं होती है। वह तो दूर से ही जान जाता है कि फलां आदमी या फलां औरत किस मकसद से आ रही है। यही कारण था कि अब रात चलती तो मैं जरूर थी मगर अब मैं किसी से बात नहीं करती थी। और न पूछती थी।

"बेटा इन बातों को तुम भले ही मखौल समझो, पर ये बातें हकीकत हैं। दुनिया में जिसके ऊपर बीती न हो वह इन बातों को मखौल ही समझेगा, मगर ये सब बातें मेरी जिंदगी की हकीकत हैं। बल्कि हकीकत तो यह भी है कि औलाद की इच्छा के कारण एक बार पगली तक हो आई थी। वैसे तो हमारे मुसलमानों में, आदमी ऐसे में और शादी कर लेता है। यह ही एक बात थी कि मैं अशरफ के अब्बाजान की चौथी बीबी थी। मगर चारों में से किसी से भी औलाद नहीं हुई। यह भी एक अजीब ही वाकिया है कि मेरे बाद उन्होंने फिर शादी नहीं की। कारण, तब तक वे अपने अबजद के नजूमे जान चुके थे। फिर उन्हें कुछ ऐसा यकीन हो आया था कि अगर औलाद

देखने को उनकी नसीब में होगी तो सिर्फ मेरे ही कारण। वैसे बात भी कुछ ऐसी ही थी, मैंने उनके बताए मुताबिक वे सभी काम किए, जिनसे औलाद देखने की उम्मीद वे किया करते थे। आखीर में जब चालीस के करीब हमारी उम्र हो आई तो उन्होंने भी उम्मीद छोड़ दी। मगर मैंने उम्मीद फिर भी नहीं छोड़ी। पर इससे भी क्या होना। तब तभी आया न भूलने वाला वह बरस, जिसे मैं जिंदगी के आखिरी समय तक नहीं भूल सकती। तब पूरे आठ महीने बीमार रहे थे वे। तब मेरी बड़ी दीदी भी गुजरी थी। तभी मैं गई थी सक्सेना की दादी से आटा मांगने। तब मैंने देखा था एक सन्यासी को, उनके दरवाजे से लौटते हुए। मुझे क्या मालूम था कि वह कोई मामूली फकीर नहीं है। तब सक्सेना की दादी ने मुझे बताया कि अगर मैं थोड़ी देर पहले आ जाती तो शायद वह सन्यासी मुझे दुआ दे देता। इतना ही नहीं, तब उन्होंने बताया था कि वह तो ऐसा पहुंचा हुआ संन्यासी है कि अपनी जटाओं से गंगा का पानी निकाल सकता है। यह बताते हुए उन्होंने बताया था कि अभी उसने अपनी जटाओं में से पानी निकालकर हमें दिखाया था। तब घर आटा रख मैं निकल पड़ी थी उसे खोजने। मगर मुझे वह कहां मिलता। उसी को खोजने मैं आसपास के मंदिरों में भी गई। पर क्या बताऊं, जैसे ही मैं मंदिरों के दरवाजे से थोड़ा ही अंदर घुसती, वहां के पुजारी और भगत मुझे बाहर निकल जाने को कहते। मैं उनसे उस सन्यासी की बातें पूछती, पर वे मेरी बात अनसुनी कर मुझे बाहर निकल जाने को कहते। यही कारण था कि मैं उस दिन काफी देर बाद निराश हो लौट आई थी। तब काफी रात गए खाना खाकर सोए थे हम उस रात। मगर अगले दिन मैंने हिम्मत नहीं छोड़ी। अगले दिन मैं आसपास के लगभग सभी मंदिरों में यह पता करती रही कि यहां कोई जटाओं वाला सन्यासी तो नहीं आया है? पर मुझे कोई भी सही बात नहीं बताता। मैं अंदर जाकर अपनी आंखों से देख आना चाहती, मगर अंदर कोई भी मुझे जाने नहीं देता। तब पांचवें दिन जमुना के किनारे एक मंदिर में मुझे पता चला कि इधर सात-आठ दिन से एक जटाओं वाला सन्यासी आया हुआ है। मगर सवाल था कि उस तक मैं जाऊं कैसे? उस तक जाना तो अलग, मुझे मंदिर के अंदर तक कोई जाने नहीं देता था। तब वहां एक मुसलमान ने बताया था कि उस सन्यासी को मैंने सुबह चार बजे जमुना की ओर नहाने जाते देखा था। तब उसी समय मैंने फैसला किया कि आज रात तीन बजे ही मैं यहां पहुंच जाऊंगी। बेटा, तुम्हें ये बातें अटपटी लग रही होंगी। इन बातों को सिर्फ वे ही समझ सकते हैं जिनकी औलाद न हो। क्या बताऊं, मुझे उस सांझ हमेशा यही लगता था कि जैसे थोड़ी ही देर में सुबह होने वाली है। यही कारण था कि उस रात हम सो नहीं पाए। पहले

तो हमारे पास थी नहीं जो हम वहां ठीक समय पर पहुंचते, पर हम खाना खाने के थोड़ी देर बाद ही उस रात उस मंदिर के पास पहुंचकर इंतज़ार करने लगे। वैसे तो पहले कई बार मैं अकेले ही जाया करती थी। मगर जब से मेरे साथ दो-तीन बार बुरी बातें होते-होते बचीं तब से हम दोनों लगभग साथ जाया करते थे। मुझे नहीं मालूम तब हम किस समय वहां पहुंचे। और, कितनी देर हमने इंतज़ार की। पर मुझे उस रात की याद आते ही कंपकपी छूट आती है। उस रात कड़ाके की ठंड थी। जमुना की ठंड ऊपर से अलग। उस पर भी सामने श्मशान घाट। तब जैसे ही किसी के खांसने की आवाज़ होती हम दोनों के कान खड़े हो जाते। हम खांसी के साथ ही तैयार हो जाते कि कब वह संन्यासी नहाने जमुना की ओर जाए और कब मैं उनके पांवों पर गिरूं। पर थोड़ी देर बाद फिर खामोशी छा जाती। एक बार तो ठंड के कारण मेरे उन्होंने यहां तक कहा कि आज ज़्यादा ठंड है, कल आ जाएंगे। पर मैं नहीं मानी थी। क्योंकि मैंने सुना था कि संन्यासियों व फकीरों का क्या पता कि वे कब किधर को चल पड़ें। तब काफी देर बाद उठा था वह संन्यासी। और धीरे-धीरे बढ़ने लगा जमुना की ओर। तब जाने क्या बात हुई, मैं जैसे ही उसकी ओर सात-आठ कदम आगे बढ़ी कि कांप उठी। मुझे लगा जैसे आसपास सैकड़ों लोग एक साथ 'अरे रे अरे' कहने ही नहीं लगे हैं बल्कि कई मुझे उनके पास जाने से रोकने-से लगे हैं। तब मैं कहां से उनकी ओर बढ़ती, मैं जहां एक जगह खड़ी की खड़ी रह गई थी। वहीं मैं सिसक-सिसककर रो उठी थी। मेरा सिसकना ही था कि वह जटाओं वाला संन्यासी जमुना की ओर बढ़ने के बदले मेरी ओर लौट आया। मुझे आज भी याद हैं वे क्षण। उसकी पूरी बातें ज़रूर याद नहीं हैं। हां, उसने पहले एकाएक कहा था, 'मां, इतनी सुबह यहां रोने वाली तुम कौन हो।' तब उसकी बात सुन मुझे जैसे कुछ सहारा-सा मिला हो, मैं अपने को नहीं रोक पाई। उनके पांवों की ओर गिर ही रही थी कि उसने मुझे यह कहकर रोक लिया कि 'नहीं-नहीं।' पर अब मैं थी कि यह बोल उठी, 'बाबा आज तक आपने कई हिंदू औरतों को दुआ दी होगी, पर···आज मैं एक ऐसी बदनसीब औरत हूं, जिसके बारे में कहा जाता है कि औलाद देखना मेरी नसीब में नहीं है। बोलो बाबा, दोगे मुझे दुआ। मैं मुसलमान···'

"जानते हो तब क्या हुआ? तब उसने कुछ ऐसा ही कहा था, 'मां तुम यह क्या कह रही हो। जिस तरह से एक फकीर के लिए हिंदू-मुसलमान-सिख-ईसाई सब बराबर होते हैं, ऐसे ही एक संन्यासी के लिए भी। फिर कोई भी मां सिर्फ मां होती है। बेटों के शरीर को देखकर भले ही यह पहचान लिया जाए कि वह हिंदू है या मुसलमान। मगर किसी भी औरत के शरीर

से यह नहीं पहचाना जा सकता है कि वह किस मजहब को मानने वाले है…फिर यह पहिनावा…पहनावे से न तो फकीर का ही मतलब होता है, न सन्यासी का ही। जिस तरह से अलग-अलग नामों से पुकारे जाने के बावजूद, प्रकृति प्रकृति ही है। वैसे ही दुनिया भर की माताएं माताएं ही हैं। माताएं तो विराट् प्रकृति की सूक्ष्म रूपा होती हैं। इसीलिए तुम्हारा अपने-आपको मुसलमान मानना ठीक नहीं। खैर…तुम अपने को जो भी समझो, मगर…अच्छा जब तुम आ ही गई हो तो देखना हूं…अच्छा अब मुझे आशीर्वाद दो…।' तब इतना कहकर वह सीधे जमुना की ओर चला गया। हम भी घर लौट आए। तब हमें उसकी बातें बिल्कुल भी समझ में नहीं आईं कि वह क्या कह गया? क्या वह हमें दुआ दे गया था नहीं? तब कई दिनों तक वह सन्यासी मुझे सपने में दिखाई देता रहा। तब मुझे कई बार सपने में यह आवाज सुनाई देती कि मैं तो खुद ही सदियों से मां की खोज में भटक रहा था। तुम…। तब अल्लाह या ईश्वर जाने कि यह अशरफ उसी सन्यासी की दुआ का फल है या कोई और बात। हां, मैं इतना भर जानती हूं कि जब अशरफ पैदा हुआ, उसकी पहली रात मुझे सपना हुआ कि ज्यादा खुश न होना। यह खुशी सिर्फ उसी समय तक है, जब तक तुम हिंदू-मुसलमान-सिख-ईसाई आदि में फर्क न समझो। याद रखो, जिस दिन तुमने फर्क समझा, उसी दिन खुशी गमी में बदल जाएगी…। यह बात सुन मैं ही नहीं काकी बल्कि जब मैंने उन्हें ये बातें सुनाईं तो वे भी घबरा उठे थे। यह ही कारण था कि अशरफ के पैदा होने पर हमने जहां अपनी मजहबी रस्में अदा कीं, वहीं गुरुद्वारे में चढ़ावा चढ़ाया और एक मंदिर में पुजारी को भी खाना खिलाया। इस पर हमारी जाति-बिरादरी के लोगों ने हमसे बोलना छोड़ दिया। पर हम मजबूर थे। हमें हमेशा डर रहता था कि पता नहीं कहीं बुढ़ापे में जो औलाद देखने को मिली है, कहीं वही…। इसकी बातें भी बड़ी ही अजीब थीं। यह पांचवें ही महीने घुटनों के बल चलने लगा। आठवें महीने तो यह अच्छी तरह चलने लगा था। हम दोनों जब भी आपस में बातें करते, तब यह हमें बड़े ही गौर से देखता। कई बार तो पागलों की तरह हंसता था। पर एक बात गजब की यह रही कि इसके होने के सात-आठ महीने बाद ही हमारी माली हालत कहां से कहां पहुंच गई। एक हमारी ही नहीं, इसके सब के सब चाचाओं की हालत बेहद अच्छी हो आई। हमने मौलवी से इसके अबजद के नजूमें का हिसाब दिखाया तो वह बोला, 'यह तो दौलत की पिटारी है, इसे तो किसी राजा के घर पैदा होना चाहिए था। पर इसकी जिंदगी का जरा भी भरोसा नहीं। हमने तो नजूम के मुताबिक किसी भी गरीब के घर, ऐसा बेटा पैदा होते नहीं देखा। गरीब के घर भूले-भटके अगर ऐसा बेटा हो भी जाए तो, वह कम ही

तो हमारे पास थी नहीं जो हम वहां ठीक समय पर पहुंचते, पर हम खाना खाने के थोड़ी देर बाद ही उस रात उस मंदिर के पास पहुंचकर इंतज़ार करने लगे। वैसे तो पहले कई बार मैं अकेले ही जाया करती थी। मगर जब से मेरे साथ दो-तीन बार बुरी बातें होते-होते बचीं तब से हम दोनों लगभग साथ जाया करते थे। मुझे नहीं मालूम तब हम किस समय वहां पहुंचे। और, कितनी देर हमने इंतज़ार की। पर मुझे उस रात की याद आते ही कंपकपी छूट आती है। उस रात कड़ाके की ठंड थी। जमुना की ठंड ऊपर से अलग। उस पर भी सामने श्मशान घाट। तब जैसे ही किसी के खांसने की आवाज़ होती हम दोनों के कान खड़े हो जाते। हम खांसी के साथ ही तैयार हो जाते कि कब वह संन्यासी नहाने जमुना की ओर जाए और कब मैं उनके पांवों पर गिरूं। पर थोड़ी देर बाद फिर खामोशी छा जाती। एक बार तो ठंड के कारण मेरे उन्होंने यहां तक कहा कि आज ज़्यादा ठंड है, कल आ जाएंगे। पर मैं नहीं मानी थी। क्योंकि मैंने सुना था कि संन्यासियों व फकीरों का क्या पता कि वे कब किधर को चल पड़ें। तब काफी देर बाद उठा था वह संन्यासी। और धीरे-धीरे बढ़ने लगा जमुना की ओर। तब जाने क्या बात हुई, मैं जैसे ही उसकी ओर सात-आठ कदम आगे बढ़ी कि कांप उठी। मुझे लगा जैसे आसपास सैकड़ों लोग एक साथ 'अरे रे अरे' कहने ही नहीं लगे हैं बल्कि कई मुझे उनके पास जाने से रोकने-से लगे हैं। तब मैं कहां से उनकी ओर बढ़ती, मैं जहां एक जगह खड़ी की खड़ी रह गई थी। वहीं मैं सिसक-सिसककर रो उठी थी। मेरा सिसकना ही था कि वह जटाओं वाला संन्यासी जमुना की ओर बढ़ने के बदले मेरी ओर लौट आया। मुझे आज भी याद हैं वे क्षण। उसकी पूरी बातें ज़रूर याद नहीं हैं। हां, उसने पहले एकाएक कहा था, 'मां, इतनी सुबह यहां रोने वाली तुम कौन हो।' तब उसकी बात सुन मुझे जैसे कुछ सहारा-सा मिला हो, मैं अपने को नहीं रोक पाई। उनके पांवों की ओर गिर ही रही थी कि उसने मुझे यह कहकर रोक लिया कि 'नहीं-नहीं।' पर अब मैं थी कि यह बोल उठी, 'बाबा आज तक आपने कई हिंदू औरतों को दुआ दी होगी, पर···आज मैं एक ऐसी बदनसीब औरत हूं, जिसके बारे में कहा जाता है कि औलाद देखना मेरी नसीब में नहीं है। बोलो बाबा, दोगे मुझे दुआ। मैं मुसलमान···'

"जानते हो तब क्या हुआ? तब उसने कुछ ऐसा ही कहा था, 'मां तुम यह क्या कह रही हो। जिस तरह से एक फकीर के लिए हिंदू-मुसलमान-सिख-ईसाई सब बराबर होते हैं, ऐसे ही एक संन्यासी के लिए भी। फिर कोई भी मां सिर्फ मां होती है। बेटों के शरीर को देखकर भले ही यह पहचान लिया जाए कि वह हिंदू है या मुसलमान। मगर किसी भी औरत के शरीर

से यह नहीं पहचाना जा सकता है कि वह किस मजहब को मानने वाली है··· फिर यह पहनावा···पहनावे से न तो फकीर का ही मतलब होता है, न सन्यासी का ही। जिस तरह से अलग-अलग नामों से पुकारे जाने के बावजूद, प्रकृति प्रकृति ही है। वैसे ही दुनिया भर की मादाएं मादाएं ही हैं। मादाएं तो विराट् प्रकृति की सूक्ष्म रूपा होती हैं। इसीलिए तुम्हारा अपने-आपको मुसलमान मानना ठीक नहीं। खैर···तुम अपने को जो भी समझो, मगर··· अच्छा जब तुम आ ही गई हो तो देखता हूं···अच्छा अब मुझे आशीर्वाद दो···।' तब इतना कहकर वह सीधे जमुना की ओर चला गया। हम भी घर लौट आए। तब हमें उसकी बातें बिल्कुल भी समझ में नहीं आई कि वह क्या कह गया? क्या वह हमें दुआ दे गया या नहीं? सच कई दिनों तक वह सन्यासी मुझे सपने में दिखाई देता रहा। तब मुझे कई बार सपने में यह आवाज़ सुनाई देती कि मैं तो खुद ही सदियों से मां की खोज में भटक रहा था। तुम···। सब अल्लाह या ईश्वर जाने कि यह अशरफ उसी सन्यासी की दुआ का फल है या कोई और बात। हां, मैं इतना भर जानती हूं कि जब अशरफ पैदा हुआ, उसकी पहली रात मुझे सपना हुआ कि ज्यादा खुश न होना। यह खुशी सिर्फ उसी समय तक है, जब तक तुम हिंदू-मुसलमान-सिख-ईसाई आदि में फर्क न समझो। याद रखो, जिस दिन तुमने फर्क समझा, उसी दिन खुशी गमी में बदल जाएगी···। यह बात सुन मैं ही नहीं काफी बल्कि जब मैंने उन्हें ये बातें सुनाईं तो वे भी घबरा उठे थे। यह ही कारण था कि अशरफ के पैदा होने पर हमने जहां अपनी मजहबी रस्में अदा कीं, वहीं गुरुद्वारे में चढ़ावा चढ़ाया और एक मंदिर में पुजारी को भी खाना खिलाया। इस पर हमारी जाति-बिरादरी के लोगों ने हमसे बोलना छोड़ दिया। पर हम मजबूर थे। हमें हमेशा डर रहता था कि पता नहीं कहीं बुढ़ापे में जो औलाद देखने को मिली है, कहीं वही···। इसकी बातें भी बड़ी ही अजीब थीं। यह पांचवें ही महीने घुटनों के बल चलने लगा। आठवें महीने तो यह अच्छी तरह चलने लगा था। हम दोनों जब भी आपस में बातें करते, तब यह हमें बड़े ही गौर से देखता। कई बार तो पागलों की तरह हंसता था। पर एक बात गजब की यह रही कि इसके होने के आठ-आठ महीने बाद ही हमारी माली हालत कहां से कहां पहुंच गई। एक हमारी ही नहीं, इसके सब के सब चाचाओं की हालत बेहद अच्छी हो गई। इसने मौलवी के इसके अब्बा के [illegible] का शिवाला [illegible] देखें, यह तो औलिया की निशानी है, [illegible] किसी [illegible] घर पैदा होना चाहिए था। पर इसकी जिंदगी का ढंग तो बताया नहीं। हमने तो अशरफ के [illegible] किसी भी मजहब के घर [illegible] पैदा होते नहीं देखा। अशरफ के घर [illegible] [illegible]

रहता है। वैसे इसने राज कभी भी नहीं करना है। अगर यह रह ही जाए तो इसने फकीर ही होना है। हां, इसके रहते तुम्हारे सारे के सारे खानदान में पैसा ही पैसा है।

" बेटा वैसे मैं नहीं कहती कि अबजद के नजूमे या ज्योतिष कितना सच होता है। पर हमारे घर में तो ये सब बातें सच हुई हैं। बल्कि हमारे उनको तो एक ज्योतिषी ने तो यह तक बताया कि यह उसी दिन तक तुम्हारे पास है जब तक इसकी मुराद पूरी करोगे। यह ही बात है कि इसके सभी चाचा-चाचियां कहते हैं कि भाई, चाहे कुछ भी हो जाए, इसके दिल को चोट नहीं पहुंचानी है। वे सब कहते ही नहीं, करते भी हैं। मैं जिसको भी खत लिखती हूं, जितना भी पैसा कहती हूं उतना ही वे फौरन भेज देते हैं। भेजें भी कैसे नहीं। कहां मामूली-सा उन सबका कारोबार था। कहां अब हजारों आदमी उनके तेल के कुओं में काम करते हैं। सभी के सभी करोड़पति हैं। यही कारण है कि हम कुछ काम भी नहीं करते हैं, पर फिर भी हमारे पास किसी भी चीज़ की कमी नहीं है। इतना ही नहीं, इसके कहने के मुताबिक इतना पैसा देते हैं। पर अल्लाह या ईश्वर की मेहर कि···सच कहो तो, यह सब जैसे इसकी ही बदौलत है। वैसे तो दुनिया की हर मां अपने निकम्मे से भी निकम्मे बच्चे की तारीफ ही किया करती है। मगर मैं ऐसा नहीं करती। मैं तो जो कुछ भी हकीकत है या जैसा हुआ है, बिल्कुल वे ही बातें कहती हूं। मुझे कोई लालच भी नहीं। जब बेटे को ही लालच नहीं तो, मैं या हम लालच करें भी क्यों? मुझे अच्छी तरह याद है, इसे अभी पांच साल भी पूरे नहीं हुए थे कि एक बार यह कहने लगा कि गीता क्या होती है? तब मैंने अपने पड़ोस के एक हिंदू घराने से सुना था कि गीता हिंदुओं की ऐसी ही मजहबी एक किताब है जैसे कि हमारी कुरान शरीफ, यही मैंने उसे बताया। बस अब क्या था कि, यह ज़िद पर उतर आया कि अभी दिखाओ मुझे वह किताब। मैंने जब इसके अब्बाजान को यह बात कही तो उन्हें बहुत गुस्सा आया। उन्होंने साफ कह दिया कि चाहे यह रहे या न रहे, मैं तो गीता नहीं लाऊंगा।

अब क्या था, यह तो उसी समय से बीमार हो गया। दो घंटे के अंदर ही इसकी हालत खराब हो आई। अगले दो-तीन घंटे बाद तो यहां तक खतरा हो आया कि जैसे यह अब गया···अब गया। तब मजबूरन रात के एक बजे पड़ोस में किसी से मांग लाए थे इसके अब्बाजान—गीता की किताब। बस किताब का घर में आना था कि यह ठीक हो गया। इसके बाद मैंने उसे ट्रंक में रख दिया तो एक दिन यह ज़िद पर उतर आया कि—इसे वहीं पर, और वैसे ही रखो जैसे कुरान शरीफ को रखा है। बेटा दुनिया में औलाद क्या कुछ करवाती है, यह मैं अपनी आंखों से देख चुकी हूं। उसके सात-आठ दिन

बाद तो यह इस जिद पर उतर आया कि मुझे गीता भी ऐसे ही सुनाओ जैसे कुरान शरीफ। यह हम दोनों में से कोई भी नहीं जानता था। बेटा सच कहूं तो इसकी बदौलत मुझे गीता पढ़ना भी सीखना पड़ा। तब यह रोज मेरे पास बैठकर कुरान शरीफ पढ़ने को मुझसे कहा करता था। मुझे भी अल्लाह का नाम लेने में खुशी होती थी। छ साल की उम्र तक तो इसने घर पर ग्रंथ साहब व बाइबिल तक मंगवा डाली। तब एक दिन जब मैं कुरान शरीफ पढ़ रही थी तो, एक दिन यह मुझसे पूछने लगा—अम्मा तुम तो कहती हो कि कुरान शरीफ को पढ़ने का हक सिर्फ मौलवी को ही है तब फिर तुम क्यों पढ़ती हो?…तब मैंने बताया कि ये पुरानी बातें थीं। अब जमाना बदल गया है। अब तो इसे वे सभी पढ़ सकते हैं जो सच्चे दिल से अल्लाह को पुकारते हैं। तब इसने सवाल किया—फिर जिस तरह कुरान शरीफ पढ़ाने वाले को मुल्ला मौलवी कहते हैं उसी तरह गीता, बाइबिल व गुरु ग्रंथ साहब को पढ़ाने वाले को क्या कहते हैं। तब मैंने इसे बताया कि हिंदुओं के धर्म की किताबों को पढ़ाने वाले को पंडित, बाइबिल पढ़ाने वालों को पादरी व ग्रंथ साहब को पढ़ाने वालों को ग्रंथी कहते हैं। तो यह फौरन ही बोला—अम्मा, तब तो इन सबको पढ़ाने वाले मुल्ला मौलवी, पंडित, पादरी व ग्रंथी सबके सब बहुत ही अच्छे आदमी होते होंगे…। इस पर मैंने इसे बताया कि हां वे सब बहुत भले आदमी होते हैं। तब फिर यह खेल में लग गया। मैं भी अपने काम में लग गई। तब थोड़ी देर बाद आकर यह मेरे पास खड़ा हो गया। मुझे इसे देखकर हंसी छूट आई थी। तब थोड़ी देर में ही यह मुझसे बोला—अम्मा सच-सच बताओ जिन धार्मिक लोगों को तुम कहती हो कि वे सब के सब अच्छे तथा भले आदमी होते हैं, क्या जितनी अच्छी-अच्छी बातें वे लोगों को बताते हैं वैसी ही बातें वे सब अपने पर भी लागू करते हैं या नहीं?… इस पर इसकी बातें सुन मैं अपनी हंसी रोक नहीं पाई। मैंने हंसते हुए कहा—इसको मैं क्या जानूं, उन सभी से तू ही पूछ आना…। मेरा यह कहना ही था कि बोला—मैं क्या जाऊं, मुझे तो तुम बताओ। मैं तो तुम से पूछ रहा हूं। भला मैं क्या जवाब देती? मैं चुप ही रही। इस पर यह हंसते हुए बाहर चला गया। तब इसकी इस तरह की बातों से मैं तंग आ जाती। हर समय यह ऐसी ही बातें किया करता। आठ साल की उम्र में तो यह उर्दू व हिंदी पढ़ने ही नहीं लगा बल्कि यह तो छोटी-छोटी किताबों को एक ही दिन में खतम कर देने लगा। तब धीरे-धीरे इसने इधर-उधर खेलने जाना भी बन्द कर दिया। रोज यह नई किताब मांगता। यह ही कारण था कि मुझे भी पढ़ने की लत पड़ गई। बल्कि मेरी तो धीरे-धीरे ऐसी आदत हो आई कि जब तक मैं दो-चार घंटे पढ़ न लूं, सुबह खाने की भी इच्छा नहीं होती। घर भी

मेरे पास ही आकर बैठ जाता था। तब एक दिन मेरे पढ़ते-पढ़ते जीवन व मृत्यु की बातें आ गईं, एक किताब में। अब मैं मन ही मन ये बातें पढ़ने लगी तो यह मेरे सिर हो आया कि ज़ोर से पढ़ और मुझे समझा कि मौत क्या होती है ?...अब मैंने इसे एक-दो ही बातें बताई थीं कि दुनिया में जो भी पैदा होता है वह मरता ही है तो यह बोल उठा—मां जब सब ही ने मरना है तो मरने से डरना तो बुज़दिली हुई। किसी को मरते देख रोना तब तो नासमझी ही हुई ? बोल न अम्मा, यह बात ठीक है या नहीं ?

" बेटा क्या बताऊं, यह शुरू से ही ऐसी ही बातें किया करता था। तब बेटा, एक दिन तो इसने गजब ही कर दिया। उस दिन जाने कहां से आ टपके मेरे चाचा। उनके आने पर मुझे अपनी अम्माजान व अब्बा की याद हो आई थी। याद आए भी कैसे नहीं। अम्मा के इलाज के लिए उन्होंने इनसे रुपये ब्याज पर क्या लिए, मुसीबत ही खड़ी हो गई थी। अम्मा को तो रुपये बचा नहीं पाए, मुझे ही यहां इनके यहां रहन रख गए। इसे ही मेरे अब्बाजान बरदाश्त नहीं कर पाए थे। तब मैं कांप उठी थी कि मेरे साथ जाने क्या-क्या होना है ? ऐसा सोचती कैसे नहीं। मैंने कई बदनसीब गरीबों की बातें सुन रखी थीं। तब मेरी उम्र पंद्रह वर्ष की थी। तब मेरे साथ और तो क्या होना था, वही हुआ जो एक औरत के साथ हो सकता है। मगर इतना शुकर था कि वह सब अपनी बनाकर हुआ। पर फिर भी मैं अपने अब्बाजान को क्षण भर के लिए नहीं भूल पाई। उनकी मुझे हमेशा याद आया करती थी। तब चार-पांच महीनों बाद एक दिन मेरे एक चाचा आए थे कि मेरे अब्बाजान मर गए हैं। इन सब बातों की ही चाचा जी ने याद करा दी थी। कराते भी कैसे नहीं ? उन्हें भी पैसों की ज़रूरत थी। एक ओर चाची बीमार थी दूसरी ओर भय्या खैवर का हाथ टूटा हुआ था। एक ओर घर में उनके खाने को आटा नहीं। दूसरी ओर वे उनकी सेवा के कारण कोई काम नहीं कर सकते थे। मेरे अपने पास पैसे-वैसे भी नहीं रहते थे। इसीलिए उस सुबह इसके अब्बा-जान से कहने की नौबत आई थी। जिस काम को मैंने कह कर करवा तो दिया, मगर घर में मुसीबत ही खड़ी हो गई। यह हमारी सब बातें सुन रहा था। उनके जाने के फौरन ही बाद यह मेरे पास आकर बोला—अम्मा तुम तो कहा करती थीं कि अच्छे कर्म का फल अच्छा व बुरे कर्म का फल बुरा मिलता है। अब्बाजान तो मेरी नज़रों में हमेशा ही बुरे कर्म किया करते हैं। अम्मा ज़रा समझाओ तो किसी आदमी की मजबूरी का नाजायज़ फायदा उठाना क्या पाप या बुरा नहीं ? कुरान या किस मजहब में इसे जायज़ माना गया है ? इस बात को सुन मुझे भी गुस्सा आ गया। तब मैंने इससे कहा—जा अपना और काम कर। तुझे इन बातों से लेना-देना क्या ? अब क्या था, यह

तो तनकर खड़ा होकर बोला, अम्मा मुझे लगता है कि दुनिया में मजहब या धर्म-कर्म की बातें सिर्फ उन्हीं के लिए हैं जिनके पास कुछ नहीं है। ये बातें उनके लिए कभी नहीं है—जिनके पास धन है। क्योंकि उनके पास जो कुछ भी है, वह है ही धर्म-कर्म की बातें न मानने के कारण। वर्ना···मैं इस बात का उत्तर क्या देती। मैं चुप रही। पर वह चुप नहीं रहा। बोला—अम्मा तुम तो कहा करती थी कि अल्लाह या ईश्वर बड़ा ही रहम दिल होता है। वह किसी के आंसू देख नहीं सकता···तब उसने न तो तुम्हारे व तुम्हारे अब्बाजान के आंसू देखे···न तुम्हारे चाचा के। एक बात और, आदमी जब इस धरती पर खाली हाथ आता है और जाता भी खाली हाथ ही है तो फिर अकेले बुरे कर्म ही उसके साथ चिपके कैसे रहते हैं।'' इतना कह वह मेरा मुंह ताकने लगा। मुझे मौन देख वह सिसकियां भरने लगा। फिर उस सारे दिन गुमसुम-गुमसुम-सा रहा। शाम होते इसने तो तूफान खड़ा कर दिया। शाम जैसे ही इसके अब्बाजान आए, यह उनसे बोला—तुम्हारे जितनों ने पैसे देने हैं, उन सबको माफ कर दो। अल्लाह कहता है कि जिसका जो कुछ भी सामान हमारे पास पड़ा है उसे लौटा दो···

"क्या बताऊं बेटा, तब इसकी बात सुन हम दोनों भौंचक्के रह गए। क्योंकि तब हमारा ब्याज पर पैसे चढ़ाने का बहुत ही अच्छा कारोबार चला हुआ था। पूरे साठ हजार रुपये के करीब ब्याज पर थे और करीब दो लाख के जेवर घर रहन पड़े थे। भला इतने पैसों को कौन खैरात में माफ कर सकता है ? मगर इसकी बात को टालने का भी कम खतरा हमें नहीं था। इसीलिए इसके अब्बाजान ने एक तरकीब सोची कि, मुसलमानों पर तो उनके बहुत ही कम रुपये हैं। इसकी बात के मुताबिक उन्हें माफ कर दें। यह बात उसके सामने कही ही थी कि यह तो गुस्से में बोल उठा—अम्मा तुम तो कहा करती थीं कि अल्लाह की नजरों में तो सब बराबर होते हैं। कल तुमने कुरान में हुजूर की बातें भी सुनाईं थी कि रसूल आलमीन होता है तब फिर वह सिर्फ मुसलमीन कैसे ?···और यह रोते हुए अपने बिस्तर पर लेट गया। क्या कहूं, लेटा ही नहीं, दो घंटे के अंदर इसकी यह हालत हो गई कि किसी को भी इसके बचने की उम्मीद नहीं रही। अब हमारे घर पर कुहराम मच गया। मैं फूट-फूटकर रोने लगी। अब मैं बार-बार यह ही कह रही थी—'अगर यह ही नहीं रहा तो आग लगे इस दौलत को। मुझे नहीं चाहिए, तुम्हारी यह दौलत।' पर वे थे कि पहले तो टस से मस नहीं हुए। इतनी बड़ी पूंजी को आसानी से मेरे खयाल से दुनिया में कोई भूले कैसे ? पर क्या बताऊं, उस खुशी व गमी वाले सपने की बात थी कि···बेटा औलाद दुनिया में क्या होती है, इसका तुम इसी से अदाजा लगा सकते हो कि इसने जो

मेरे पास ही आकर बैठ जाता था। तब एक दिन मेरे पढ़ते-पढ़ते जीवन व मृत्यु की बातें आ गईं, एक किताब में। अब मैं मन ही मन ये बातें पढ़ने लगी तो यह मेरे सिर हो आया कि ज़ोर से पढ़ और मुझे समझा कि मौत क्या होती है?···अब मैंने इसे एक-दो ही बातें बताई थीं कि दुनिया में जो भी पैदा होता है वह मरता ही है तो यह बोल उठा—मां जब सब ही ने मरना है तो मरने से डरना तो बुज़दिली हुई। किसी को मरते देख रोना तब तो नासमझी ही हुई? बोल न अम्मा, यह बात ठीक है या नहीं?

"बेटा क्या बताऊं, यह शुरू से ही ऐसी ही बातें किया करता था। तब बेटा, एक दिन तो इसने गजब ही कर दिया। उस दिन जाने कहां से आ टपके मेरे चाचा। उनके आने पर मुझे अपनी अम्माजान व अब्बा की याद हो आई थी। याद आए भी कैसे नहीं। अम्मा के इलाज के लिए उन्होंने इनसे रुपये ब्याज पर क्या लिए, मुसीबत ही खड़ी हो गई थी। अम्मा को तो रुपये बचा नहीं पाए, मुझे ही यहां इनके यहां रहन रख गए। इसे ही मेरे अब्बाजान बरदाश्त नहीं कर पाए थे। तब मैं कांप उठी थी कि मेरे साथ जाने क्या-क्या होना है? ऐसा सोचती कैसे नहीं। मैंने कई बदनसीब गरीबों की बातें सुन रखी थीं। तब मेरी उम्र पंद्रह वर्ष की थी। तब मेरे साथ और तो क्या होना था, वही हुआ जो एक औरत के साथ हो सकता है। मगर इतना शुकर था कि वह सब अपनी बनाकर हुआ। पर फिर भी मैं अपने अब्बाजान को क्षण भर के लिए नहीं भूल पाई। उनकी मुझे हमेशा याद आया करती थी। तब चार-पांच महीनों बाद एक दिन मेरे एक चाचा आए थे कि मेरे अब्बाजान मर गए हैं। इन सब बातों की ही चाचा जी ने याद करा दी थी। कराते भी कैसे नहीं? उन्हें भी पैसों की ज़रूरत थी। एक ओर चाची बीमार थी दूसरी ओर भय्या खैवर का हाथ टूटा हुआ था। एक ओर घर में उनके खाने को आटा नहीं। दूसरी ओर वे उनकी सेवा के कारण कोई काम नहीं कर सकते थे। मेरे अपने पास पैसे-वैसे भी नहीं रहते थे। इसीलिए उस सुबह इसके अब्बा-जान से कहने की नौबत आई थी। जिस काम को मैंने कह कर करवा तो दिया, मगर घर में मुसीबत ही खड़ी हो गई। यह हमारी सब बातें सुन रहा था। उनके जाने के फौरन ही बाद यह मेरे पास आकर बोला—अम्मा तुम तो कहा करती थीं कि अच्छे कर्म का फल अच्छा व बुरे कर्म का फल बुरा मिलता है। अब्बाजान तो मेरी नज़रों में हमेशा ही बुरे कर्म किया करते हैं। अम्मा ज़रा समझाओ तो किसी आदमी की मजबूरी का नाजायज़ फायदा उठाना क्या पाप या बुरा नहीं? कुरान या किस मज़हब में इसे जायज़ माना गया है? इस बात को सुन मुझे भी गुस्सा आ गया। तब मैंने इससे कहा—जा अपना और काम कर। तुझे इन बातों से लेना-देना क्या? अब क्या था, यह

तो तावर खड़ा होकर बोला, अम्मा मुझे लगता है कि दुनिया में मज़हब या धर्म-कर्म की बातें सिर्फ उन्हीं के लिए हैं जिनके पास कुछ नहीं है। ये बातें उनके लिए कभी नहीं है—जिनके पास धन है। क्योंकि उनके पास जो कुछ भी है, वह है ही धर्म-कर्म की बातें न मानने के कारण। वर्ना"' मैं इस बात का उत्तर क्या देती। मैं चुप रही। पर यह चुप नहीं रहा। बोला—अम्मा तुम तो कहा करती थीं कि अल्लाह या ईश्वर बड़ा ही रहम दिल होता है। वह किसी के आंसू देख नहीं सकता'' तब उसने न तो तुम्हारे व तुम्हारे अब्बाजान के आंसू देखे'''न तुम्हारे चाचा के। एक बात और, आदमी जब इस धरती पर खाली हाथ आता है और जाता भी खाली हाथ ही है तो फिर अकेले बुरे कर्म ही उसके साथ चिपके कैसे रहते हैं।'' इतना कह यह मेरा मुंह ताकने लगा। मुझे मौन देख वह सिसकियां भरने लगा। फिर उस सारे दिन गुमसुम-गुमसुम-सा रहा। शाम होते इसने तो तूफान खड़ा कर दिया। शाम जैसे ही इसके अब्बाजान आए, यह उनसे बोला—तुम्हारे जितनों ने पैसे देने हैं, उन सबको माफ कर दो। अल्लाह कहता है कि जिसका जो कुछ भी सामान हमारे पास पड़ा है उसे लौटा दो'''

''क्या बताऊं बेटा, तब इसकी बात सुन हम दोनों भौचक्के रह गए। क्योंकि तब हमारा ब्याज पर पैसे चलाने का बहुत ही अच्छा कारोबार चला हुआ था। पूरे साठ हजार रुपये के करीब ब्याज पर थे और करीब दो लाख के जेवर पर रहन पड़े थे। भला इतने पैसों को कौन खैरात में माफ कर सकता है? मगर इसकी बात को टालने का भी कम खतरा हमें नहीं था। इसीलिए इसके अब्बाजान ने एक तरकीब सोची कि, मुसलमानों पर तो उनके बहुत ही कम रुपये हैं। इसकी बात के मुताबिक उन्हें माफ कर दें। यह बात उसके सामने कही ही थी कि यह तो गुस्से में बोल उठा—अम्मा तुम तो कहा करती थी कि अल्लाह की नजरों में तो सब बराबर होते हैं। कल तुमने कुरान से हुजूर की बातें भी सुनाई थी कि रब्बुल आलमीन होना है तब फिर यह सिर्फ मुसलमीन कैसे?'''और यह रोते हुए अपने बिस्तर पर लेट गया। क्या कहूं, लेटा ही नहीं, दो घंटे के अंदर इसकी यह हालत हो गई कि किसी को भी इसके बचने की उम्मीद नहीं रही। अब हमारे घर पर कुहराम मच गया। मैं फूट-फूटकर रोने लगी। अब मैं बार-बार यह ही कह रही थी—'अगर यह ही नहीं रहा तो आग लगे इस दौलत को। मुझे नहीं चाहिए, तुम्हारी यह दौलत।' पर वे थे कि पहले तो टस से मस नहीं हुए। इतनी बड़ी पूंजी को आसानी से मेरे खयाल से दुनिया में कोई भूले कैसे? पर क्या बताऊं, उस खुशी व गमी वाले सपने की बात थी कि'''बेटा औलाद दुनिया में क्या होती है, इसका तुम इसी से अंदाजा लगा सकते हो कि इसके जो

अब्बाजान ब्याज के पैसे छोड़ने के बदले आदमी की जान लेने से भी नहीं झिझकते थे। वे ही अपने घर पर गिरवी रखी चीजों को तो अलग, अपने मूल के पैसों को भूलने को मजबूर ही नहीं हुए बल्कि घबराकर उन्हें लौटाने निकल पड़े। निकलते भी कैसे नहीं। सही मानों में एक तो हमारी सच्ची दौलत ही यह थी। रुपये-पैसे भी तो इसी के भाग से हमारे खानदान में आए थे। यह भी अल्लाह या ईश्वर की ही दुआ थी कि उसके ठीक दूसरे दिन अशरफ का एक चाचा, उन पैसों के भी तिगुने-चौगुने पैसे हमारे पास आकर दे ही नहीं गया बल्कि यह कह गया कि यह जो कुछ कहे, वह तुम करना। तुम यह भूल जाना कि हम काम करते हैं या नहीं। हम तुम्हें कभी भी पैसों की तंगी नहीं आने देंगे। मैं आज ही और सब भाइयों को खत लिख देता हूं। हमारी नसीब में भी तो पैसा इसी की बदौलत देखने को मिला है। इतना ही नहीं, उसके बाद तो यह जहां बिल्कुल ही गुमसुम रहने लगा। वहीं कई-कई बार तो अकेले मौन बैठे सिसकियां भरने लगता। इस बीच तो इसने किताबें पढ़ना भी छोड़ दिया। मैंने इसका मन बहलाने व इसके सोच की दिशा बदलने की लाख कोशिश की, मगर जरा भी सफलता नहीं मिली। हां, इस पंद्रह दिन बाद यह पहली बार बोला— मां ! चिड़िया जब दाना-दाना रोज चुगकर अपना तथा अपने बच्चों का लालन-पालन करती है तो फिर आदमी अगले दिन के लिए तो अलग, जरूरत से ज्यादे ढेरों सारा क्यों जोड़ता है ? जबकि दुनिया भर के सभी धर्मों में इसकी मनाही है। बेटे अब तुम्हीं बताओ इसका भी कोई उत्तर है ? इसी कारण मैंने तब कहा था—ऐसा तो बेटा दुनिया में आदि काल से ही चला आ रहा है और यह शायद सृष्टि के आखिरी क्षण तक चलता ही रहेगा। बस मेरा यह कहना था कि यह तो आगबबूला हो गया। बोला—मां, अगर यह बात ऐसा कोई आदमी कहे जिसमें बुद्धि का माद्दा जरा भी नहीं है तब तो ठीक ही है। मगर तुम्हारे मुंह से यह ? मेरे ख्याल से तो जिसमें जरा-सी भी बुद्धि होती है वह जहां ऐसी बात जबान पर ला ही नहीं सकता है। वहीं ऐसा कहने के बदले वह यह सोचता है कि आखिर इस हेराफेरी का कारण क्या है ? इस बीच एक बात और हुई। हमने भले ही लोगों के कर्ज को मुआफ कर दिया। मगर जरूरतमंद लोगों का आना फिर भी बंद नहीं हुआ। तब एक दिन किसी जरूरतमंद आदमी को अब्बाजान के सामने इसने रोते देख क्या लिया, यह तो सीधे मेरे पास आकर बोला—मां, तुम तो कहती थी नदी सबको दौलत देती है। कहो न अब्बाजान से कि दे दो खैरात में उस आदमी को पैसे। हमें तो नदी अपने आप और ज्यादे दे देगी··· बेटा तब उस आदमी को पैसे क्या दे दिए, उसके बाद तो एक साल के अंदर ही यहां मांगने वालों का तांता ही लग गया। कुछ तो जरूरतमंद आते थे,

कुछ झूठ-मूठ में आते थे। इस पर एक दिन इसके अब्बाजान ने एतराज किया, तो यह बोला—अब्बा तुम तो कहते थे कि अल्लाह या ईश्वर के सामने कोई भी झूठ नहीं बोल सकता है। उसके सामने यदि कोई झूठ बोलता भी है तो वह सब समझ जाता है। फिर वह आदमी झूठ बोलता है उसे वह अपने आप सजा देता है। तब कहो न पैसे देने आए लोगों से कि अल्लाह या ईश्वर की कसम खाओ। कहो—वह जो कुछ कह रहा है सच कह रहा है। बेटा क्या बताए, हम तो इसकी बातें सुन-सुन माथा पटककर रह जाते। गीता, कुरान शरीफ, गुरु ग्रंथ साहब व बाइबिल पर हाथ लगाकर रुपये लेते समय, इधर की रस्म के मुताबिक कसम खाने की बात भी इसी की ईजाद है। क्या बताऊं बेटा'''

" बेटा यह क्या सोचता है ? क्या करता है ? मेरी समझ में तो आता नहीं कि यह ऐसा करता क्यों है, चाहता क्या है तथा क्या सोचता है ? मुझे तो बेटा आज तुमने उस दिन की याद करा दी, जब मेरी बहू हिंदू-मुस्लिम दंगों के बीच अपने अब्बा व अपनी बहिन सलीमा के मारे जाने की खबर सुन फूट-फूटकर रो रही थी। तब उसके रोने की आवाज सुन उसके पास यह भी आया था। तब जब मैंने इसे हकीकत बताई तो यह केवल इसे कठ यह बोलकर लौट पड़ा कि तुम्हें याद है न शकुंतला भी तो तुम्हारी ही सहेली थी। तब मैं अवाक् सी इसे देखती रह गई थी। यह बात नहीं कि शकुंतला को मैं नहीं जानती थी। बल्कि, मैंने तो उसे बचपन में बहुत अच्छी तरह देखा ही नहीं था बल्कि कई बार उसे खिलाया भी था। कितनी सुंदर थी वह गुड़िया-सी, पर उस क्षण मैं उसे बिल्कुल भूली थी। कारण बहू की बहिन सलीमा की बात थी। उस समय तो मुझे उसकी पड़ी थी'''तब मैं अपने बेटे का ऐसे लौटना बरदाश्त न कर सकी। उसे लौटने से रोकने के लिए मैं गुस्से में—बेटा—बोली थी। तब इसने तेजी से आगे बढ़ते इतना भर कहा—मां मुझे तो सैकड़ों-हजारों वैसी ही चीखें सुनाई दे रही हैं। जैसे सलीमा'''तब मैं इसकी बात समझ नहीं पाई थी। कारण, जन्म से मुसलमान होने के कारण मैं इस बात को मानती थी कि यह जो कुछ भी हुआ है, सब हिंदुओं की बदौलत ही हुआ है। इसकी सारी की सारी जिम्मेवारी सिर्फ इनकी ही है। पर अब एहसास करती हूं कि हिंदू भी तो ऐसा ही सोचते हैं। वे भी तो कहते होंगे यह सब मुसल्मानों ने करवाया। क्योंकि जब भी अब मैं उन दर्दनाक झगड़ों के दिनों को याद करती हूं तभी मुझे सक्सेना के उस चाचा की याद आती है जो मेरे पास आकर सलीमा को न बचा पाने के दुख से फूट-फूटकर रोता रहा था। अब जब मुझे कई बार उन दिनों की याद आती है जिन दिनों आदमी आदमी रहा ही नहीं। पता नहीं जाने व कौन-सी मनहूस घड़ियां थीं जब हिंदू-मुसल्मान सभी के सभी यह भूल गए थे कि वे पहले प्यार

से रहा ही नहीं करते थे बल्कि एक-दूसरे को ताऊ-चाचा तक कहा करते थे।

ओफ, सक्सेना के चाचा सलीमा को अपनी बेटी के बराबर प्यार किया करते थे। यही प्यार तो था जो सलीमा को बचाने वे उसे अपने घर महज इसलिए ले गए कि मोहल्ले में अकेला मुसलमान परिवार मेरी बहू के मायके वालों का ही था। मेरी बहू के मायके वालों को, अपने अड़ोसियों-पड़ोसियों पर पूरा यकीन था कि इनके होते उनके साथ कुछ भी नहीं हो सकता है। यही कारण था कि उन्होंने विश्वास के साथ सलीमा को तो उनके घर भेज दिया, मगर वे अपने ही घर बेफिक्री से रहे। मगर आश्चर्य कि अचानक ही दूसरे मोहल्लों के मुसलमानों ने उधर हमला बोल दिया। अब उस मोहल्ले से बहू के मायके वालों के भागने की नौबत नहीं थी, बल्कि अब भागना था हिंदुओं ने। यही वजह थी कि वहां अब हिंदुओं में भागदौड़ मच गई। और तो सब भाग गए। हां, भाग नहीं सके सक्सेना के बीमार चाचा व सलीमा। क्योंकि सलीमा को यकीन था कि हमला तो उसके ही मजहबी भाइयों ने किया है। फिर वह भागती किसके साथ ? उसके लिए, भागने पर तो यह खतरा था कि कहीं भागने के ही बीच, हिंदू ही उसे मार न दें। होनी तो होकर ही रहती है। अब अल्लाह के बंदे सलीमा से कह रहे थे—अच्छा···हमें आते देख बुरका पहन लिया तूने। घर हिंदू का, और उसमें बुरके वाली, क्या कहने ? और वह थी कि चीखी जा रही थी—छोड़ो मुझे। मैं मुसलमान की बेटी हूं। पर वे थे कि उसको बेरहमी से खींच ही नहीं रहे थे बल्कि उसकी इज्जत उतारने पर उतर आए थे। ओफ, ऐसे दर्दनाक क्षणों में कौन है जो अल्लाह या ईश्वर को याद नहीं करता है। तब अचानक ही उसके मुंह से निकला था—कान्हा बचाओ न अब सलीमा की लाज···कान्हा तुमने द्रौपदी की लाज बचाई थी। क्या तुम्हारी भी नजरों में सलीमा व द्रौपदी में फर्क होता है ? अब क्या था, अल्लाह के बंदे आग-बबूला हो सब एक साथ बोल उठे—हम तो पहले ही कह रहे थे कि यह हमें धोखा देने भर को है। भला कान्हा-फान्हा को कोई मुसलमान की लड़की याद कर सकती है क्या ? वह तो अल्लाह को याद करती है ? ओफ···तब उसकी लाज बचाने उठे थे—आठ महीनों से तड़फते-छटपटाते सक्सेना के चाचा। मगर वे क्या बचा पाते ? हां, उन्हें दो-चार थप्पड़ व घूंसे मार उन्होंने छोड़ा महज इसलिए कि वे अपनी आंखों से देखें कि हिंदू जो उनकी मां-बहिनों के साथ कर रहे हैं, उसका बदला कैसे लिया जा सकता है। उन्होंने रोते-सिसकियां भरते सुनाई थीं ये बातें···। इतना ही नहीं, मुझे जब भी ऐसे बुरे दिनों की याद आती है तब हमेशा ही अपने भय्या के पोते की वह बात याद आ जाती है, जो उसने शकुन्तला के बारे में बताई थी। पता नहीं, वह शकुन्तला नए भरत को जन्मने

पैदा हुई थी या ऐसे ही बेमौत मरने—यह तो अल्लाह या ईश्वर ही जाने।

उनके साथ भी वही हुआ जो सलीमा के साथ हुआ। कितना विचित्र था यह संयोग। उधर सलीमा को बचाने सक्सेना के चाचा बढ़े थे तो यहाँ शकुन्तला को बचाने मेरा पोता आगे आया था। सारे मुसलमानों के उस मोहल्ले में एक उनका ही अकेला परिवार था, वहां लाहौर में। मगर होनी तो होती ही है। वैसे तो लाहौर से सभी हिंदू जान बचा-बचाकर भागे। मगर ताज्जुब था कि एक साथ इकट्ठा होकर उनमें क्या ताकत आ गई कि उन्होंने इकट्ठा हो गुस्से में उस मोहल्ले में हमला बोल दिया, जहां शकुन्तला बेफिक्र मेरे भय्या के घर बचकर इधर आने की बाट जोह रही थी। तब हिंदू व सरदार उससे कह रहे थे कि सबूत दो कि तुम हिंदू की बेटी हो। बेटा होने पर तो भला वह सबूत दे सकती थी—हिंदू या मुसलमान का। मगर, बिचारी वह क्या सबूत दे सकती है। उसका तो कसूर इतना भर था कि वह एक मुसल्मान को अपना अब्बा-सा समझे थी। मनहूसियत के उन अजीबोगरीब क्षणों की भी दास्तां यह कि अब इकट्ठा हुए हिंदू उसे मुसलमान की बेटी समझ, बदला लेने पर उतारू थे। वह चीखती जा रही थी—भगवान के नाम पर मुझ पर दया करो। मगर कितने अभागे थे वे क्षण, जब न तो भगवान के बंदों में ही दया शेष थी, न अल्लाह के बंदों में ही। ओफ, जब मेरे भय्या के सबसे छोटे पोते ने यह सब सुनाया तो मैं कांप उठी। उसके साथ जो कुछ भी हुआ सो तो हुआ। मगर मुझे एक बात का दुःख है कि सलीमा को बचाने सक्सेना के चाचा तो छटपटाते हुए भी आगे बढ़े। पर सात साल का मेरा पोता शकुन्तला को बचाने की हिम्मत नहीं कर सका। करता भी कैसे, वह तो सचमुच ही अल्लाह का बंदा था। इस बात का अगर उन्हें पता भी चल जाता कि घर में एक संदूक में छिपा कोई और भी है तो शायद शकुन्तला की कहानी सुनाने कोई बचता ही नहीं। मगर उसने बचना था, अपनी बहिन शकुन्तला की बेइज्जती की बातें सुनाने। जिसे वह देख तो नहीं पाया पर संदूक के अंदर से सुनता रहा। यह ही कारण है कि जब भी मुझे अपनी बहू का उस दिन का रोना याद आता है। तब उस दिन नन्हीं बेटे की वह बात भी याद आती है कि शकुन्तला भी तो चीखी होगी ऐसे ही। इन बातों का एहसास वे कर सकते हैं जिन पर ऐसी बीती हो या उन मनहूस क्षणों से जो गुजरे हों। अल्लाह का शुक्र था कि हम पर तो ऐसी नहीं बीती, मगर सुना कम नहीं। मेरा तो सुन-सुनकर ही रोम-रोम कांप उठता था। अब इन क्षणों की यादों में हमेशा मेरे मन में विचार आते हैं कि ऐसी ये सारी मौतें क्या ऐसे ही भ्रमवश तो नहीं हुई हैं? मेरा बेटा अशरफ भी तो ऐसा ही कहा करता है। ओफ, आपसी दंगे तो शांत हो गए, मगर तब से तो मेरे बेटे ने बातें ही करनी छोड़ दी। जब भी उसका

कोई बात करो केवल इतना भर कह देता है—क्या बात करूं, अभी तो उन दंगों के घावों को ही नहीं भूल पाया हूं।···तब मैं देखती हूं कि वह घंटों खामोश बैठा रहता है। किताबें पढ़ता रहता है। अब मैं चाहती हूं कि उससे बातें करूं। उसका इस तरह बैठा रहना, मुझे ज़रा भी अच्छा नहीं लगता है। अरे बेटे, बातों-बातों में मुझे एक बात याद आ गई। मेरी बेटी हिंदू धर्म की दो-एक बातें जानना चाहती है। बेटे से पूछने की न तो उसे ही हिम्मत है, न मुझे ही। इसीलिए उसने लिखकर मुझे दिया है कि किसी से इन बातों को पूछना तो। उसे मैं चारों पंडितों को दिखाना चाहते हुए भी नहीं दिखा पाई। कारण, मुझे डर लगता है कि उनकी समझ में जो भी बात नहीं आती है वे उसी से पूछते हैं। इसीलिए देखना तो जरा। शायद···



आदरणीय भय्या···

मुसलमान की बेटी होने के कारण, मैं हिंदू धर्म की गहरी बातें ज़रा भी नहीं जानती। भय्या, क्या मुझे अपने धर्म की कुछ गहरी बातें बता दोगे···या मुझे वह किताब लाकर पढ़वा दोगे, जिसमें उस मां की कहानी लिखी हो। जिसने, इतिहास प्रसिद्ध भागीरथ के साथ तपस्या की थी। कारण, जब भी दस-पंद्रह दिन या महीने बाद वे मेरे पास आते हैं तब कई बार वे अपने आप में खोए-खोए से गुनगुनाते हैं—मगर ओफ भागीरथ···। इतना ही नहीं, जब भी मैं उनके पास जाती हूं तब ही पाती हूं कि कई बार वे यह ही गुनगुना रहे होते हैं। उनसे बातें तो मैं पहले भी अधिक नहीं करती थी। अब तो चाहते हुए भी इन नामों को सुन, उनसे बातें करने का साहस नहीं जुटा पाती हूं। केवल उनके दर्शन-भर कर लौट आती हूं। उनके दर्शन-भर से ही अपने में एक विलक्षण शक्ति का एहसास करती हूं। पहले-पहले मैं इन नामों को सुन भौचक्की-सी रही थी कि आदमी उन ही नामों को अधिक याद करता है

जिन्हें वह आदर्श मानता है। मेरे सामने तब प्रश्न यह था कि तब ये व्यक्ति हैं कौन ? इन्होंने ऐसा क्या कुछ किया है जो इन्हें ये आदर्श मानते हैं ? किंतु अब ऐसी कोई भी बात मेरे सामने नहीं है। अब मैं बहुत-सी कितावों में पढ़ चुकी हूं कि सगर एक दिग्विजयी राजा हुए थे। उन्होंने अश्वमेध यज्ञ किया था। उनकी दो रानियां थीं। एक से साठ हजार पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र हुए। एक की केवल एक ही संतान थी। अश्वमेध यज्ञ का जो घोड़ा छोड़ा गया, उसकी रक्षा का भार पहली रानी के साठ हजारों पर सौंपा गया। घोड़ा निर्बाध रूप से आगे बढ़ता ही गया। किसी में भी उसे रोकने या पकड़ने का साहस नहीं था। मगर कुछ शरारतियों को शरारत सूझी। उन्होंने उस पकड़कर कपिल मुनि के आश्रम में बांध दिया। रक्षक घोड़े को बंधा देख गुस्से-से लाल-पीले हो आए। उन्हें सामने तपस्या में लीन कपिल मुनि दिखाई दिए। जिन पर ही उन्हें संदेह हुआ कि इस घोड़े को बांधने की हिमाकत कर अब यह तपस्या का ढोंग रच रहा है। इस पर उन्होंने कपिल मुनि को गाली-गलौज ही नहीं दी, बल्कि एक ने तो उन्हें लात तक मार दी। इससे मुनि कुपित हो उठे। उन्होंने क्रोध में आंखें क्या खोलीं कि सारे के सारे रक्षक क्रोधवश भस्म हो गए। यहां तक कि इस सारी घटना की सूचना देने वाला तक कोई नहीं बचा। तब वर्षों बाद, घोड़े की खोजबीन का भार दूसरी रानी के लड़के पर आया। उसे कपिल मुनि के माध्यम से ही सारी घटना का पता चला। वही तब उस घोड़े को वापस लाया। उसने अपने पिता को जब यह सारी बात सुनाई तो वे बहुत दुखी हुए। इसी दुख में वे मरे कि मेरे कुल में कोई ऐसा बेटा पैदा होगा जो उन सब मेरे पुत्रों, पौत्रों, प्रपौत्रों का तरोतारण करेगा। कारण, पूर्व-जन्म के दर्शन के अनुसार यह कहा जाता है कि ऐसे असमय या बेमौत हुई मौतों की आत्माओं का तरोतारण नहीं होता है। वे तब तक वायुमंडल में या ब्रह्मांड में भटकती रहती हैं जब तक कोई उनका तरोतारण नहीं करता है। कहते हैं कि उन ही आत्माओं के तरोतारण के लिए हिंदू शास्त्र पुराणों के अनुसार भागीरथ ने सबसे जटिल इतिहास प्रसिद्ध तपस्या की थी। उसी तपस्या के बल पर वे स्वर्ग से गंगा को धरती पर लाए कि उन साठों हजारों का तरोतारण हो जाए।

वैसे मैं मानती हूं कि जिस तरह से कुरान शरीफ या बाइबिल की बातों के सत्यासत्य की बातें करना गलत है। इसी तरह शास्त्रवर्णित इस कहानी पर कुछ भी कहने का हक मैं अपने में नहीं मानती। पर इस कहानी से जुड़ी कई बातों के कारण मैं दो एक बातें जानना-भर चाहती हूं कि क्या कपिल मुनि को घसीटने के कारण तो इतना कुछ हुआ। तब गुरु नानक को मक्का में जो लात मारी गई और उन्हें जो घसीटा गया। उसके कारण भी तो कुछ

न कुछ हुआ ही होगा···? इतना ही नहीं, जिस तरह से सगर पुत्र, पौत्र, प्रपौत्रों की असमय की मौत से उनकी आत्माएं भटकती रहीं, तब क्या ठीक उसी तरह हिंदू-मुसलमानों के दंगों के बीच जो भी बेमौत मौतें हुई हैं क्या वे सभी की सभी आत्माएं वायुमंडल में अभी भी भटक नहीं रही हैं?···इससे भी जटिल बात मेरे लिए पुनर्जन्म के दर्शन के अनुसार यह है कि ब्रह्मांड भर में नर व मादाएं दो तरह की आत्माएं होती हैं जो जन्म या मृत्यु के क्रम से योनियां तो बदलती रहती हैं मगर किसी भी योनि में कोई भी नर आत्मा मादा व मादा आत्मा नर योनि में जन्म नहीं लेती है। आज के वैज्ञानिक युग के संदर्भ में, लड़कों के लड़की में परिवर्तित होने के बावजूद आगे उनके बच्चा होते न देख, नर व मादा योनि की इस कल्पना को सच भी मान लिया जाए, तो तब एक प्रश्न यह खड़ा होता है कि कीड़े-मकोड़ों आदि की अनेक योनियों के बाद जब मनुष्य योनि में जन्म हुआ करता है तो जो आत्मा आज हिंदू है, वह अगले किसी जन्म में मुसलमान या ईसाई आदि नहीं हो सकती है क्या? क्या मुसलमान सभी जन्मों में मुसलमान व हिंदू हिंदू ही होता होगा क्या? और या फिर जब इस तरह से अलग-अलग मजहबों में अलग-अलग जन्मों में जन्म हुआ करता है तो फिर इस तरह ऐसा मजहबी द्वेष क्यों? फिर जब हिंदू मुसलमानों पर अत्याचार करता है या मुसलमान हिंदू व इसाइयों पर अत्याचार करता है तो फिर वह ऐसा क्यों नहीं सोचता कि हो सकता है अगले किसी जन्म में उसे विरोधी मजहब में जन्म लेना पड़ सकता है···? इतना ही नहीं, यदि यह सच है कि जो भी आदमी दूसरे के कर्मों का आज बदला ले रहा है तो तब वह यह कैसे नहीं सोचता कि वह जो कुछ भी बुरा आज कर रहा है उसका बदला उसे भी किसी न किसी जन्म में चुकाना पड़ेगा···। माना गुरु नानक की यह बात सच है कि जो बेइमान धार्मिक व्यक्ति दूसरों का चढ़ावा या चंदा इस जन्म में खाता है, वह अगले जन्म में दर-दर के ग्रास खाने वाले कुत्ते की योनि में जाता है तो जो लूट-खसोट, धोखाधड़ी इस जन्म में करता है उसे भी तो ऐसी ही सजा मिलती ही होगी उसके विधान में?

भय्या, मुसलमान की बेटी होने के कारण मेरी इन बातों का अर्थ गलत नहीं लगा बैठना। मैं तो सच्चे दिल से इन बारीकियों को जानना चाहती हूं। कारण, उनके द्वारा हमेशा ही सगर व भागीरथ का नाम लेने के कारण मुझे संदेह है कि कहीं वे हिंदू-मुसलमानों के दंगों में जो बेमौत मौतें हुई हैं···जो आत्माएं पुनर्जन्म के इस दर्शन के अनुसार अभी भी भटक रही हैं, उनके तरोतारण के लिए, कहीं वे इस धरती में किसी नए भागीरथ के पैदा होने की कामना के दुःख से तो दुःखी नहीं हैं? और या वे स्वयं भागीरथ की जैसी, उन सबके तरोतारण के लिए, तपस्या-सी कुछ करना तो नहीं चाहते हैं? यदि वे

ऐसा कुछ चाहते हैं, तो फिर मुझे भी तो कुछ करना ही होगा। क्योंकि जिन शास्त्र व पुराणों आदि में सगर व भागीरथ की बातें बताई हैं, उनमें यह भी तो कहा गया है—जैसे स्त्री के बिना कोई भी धर्म-कार्य नहीं हो सकते हैं, ठीक उसी तरह, स्त्री के पूर्ण सहयोग व कामना के बिना पुरुष कोई भी कार्य नहीं कर सकता है। इस बात को तो मोटे तौर पर व्यावहारिक जीवन में या परिवार में भी देखा जा सकता है कि जिस परिवार में स्त्री-पुरुष के विचारों में सामंजस्य है वह परिवार सुखी है। जहां नहीं है वह दुखी परिवार है। चाहे उसके पास अतुल सम्पत्ति ही क्यों न हो। फिर यह बात भी तो उन्हीं धार्मिक किताबों में कही गई है कि महाबली रावण को मारने पर भगवान राम को काफी दम्भ हो आया था। एक बार तो उन्होंने बातों बातों में मां सीता से यह तक कह दिया कि अगर तुम्हारा यह ख्याल है कि रावण को मारने के पीछे मेरी शक्ति या कामना थी तो यह गलत है। मैंने तो उसे स्वयं ही मारा है। इस पर मां सीता हंस पड़ी थीं। बोली थीं कि अगर ऐसी ही बात है तो एक रावण और है। उसमें अपनी शक्ति आजमाओ फिर। इस पर राम उस रावण से युद्ध के लिए चल पड़े। इस बार अब राम के साथ सीता व राम की संयुक्त शक्ति नहीं थी। इस बार अकेले राम लड़ रहे थे। यही कारण था कि उस नए रावण को राम मार नहीं पाए। बल्कि उल्टा उस नए रावण ने उन्हें मूर्छित कर दिया। जिसे सीता सह नहीं सकीं। तब उस विराट प्रकृति की शक्तिस्वरूपा सीता ने स्वयं विराट रूप धारण कर उस रावण को स्वयं अपने हाथों से मारा। इसीलिए मैं मां सीता की कहानी से प्रेरणा लेकर उनके पदचिह्नों को वंदना भर करना चाहती हूं। उनकी बातें पढ़कर मुझे अब यह विश्वास हो आया है कि जब तक इस धरती में मां सीता या सीता-सी कोई भी होगी तब तक इस धरती पर राम रहेंगे। और जब तक इस धरती पर राम रहेंगे तभी तक लक्ष्मण सा योद्धा भाई व भरत-सा त्यागी भाई भी होगा। और तभी तक मेरा देश अपने अतीत गौरव को भी पाएगा। इसीलिए मैं सोचती हूं कि उनके हर काम में सच्चे मन से उन्हें सहयोग दूं। इसीलिए मैं मां सीता या ऐसी माताओं की कहानियां पढ़ती ही रहती हूं।

पर अफसोस कि चाहते हुए भी मैं उस मां की उस महान तपस्या की कहानी नहीं पढ़ पाई हूं जिसने भागीरथ के साथ तपस्या की थी। क्योंकि गौरा की शक्ति के बिना जब राम उस रावण को नहीं मार सके तो भागीरथ गंगा को धरती पर लाने में अकेले कैसे सफल हो गए? ... यह विचित्र बात है कि भागीरथ की तो बखान जगह जगह होता है लेकिन ... की शक्ति उस तपस्विनी महान मां का ... कहीं नहीं। ... उस मां की ... और सभी ... महापुरुषों की

पत्नियों की भी यही स्थिति है। यही वात मेरी परेशानी की वात है कि ऐसा क्यों ? माना कि हम मुसलमानों में तो पर्दा था, मगर हिंदुओं में तो पर्दा नहीं। हम मुसलमानों की पत्नियां तो पर्दे में रहने के कारण, विल्कुल ही पर्दे में रह गईं, मगर हिंदू महापुरुषों की पत्नियां भी पर्दे में कैसे रहीं ? हो सकता है कि मेरा अध्ययन अभी अधकचरा ही हो। इसीलिए मैं चाहती हूं कि जहां तक संभव हो अधिक से अधिक अध्ययन कर उस मां की कहानी को जानूं, जिसने महान् भागीरथ के साथ तपस्या की थी। ऐसा इसलिए कि मुसलमान की वेटी या पत्नी होने के कारण मैं वैसा ही कुछ भले ही न कर सकूं, पर यदि उन्हें याद भी कर सकूं तो भी काफी है। पर भय्या लाख प्रयत्न करने पर भी, मुझे तो वैसी किताव न मिल पाई, यदि तुम···



खान साहव की वेगम के पत्र को पूरा पढ़ते ही मैंने उनकी अम्माजान की ओर देखा ही था कि पाया—वे कुछ ऐसी उत्सुकता से मेरी ओर देख रही हैं जैसे वे मेरी एक-एक प्रतिक्रिया को जहां नोट कर रही हों, वहीं वे कुछ ऐसी उम्मीद में हैं कि मैं निश्चय ही उन्हें ऐसी किताव वताऊंगा जिसमें भागीरथ की पत्नी की तपस्या की कहानी लिखी गई हो। इतना ही होता तो कोई वात थी, सवसे विलक्षण वात तो यह थी कि उन्हीं की वगल में अस्सी-नव्वे वर्ष का एक ऐसा वृद्ध वैठा था, जिसने वादामी रंग का खादी का कुर्ता तथा पैजामा पहन रखा था। मैंने अंदाजा लगाया कि ये निश्चय ही खान साहव के अव्वाजान हैं। अव मेरी प्रसन्नता का ठिकाना तो नहीं रहा, पर मैं मन ही मन घवराया भी कम न था कि जवाव दूं तो क्या दूं ? इससे पहले कि मैं उनसे वातचीत शुरू करता, उन्होंने स्वयं ही जहां अपना परिचय दे डाला। वहीं मुझसे पूछा, "वेटा, मेरे ख्याल से तुम तो मेरे वेटे अशरफ के ही साथ काम करते हो ना ?"

"जी हां।" अनायास ही मेरे मुंह से निकला। इससे पहले कि मैं उन्हें अपने बारे में बताता, खान साहब की अम्मीजान ने काजू व बादाम भरी एक प्लेट मेरी ओर सरका दी और बोलीं, "बेटा और चीज तो शायद, सुन…"

मैं अब अवाक्-सा उन दोनों को देखता ही रह गया। जी में आया कि कहूं—आप यह क्या कह रही हैं। मां का दिया जब सभी-कुछ बच्चे के लिए अमृत होता है तो फिर आप तो जो चाहें… मगर बोल कुछ भी नहीं पाया। पर तभी खान साहब के अब्बाजान स्वयं ही अपनी बात सुनाने भूमिका-सी बांधने लगे, 'बेटा, सुन ली क्या मेरी बिटिया की बातें। इनका उत्तर दे पाना इतना ही कठिन है जितना कि पूर्व व पश्चिम के अंतर को समझना। खैर, ये बातें बहुत पेचीदा हैं। इस समय तो मैं अपने किए पर पछतावे के दो आंसू बहाना चाहता हूं। कारण, मैंने कई लोगों से सुना है कि इधर एक आदमी आया है, जो मेरे बेटे अशरफ के बारे में जानने की वजह से कइयों से मिल रहा है। अपने बेटे के बारे में बता पाने की ताकत मैं अपने में नहीं पाता। हां अपने बारे में दो-एक बातें पछतावे में जरूर कहना चाहता हूं। अपने बेटे की बदौलत मैं आज जो कुछ हूं उससे पहले मैं अपने उन प्यादों में से था जिनके सामने भय व दहशत के कारण लोगों की कर्जदार निगाहें तो झुकी रहती थीं, पर अंदर ही अंदर वे उस नफरत की निगाहों से देखा करते थे। कितना भयानक था मैं तब जब लोग मेरे पास अपना कर्जा चुकता करने आते थे। और मैं था कि उनसे कहता [illegible] हमसे दोस्ती खत्म करना मांगता है। तोमने हामसे कर्ज में पैसा लिया था या दोस्ती में। हामको दोस्ती तोड़ने वाला पैसा बोलकुल नहीं चाहिए। दोस्ती में दिया पैसा वापस लिया जाएगा, जब हाम मांगेगा। [illegible] अगर तोम पैसा देना ही चाहते हो तो दे जाओ [illegible] महीने का ब्याज जितने दिन का हिसाब से वह बनता है। उसके बाद फिर देते रहना हर महीने ब्याज [illegible] हाम नहीं मांगेगा। लोग तब मेरे सामने गिड़गिड़ाते थे—[illegible] तो हम जिंदगी भर ब्याज ही देते रहेंगे। मगर मैं था कि दोस्ती खत्म करने के दंड के तौर पर उन्हें जान से मार देने की धमकी देता था। बिचारे वे लोग [illegible] अच्छा ब्याज देना समझ लौट पड़ते थे। तब मेरी आंखों में ब्याज पर ब्याज का नशा चढ़ा हुआ था। तब मैं [illegible] था कि दोस्ती का अर्थ जहां जिंदगी भर ब्याज देना है। [illegible] की गई गलती का [illegible] के लिए [illegible] लेना है। पर बेटे की बदौलत आज मैं [illegible] समझता हूं जो कर्जदारी के दौरान [illegible] सामने [illegible] की बदौलत अब आते हैं। अब आज [illegible]

यादें आती हैं तो कांप उठता हूं। लगता है जैसे पहली तारीखों को मारे भय के सामने आने वाले सभी चेहरे मुझे एक साथ बददुआएं दे रहे हैं। तब व्याज के पैसे देते समय उनके दिलों में होती उथल-पुथल का मैं एहसास नहीं करता था। पर आज एहसास ही नहीं करता हूं बल्कि अंदर ही अंदर छटपटा उठता हूं कि···तब लोक-लाजवश चोरों की तरह व्याज के पैसे वे देते जरूर थे··· मगर अंदर ही अंदर इतने अधिक छटपटाते थे कि जैसे कहना चाहते हों—यह मत सोचो कि तुम्हारे द्वारा हमसे जो हैवानियत का व्यवहार किया जा रहा है उसका वदला लेना हम जानते नहीं···मगर हकीकत यह है कि एक तो हम अलग-अलग विखरे हैं। दूसरा गुड़ देकर ज़हर खिलाने वाली वर्तमान व्यवस्था आए दिन हमें केवल घुटते रहने को मजबूर किए हुए है। मगर याद रख लो—मजबूरी का नाजायज फायदा उठाने वाला यह दौर अव अधिक चलने वाला नहीं है। वहुत जल्दी ऐसा दिन जरूर आएगा, जव इस तरह की हैवानियतों का पूरा हिसाव-किताव पूछा जाएगा···सौ चोट सुनार की व एक चोट लुहार की वाली कहावत की वात याद है न? वह तो मौका नहीं मिल रहा है वर्ना हम वताते कि इस तरह दूसरे की मजवूरी का नाजायज फायदा उठाने का मज़ा क्या चखाया जा सकता है···।

इतना ही नहीं, मुझे तव इस वात तक का एहसास नहीं था कि व्याज के पैसे वसूल करने में जिन चार आदमियों को अपना हथियार समझता था, वे मेरे अपने हथियार नहीं···वल्कि पैसों के ऊपर विके हुए ऐसे लोग हैं जिन्हें अधिक पैसा देकर कोई भी दूसरा, किसी भी समय खरीद सकता है। जवकि वेटे की वदौलत उन्हीं चारों के वदले रूप—चार पंडितों—को दुनिया में अव कोई भी नहीं खरीद सकता। ओफ, कितने अजीव थे वे क्षण··· जव एक ओर तो वेटे के कहने पर मैं लोगों के गिरवी जेवरों तक को लौटा आया···वहीं अपनी रोटी पर पड़ आए फरक के कारण वे मेरे उसी वेटे को मारने पर उतर आए। वह तो रसोइए ने ठीक वक्त पर मुझे वता दिया कि साहव, आज जाने क्या वात है कि वे चारों अभी-अभी अंधेरे में अशरफ को वाहर की ओर ले गए हैं। साहव, आज तो उन चारों की आंखों को देखकर डर लग रहा था···। तव रसोइया की वात सुन मैं कांप उठा था। तव पहली वार मैंने इस वात का एहसास किया था कि जिन चारों के वल पर मैं कूदता था, वे हकीकत में हैं क्या? क्या वताऊं वेटा, अगर मैं पांच मिनट वाद उनके पास पहुंचता तो शायद मुझे वेटे के वदले, वेटे की लाश भी नहीं मिलती। क्योंकि तव वहां तीन ओर दादा आए थे जिन्होंने वेटे की लाश को ले जाना था। मैंने अपनी कानों से सुना था, 'कमवख्त यह रखी है पेटी, तेरी लाश ले जाने के लिए। तूने ही छीनी है ना हमारी रोटी।' तव उनकी वात सुन मेरा रोम-

रोम कांप उठा था। जी में आया कि उन्हें पटकारूं, मगर एक बात सोच मैं सिहर ही उठा—यदि इस समय इन्होंने इसे छोड़ भी दिया तो ये कभी न कभी इसे मारकर ही छोड़ेंगे। इतना ही नहीं, पुलिस आदि की मदद लेना भी आसान न था। कारण, तब तो वे मुझे तक पकड़ते नहीं। यही कारण था कि मुझे तब उन गाजी की मिल्ली ताकत के आगे झुकना व गिड़गिड़ाना ही नहीं पड़ा। बल्कि, यह तक कहना पड़ा—अल्लाह के नाम पर रहम करो। मैं वचन देता हूं कि तुम्हें तब तक रोज भर ही खाना दिया करूंगा, जिस में किसी को पिटवाने पर दिया करता था। चाहे मैं तुमसे कोई काम लूं या नहीं। तब पूरे चार साल तक बिना किसी काम के मैंने उनको वही खाना दिया।

तब थोड़े ही दिनों बाद, जब भी मैं उन्हें मुर्गा व शराब देता, तभी कई बार मैं अंदर ही अंदर खीझ उठता था। लगता, जैसे अपने द्वारा पिटवाए सभी के सभी चेहरे एक-एक कर मुझपर फब्तियां कस रहे हों—अब मालूम पड़ा दूसरों को पीटना या पिटवाना कैसा होता है? दूसरों के पिटने वाले बेटों व तुम्हारे बेटे में फर्क क्या है? तुम अपने बेटे को पिटते देख जब ऐसा कह सकते हो, तो क्या अगर दूसरे पिटने वालों के पास पैसे होते तो क्या वे ऐसा ही कुछ नहीं कहते—जितना पैसा लेना है ले लो, मगर खुदा के वास्ते हमें नहीं पीटो। कई बार तो मुझे ऐसा तक लगा, जैसे कोई मुझसे कह रहा हो—इस बात को अच्छी तरह जान लो, दुनिया में कोई भी पिटना नहीं चाहता है…उसे तो पिटवाती है सिर्फ उसकी गरीबी। इतना ही नहीं, दूसरों को पीटते तुमने यह कभी सोचा कि बुरे का फल बुरा ही होता है। यह तो तुम्हारे कुछ अच्छे कर्म थे वर्ना तो…। तब मेरा माथा फटने-सा ही नहीं लगता बल्कि मुझे वे सभी के सभी चेहरे याद आने लगते, जिनके हाथों से मैं पूरी की पूरी तनख्वाह छीन लेता था…तब मुझे पैसा छीनते समय उनकी गिड़गिड़ाहट व उनका रुदन की यादें आती थीं…खान साहब हम पर रहम करो…घर में खाने का आटा नहीं है…घर में मेरी पत्नी बीमार है…घर में बीमार है बूढ़ा बाप या लड़का। तब इन वाक्यों को सुन मेरा जी सुन्न होता था। पर जब बेटे को बख्शने के एवज मैंने उनका कर्ज माफ किया… तब मेरी आंखों का पर्दा ही नहीं टूटा। बल्कि मैंने उन्हें उन सभी के कर्ज से भी उऋण करवाया, जिनके वे और कर्जदार थे। कारण, मुझे मालूम था कि मेरे बाद कभी उनकी तनख्वाह का उधार छीनने और भी कई ताक में रहा करते थे। अब तक भी मैं उन लोगों की बिरादरी को जा-जाकर पूछता हूं तथा मैं उन्हीं के बच्चे बेटों व नवासों का ख्याल करता हूं। यहां पहले व मेरी सूरत देखकर ही घबराकर अपने घरों से बाहर आ जाते थे…वहां अब वे मुझे बड़े ही आदर के साथ अपने घर में जबरदस्ती ऐसे बिठाते हैं जैसे कि मैं कोई गैर न होऊं बल्कि उनका अपना रिश्तेदार का ही

कोई ऐसा सदस्य होऊं जो कुछ कारण से कुछ समय के लिए ही बाहर गया हुआ हो। पर तब मुझे एक बात बेहद अखरती थी कि वे मेरी सूरत देखते ही मेरे बारे में बाद में पूछते हैं···पहले पूछते हैं मेरे बेटे के बारे में। पर अब लगता है कि बेटे के बारे में वे सही कहते थे। कारण, उसी की ही वजह से तो मैं बदला ? वर्ना मैं तो हैवानियत की ऐसी मूर्ति था जिसमें दया का लेश मात्र तक न था। यही कारण है कि मैं आज एहसास करता हूं कि पैसे के बल पर खरीदे गए आदमी व दिल जीते आदमी में कितना बड़ा अंतर होता है। मैंने उन चारों के सिर्फ शरीर को जीता था, जबकि मेरे बेटे ने उनके दिल को जीता है। मेरे द्वारा पैसे के बल पर खरीदे शरीर मेरे बेटे को मारने तक को उतर आए थे। जबकि बेटे द्वारा बदले चारों पंडित आज अपने शरीर के खून की आखिरी बूंद को भी बेटे के लिए कुर्बान करने को तैयार हैं।

इनकी ही बदौलत सन् अड़तालीस में वह सब हुआ जिस पर आज तो भले ही कोई यकीन कर ले, पर तब यकीन तक नहीं किया जा सकता था। मैं आज बेटे द्वारा खोली आंखों के बल पर दावे से कह यह सकता हूं—जो आदमी सिर्फ पैसे के बल पर दूसरे के शरीर को जीतकर अपने को अकलमंद समझते हैं···और इस पर इठलाते हैं, उनके बराबर दुनिया में मूर्ख कोई भी नहीं होता है। वे सबसे बड़ी भूल करते हैं। बेटे, आज बातों-बातों में तुमने मुझे वह घड़ी याद करा दी, जब देश के बंटवारे के दिनों मैंने घबराकर अपने बेटे से कहा था, 'अब हमारा यहां रहना ठीक नहीं। जैसे भी रहेंगे अपने मजहबी भाइयों के साथ रहेंगे। मेरे खयाल में हमें यहां से चले ही जाना चाहिए।' जानते हो तब उसने जवाब में कहा था, 'तुमने जाना है तो जाओ। मैं नहीं जाता। मैंने भी उसी गंगा-जमुना-नर्मदा व कावेरी का पानी पिया है जिसका पानी राम और कृष्ण ने पिया था। हां, मैं मक्का-मदीना जाने के लिए उधर से या नानक के सतलुज, झेलम व सिंध के पानी को देखने उधर जरूर चला जाऊंगा। मगर वहां का बिलकुल बनने कभी भी उधर नहीं जाऊंगा।' तब मैं अवाक्-सा बेटे की ओर देखता रह गया था। कारण, एक तो आदमी जो कुछ भी करता है सिर्फ अपनी औलाद के ही लिए किया करता है। दूसरा, उसके सामने अधिक कुछ कहने की तो अलग, एक-दो बातें भी कह पाने का मैं वैसे भी साहस नहीं जुटा पाता था। केवल अल्लाह से ही दुआ मांगता रह गया। पर अब जब भी मैं इधर टिके किसी मुसलमान परिवार को देखता हूं तब मेरे सामने हमेशा एक विचार उठता है—क्या इन सभी के अशरफों ने भी इसी धरती पर रहने की ज़िद की होगी ? और या स्वयं उन्होंने ही···इन्हीं विचारों के बीच अब जब भी मुझे वे दिन याद आते हैं—जब एक ओर हिंदू-मुसलमानों के दंगों की अफवाहें आखिरी सीमा पार कर हकीकत में बदलने लगी थीं।

यहाँ दूसरी ओर, मेरे हिंदू व सरदार भाई हमारे मुहल्ले को चारों ओर से घेरे हमारी रक्षा कुछ ऐसे कर रहे थे जैसे वे सबसे-सब यह कहना चाहते हों— चिंता न करो। इस सबके बावजूद अभी भी इस देश की धरती पर ऐसे लोग बहुत बचे हुए हैं, जिनकी धमनियों में जहां अभी भी महाराजा शिवि का रक्त बह रहा है। वही उन्हें उनका यह आदर्श याद है—जिसके अनुसार शरण में आए कबूतर तक को 'कबूतर' बनने देने के बदले उन्होंने अपने शरीर से उतना मांस काट-काटकर बाज को देना स्वीकारा जितना कि कबूतर का भार था। तब भला फिर यह कैसे संभव है कि उसी महाराजा शिवि के वंशज अपने जीते जी उन पर किसी भी किस्म का जुल्म होते देखें, जो इस धरती को शरण-दात्री धरती न मान पूरी तरह इसे अपनी ही धरती मान चुके हैं।

यह तो थी इधर की बात। अब मैं उधर की भी ऐसी ही गौरवमय बातें बताता हूं। इसलिए नहीं कि मैं एक मुसलमान हूं। बल्कि इसलिए कि वहां से बचकर आए कई हिंदुओं की जुबान से मैंने सुना है कि वहां से बचकर वे इसलिए नहीं आ पाए कि वे बचकर आ सकते थे। बल्कि, इसलिए कि वहां भी मेरे कई भाइयों ने महाराजा शिवि के आदर्श को याद कर, अपनी जिंदगी तक को हथेली पर रख, अपनी शरण में आए हिंदू भाइयों को बचाने का कोई और उपाय न देख, बुरका पहना-पहनाकर अपनी ताई चाची, मामी आदि बता-बताकर उन्हें उस जगह तक पहुंचाया जहां से उन्हें पूरा विश्वास हो गया कि अब वे सुरक्षित अपने हिंदुओं के देश में पहुंच ही जाएंगे। यह दूसरी बात थी कि उनका यह विश्वास बदनसीबी के कारण रास्ते में अभागा ही बनकर रह गया। क्योंकि पाकिस्तान के उन दिनों, उधर तो यह तक स्थिति थी कि जो कोई मेरा मजहबी भाई हिंदुओं को बचाता था, उस भी वही सजा दी जाती थी जो हिंदुओं के लिए कुछ लोगों ने मुकर्रर कर रखी थी। यही वजह है कि ऐसे अपने मजहबी भाइयों की बातें सुन सुन मेरी छाती गर्व से फूली समाती है कि शिवि की धरती की नदियों का पानी पीकर या यहां रहकर उन्होंने भी उनके आदर्श को निभाया। अब रही बात यह कि इतना सब कुछ होते हुए भी गला कटा व कैसे हुआ? इसका उत्तर पाने का जब भी मैं प्रयास करता हूं तभी मुझ वे क्षण याद हो आते हैं जब मैंने जिंदगी में पहली बार अपने घर [illegible] घबराया हुआ पाया था। और जिनकी घबराहट की वजह मात्र [illegible] समस्त राष्ट्रपिता बापू की सेवाओं का बदला [illegible] था। तब इस दुखद समाचार को सुन मैं [illegible] था। कुछ देर बाद जब उन [illegible] पिता की हत्या करने वाला कोई मुसलमान [illegible] गहरा अर्थ मैं समझ नहीं पाया था। [illegible]

तो यह सोचते ही कांप उठता हूं कि अगर हत्या करने वाले के मुंह से झूठ
ो यह निकल आता कि मैं मुसलमान हूं, तो इसका तो बाद में फैसला
कि हत्या करने वाला हिंदू था या मुसलमान ? मगर हिंदू व मुसलमानों
की गलतफहमियों का फैसला पहले हो गया होता। तब शायद मेरे देश
हमेशा-हमेशा के लिए कमज़ोर बना देने के सपने सजोने वालों के सपने
ार ही नहीं हो आते। बल्कि, दो मजहबों में बंटते देशों के बीच की
ाएं ऐसे बंट जातीं कि अतीत की स्मृतियों की यादें ताजा करने का साहस
बटोर नहीं पाता। आदमी और सब भूल सकता है मगर अपने जन्म-
ा को कभी नहीं···।

तब राष्ट्रपिता की हत्या के सातवें दिन जब मेरे बेटे ने पहली बार खाना
ा तो मेरे बेटे ने कहा था—फिरंगियों की ज़बरदस्त चाल के बावजूद अल्लाह
ईश्वर की दुआ से, और या अपने पुरखों के प्रताप से हम अब बच गए हैं।
वह दिन दूर नहीं, जब हमें हिंदू-मुसलमान कहकर कमज़ोर देखना चाहने
ों को अपनी आंखों से यह देखना पड़ेगा कि गंगा, जमुना, नर्मदा, कावेरी व
के पानी पीने वाले तो क्या, दजलाफरात व नील तक के पानी वाले सभी
भी यह समझ गए हैं कि सदियों पहले उन सब के पुरखे एक साथ रहा
थे और वे सब एक थे। इतना ही नहीं, उन्हें यह तक देखना पड़ सकता है
जिस तरह एक बाप के कई बेटे बंटवारे के कारण, अलग-अलग रहने पर
स में भले ही झगड़ते रहते हैं। मगर, बाहर के किसी के द्वारा एक को भी
मारने पर जैसे वे सब एक हो जाते हैं, ठीक वैसे ही ये सबके-सब एक हो
हैं। तब हम सबको आपस में लड़वा अपना उल्लू सीधा करने वाले इन
मच्छों के आंसू बहाने वालों को, यथार्थ का एहसास करने को मजबूर होना
ड़ेगा···। तब बेटे की बात की गहराई को मैं समझ नहीं पाया था। हालांकि
हास के पन्नों में मैंने यह खींचतान पढ़ी थी कि आर्य मध्य एशिया से यहां
हैं या यहां से उधर बढ़े हैं। पर आज मैं अपने बेटे की बातों की गह-
यों पर सोचते-सोचते यह एहसास करता हूं कि एशिया भर में रहने वाले
सबका जो रंग काला है उसका कारण सिर्फ यह है कि सदियों पहले हम
एक थे। रही बात इधर से उधर जाने या उधर से इधर आने की,
के बारे में मेरा दृढ़ विश्वास है कि मध्य एशिया जैसे कम विकसित जगह
ाकर आदमी दूसरी जगह और अधिक विकसित तो हो सकता है पर यह
पि संभव नहीं कि अधिक विकसित जगह से जाकर आदमी अपनी पुरानी
ी को भूल जाए। अब रही बात, इधर से उधर या उधर से इधर के
जूद नैसर्गिक मूल गुणों की। उनके बारे में मेरा सिर्फ इतना भर कहना
क इस सारी माटी के लोगों ने जहां दूसरों के दिलों को जीतना आदर्श

माना है। यही वे जहां भी गए, उसी जगह ऐसे घुले-मिले कि उन्हें पहचानना तक कठिन हो गया कि उस जगह कौन लोग बाहर से आए हैं और कौन वहां के मूल निवासी थे।

बेटे, मैं ये बातें किसी का दिल दुखाने को नहीं कह रहा हूं। बल्कि, महज इसलिए कह रहा हूं कि मुसलमान होने के नाते जब भी मैं मक्का-मदीना जाता हूं, वहां अपने से मिलने वाले लोगों के उन चेहरों को कभी भूल नहीं सकता—जो मेरे देश की तरक्की की बातें सुन-सुन ऐसे गर्व का एहसास करते हैं जैसे कोई दूसरा देश तरक्की नहीं कर रहा हो। बल्कि उनका अपना देश तरक्की कर रहा हो। इतना ही नहीं, देश की तरक्की में हिंदू-मुसलमान के कंधे से कंधा मिलाने की मेरी बात सुन एक-दो चेहरों ने तो मुझसे अश्रुपूर्ण पलकों के बीच यहां तक कहा—'भय्या तुम हिंदू-मुसलमान दोनों पहले भी भाई-चारे से रहा करते थे···अब बाद में भी वैसे ही रहने लगे हो। तब यह क्या बात थी जो तुम लोग उन दिनों इस भाई-चारे को भूल गए।' तब उनकी इस बात को सुन मेरा सिर जहां लज्जा से झुक आया। वहीं मैं सिसक-सिसककर रो पड़ा था। जी चाहता था—उन्हें हिंदू व सरदारों द्वारा अपनी की गई रक्षा की बातें व उधर के मेरे मजहबी भाइयों द्वारा हिंदुओं को बचाने की एक-एक बात सुनाऊं। और उसमें कहूं कि वे तो सिर्फ गर्दिश के दिन थे। वर्ना · पर मेरा दुर्भाग्य कि लज्जावश मेरे होंठ तक नहीं खुल पाए। तभी उनके साथ वाले दूसरे आदमी ने मेरी भावनाओं को ताड़कर कहा था, 'ऐसी बुरी बातों को भूल ही जाना बेहतर होता है। क्योंकि ऐसा एक तुम्हारे ही यहां नहीं, दुनिया में कई जगह हुआ है। हमारे यहां भी कई बार हुआ है। जिसे इतिहास के पन्ने तो याद कराते हैं, पर जीवन में उन्हें भूलकर ही जीना होता है। अब तो हम दजला-फरात व इनसे दूर-दूर तक रहने वाले सबके-सब यह चाहते हैं कि तुम हमारी ओर से अपने हिंदू भाइयों से हाथ जोड़कर यह कहना कि पहले तो हमें अपना भी ऐसा ही भाई समझना जैसा कि वे तुम्हें समझते हैं। यदि इतना न भी समझ सका तो कम से कम इतना तो जरूर समझना, मक्का-मदीना को याद करने वाले तुम्हारे भाई हमारे भी मजहबी भाई हैं···। हो सकता है उनकी इन बातों का तुम यह अर्थ लगाओ कि वे लोग मेरे भाइयों के यहां काम करने वालों में से होंगे। ये बातें तो वहां के आम आदमी के दिल की बातें हैं। अब रही मेरे दान की बातें। इस बारे में सच्चे दिल से मैं उन सभी का शुक्रिया अदा करता हूं, जो अधिक से अधिक पैसा कमाकर मेरे भाइयों को इसलिए देते हैं कि मेरे बेटे का नाम सुनकर वे भी उसकी इज्जत करते हैं। क्योंकि उन्हें मालूम है कि मेरे बेटे ने फैसला कर रखा है कि जितना भी हो सके वह उन लोगों की मदद किया

तो यह सोचते ही कांप उठता हूं कि अगर हत्या करने वाले के मुंह से झूठ
ही यह निकल आता कि मैं मुसलमान हूं, तो इसका तो बाद में फैसला
ता कि हत्या करने वाला हिंदू था या मुसलमान ? मगर हिंदू व मुसलमानों
नों की गलतफहमियों का फैसला पहले हो गया होता। तब शायद मेरे देश
ो हमेशा-हमेशा के लिए कमज़ोर बना देने के सपने सजोने वालों के सपने
साकार ही नहीं हो आते। बल्कि, दो मज़हबों में बंटते देशों के बीच की
सीमाएं ऐसे बंट जातीं कि अतीत की स्मृतियों की यादें ताज़ा करने का साहस
कोई बटोर नहीं पाता। आदमी और सब भूल सकता है मगर अपने जन्म-
स्थान को कभी नहीं…।

तब राष्ट्रपिता की हत्या के सातवें दिन जब मेरे बेटे ने पहली बार खाना खाया तो मेरे बेटे ने कहा था—फिरंगियों की ज़बरदस्त चाल के बावजूद अल्लाह या ईश्वर की दुआ से, और या अपने पुरखों के प्रताप से हम अब बच गए हैं। अब वह दिन दूर नहीं, जब हमें हिंदू-मुसलमान कहकर कमज़ोर देखना चाहने वालों को अपनी आंखों से यह देखना पड़ेगा कि गंगा, जमुना, नर्मदा, कावेरी व सिंध के पानी पीने वाले तो क्या, दजलाफरात व नील तक के पानी वाले सभी के सभी यह समझ गए हैं कि सदियों पहले उन सब के पुरखे एक साथ रहा करते थे और वे सब एक थे। इतना ही नहीं, उन्हें यह तक देखना पड़ सकता है कि जिस तरह एक बाप के कई बेटे बंटवारे के कारण, अलग-अलग रहने पर आपस में भले ही झगड़ते रहते हैं। मगर, बाहर के किसी के द्वारा एक को भी ललकारने पर जैसे वे सब एक हो जाते हैं, ठीक वैसे ही ये सबके-सब एक हो आए हैं। तब हम सबको आपस में लड़वा अपना उल्लू सीधा करने वाले इन मगरमच्छों के आंसू बहाने वालों को, यथार्थ का एहसास करने को मजबूर होना ही पड़ेगा…। तब बेटे की बात की गहराई को मैं समझ नहीं पाया था। हालांकि इतिहास के पन्नों में मैंने यह खींचतान पढ़ी थी कि आर्य मध्य एशिया से यहां आए हैं या यहां से उधर बढ़े हैं। पर आज मैं अपने बेटे की बातों की गह-राइयों पर सोचते-सोचते यह एहसास करता हूं कि एशिया भर में रहने वाले हम सबका जो रंग काला है उसका कारण सिर्फ यह है कि सदियों पहले ह
सब एक थे। रही बात इधर से 'उधर जाने या उधर से इधर आने क
उसके बारे में मेरा दृढ़ विश्वास है कि मध्य एशिया जैसे कम विकसित ज
से आकर आदमी दूसरी जगह और अधिक विकसित तो हो सकता है पर
कदापि संभव नहीं कि अधिक विकसित जगह से जाकर आदमी अपनी पु
थाती को भूल जाए। अब रही बात, इधर से उधर या उधर से इध
बावजूद नैसर्गिक मूल गुणों की। उनके बारे में मेरा सिर्फ इतना भर
है कि इस सारी माटी के लोगों ने जहां दूसरों के दिलों को जीतना

माना है। वहीं वे जहां भी गए, उसी जगह ऐसे घुले-मिले कि उन्हें पहचानना तक कठिन हो गया कि उस जगह कौन लोग बाहर से आए हैं और कौन वहां के मूल निवासी थे।

बेटे, मैं ये बातें किसी का दिल दुखाने को नहीं कह रहा हूं। बल्कि, महज इसलिए कह रहा हूं कि मुसलमान होने के नाते जब भी मैं मक्का-मदीना जाता हूं, वहां अपने से मिलने वाले लोगों के उन चेहरों को कभी भूल नहीं सकता—जो मेरे देश की तरक्की की बातें सुन-सुन ऐसे गर्व का एहसास करते हैं जैसे कोई दूसरा देश तरक्की नहीं कर रहा हो। बल्कि उनका अपना देश तरक्की कर रहा हो। इतना ही नहीं, देश की तरक्की में हिंदू-मुसलमान के कंधे से कंधा मिलाने की मेरी बात सुन एक-दो चेहरों ने तो मुझसे अश्रुपूर्ण पलकों के बीच यहां तक कहा—'भय्या तुम हिंदू-मुसलमान दोनों पहले भी भाई-चारे से रहा करते थे···अब बाद में भी वैसे ही रहने लगे हो। तब यह क्या बात थी जो तुम लोग उन दिनों इस भाई-चारे को भूल गए।' तब उनकी इस बात को सुन मेरा सिर जहां लज्जा से झुक आया। वहीं मैं सिसक-सिसककर रो पड़ा था। जी चाहता था—उसे हिंदू व सरदारों द्वारा अपनी की गई रक्षा की बातें व उधर के मेरे मजहबी भाइयों द्वारा हिंदुओं को बचाने की एक-एक बात सुनाऊं। और उससे कहूं कि वे तो सिर्फ गर्दिश के दिन थे। वर्ना ' पर मेरा दुर्भाग्य कि लज्जावश मेरे होंठ तक नहीं खुल पाए। तभी उसके साथ वाले दूसरे आदमी ने मेरी मानसिकता को ताड़कर कहा था, 'ऐसी बुरी बातों को भूल ही जाना बेहतर होता है। क्योंकि ऐसा एक तुम्हारे ही यहां नहीं, दुनिया में कई जगह हुआ है। हमारे यहां भी कई बार हुआ है। जिसे इतिहास के पन्ने तो याद कराते हैं, पर जीवन में उन्हें भूलकर ही जीना होता है। अब तो हम दजला-फरात व इनसे दूर-दूर तक रहने वाले सबके-सब यह चाहते हैं कि तुम हमारी ओर से अपने हिंदू भाइयों से हाथ जोड़कर यह कहना कि पहले तो हमें अपना भी ऐसा ही भाई समझना जैसा कि वे तुम्हें समझते हैं। यदि इतना न भी समझ सको तो कम से कम इतना तो जरूर समझना, मक्का-मदीना को याद करने वाले तुम्हारे भाई हमारे भी मजहबी भाई हैं···। हो सकता है उनकी इन बातों का तुम यह अर्थ लगाओ कि वे लोग मेरे भाइयों के यहां काम करने वालों में से होंगे। ये बातें तो वहां के आम आदमी के दिल की बातें हैं। अब रही मेरे दान की बातें। इसके बारे में सच्चे दिल से मैं उन सभी का शुक्रिया अदा करता हूं, जो अधिक से अधिक पैसा कमाकर मेरे भाइयों को इसलिए देते हैं कि मेरे बेटे का नाम सुनकर वे भी उसकी इज्जत करते हैं। क्योंकि उन्हें मालूम है कि मेरे बेटे ने फैसला कर रखा है कि जितना भी हो सके वह उन लोगों की मदद किया

करेगा, जो गरीबी के कारण टूटने ही वाले होते हैं। यह इसलिए कि कहीं ऐसा न हो कि पैसों के कारण इस धरती के गौरव को बढ़ाने पैदा हुआ, मेरे देश का नया भरत, भरत बनने से पहले ही कहीं कुम्हला न जाए। उसका विकास रुक न जाए। और या इसलिए कि कहीं ऐसा न हो कि नए भरत को जन्मने पैदा हुई कोई मां गरीबी के कारण अविवाहिता न रह जाए…।

वैसे यह काम बहुत कठिन है। क्योंकि ऐसों की तादाद सौ में से अस्सी है। होने को तो शेष बीस प्रतिशतों की भी लगभग ऐसी ही हालत है। मगर उनकी यह हालत उनके सफेद कपड़ों के अंदर छिपी हुई है। यही वजह है मेरा बेटा ज़रा से भी प्रचार से घबराता है, क्योंकि ऐसे में तो यहां लोगों का तांता ही लग जाएगा। बेटा कहता है—तब तो उसे भी भागकर जंगलों की ही शरण लेनी पड़ेगी। जबकि मैं चाहता हूं कि समाज में रहकर उनका जैसा ज्ञान हासिल करूं। 'नेति-नेति' सामूहिक हित के अनुकूल भी तो नहीं। खैर, यह तो दूसरी बात है। असल बात तो है दान की। उसके बारे में बेटे तुम स्वयं ही सोचो—पैसा कमाकर या इकट्ठा करके देने वाले दानी हुए या मैं? जो दूसरों की कमाई को बांटता है। वह भी इसलिए कि बेटा कहता है। फिर एक बात और, जब इस धरती पर दान या कुर्बानी की कहानियां हज़रत इब्राहिम, महादानी महाराजा बली, महादानी कर्ण व दधीचि की जैसी परिपाटियां हैं तो बेटे के शब्दों में तो हमारा सबका मिलाजुला दान इनके पांवों की धूलभर भी नहीं है। अपने मज़हब की अच्छी बातों का ढिंढोरा तो सारी दुनिया वाले पीटते हैं, पर बेटे के विचारों के अनुसार मैं अपने मज़हब की बात या इदुलजुहा की कुर्बानी की कहानी नहीं कहूंगा। हां, यह ज़रूर चाहूंगा कि जिस तरह मैंने तुम्हारे मज़हब की ये कहानियां पढ़ी हैं, ऐसे ही तुम भी मेरे मज़हब की बातें पढ़ो। ओफ़, महादानी महाराजा बलि के सामने मेरी छोटी-सी इम्दाद क्या हुई, जिन्होंने अपने गुरु शुक्राचार्य के आगाह करने के बावजूद तीन कदम ज़मीन के रूप में ब्राह्मण को तीनों लोकों का राज्य दान दे दिया… महादानी दधीचि ने तो देवताओं को अपनी रीढ़ की हड्डी तक दान में सहर्ष इसलिए दे दी कि उससे ब्रह्मास्त्र बनाकर वे उस राक्षस को मार सकें, जिसकी वजह से वे परेशान थे। वैसे तो राज्य दान देना, शरीर दान देना व बेटे की कुर्बानी का दान कोई कम दान नहीं, पर सर्वश्रेष्ठ दान तो है महादानी कर्ण का। जिसने यह सब जानते हुए कि वह कवच कुंडल दान नहीं दे रहा है बल्कि उन्हें देकर अपनी मृत्यु को, अपने उसी प्रतिद्वंद्वी अर्जुन के हाथों, बुलावा दे रहा है जिसे मारकर अपनी शूरवीरता सिद्ध करने का कभी उसने संकल्प किया था। क्योंकि उनके रहते अर्जुन तो क्या, ब्रह्मा तक उसे युद्ध में नहीं मार सकता था। जबकि वह किसी को भी परास्त कर सकता था। बेटे, जब दान की

ऐसी ऐसी कहानियां हैं, तो उनके सामने मेरी यह छोटी-सी इमदाद है क्या ? बेटा, एक बात पूछूं तो बुरा मत मानना कि क्या तुमने हदुल्जुहा की कहानी पढ़ी है ?

अब पहले तो मैं अवाक्-सा उन्हें देखता ही रह गया। फिर आत्म-ग्लानिवश जहां मेरा सिर झुक आया। वहीं अपनी अज्ञानता के दुःख में मेरी पलकें गीली हो आईं। बेटे मेरे सामने आंसू न बहा। अब तो बेटे की बदौलत किसी की भी आंखों के आंसू सहे नहीं जाते। चाहे आंसू गरीबी के दुःख के हों या अज्ञानता की ग्लानि के। मगर वे होते तो एक जैसे ही हैं। बेटे तुम लोग हमारे धर्म की बातें क्या पढ़ोगे। तुमने तो अंग्रेजी के दो-चार शब्द ट्याम-टुम पढ़ अपने ही धर्म की किताबें पढ़ना जहां छोड़ दिया है। वहीं बड़े गर्व के साथ अपने पूर्वजों को भी बुरा-भला कहना सीख लिया है। जबकि हकीकत यह है कि अंग्रेजी वाले खुद अभी तक तुम्हारे पूर्वजों को समझने की ताबड़तोड़ कोशिश करते हुए भी नहीं समझ पा रहे हैं। तुमसे तो मेरे मजहबी भाई लाख गुना अच्छे हैं जो और अधिक ज्ञान हासिल करने अंग्रेजी तो पढ़ते हैं मगर न तो अपने मजहबी कायदे छोड़ते हैं ''न अभी तक हमारे हजूर या हमारे पुरखों के खिलाफ एक शब्द भी बुरा कहने का साहस जुटाते हैं। वैसे दूसरों को जानने या समझने के लिए यह जरूरी होता है कि आदमी अपने को समझे। भला जो अपने को ही नहीं समझे, वह दूसरों को क्या समझेगा ? मुझे इसी बात का गहरा दुःख है कि जिस महान संस्कृति का आज तक सारी दुनिया लोहा मानती है'''उसके कर्णधार आज यह तक समझ नहीं पा रहे हैं कि एड़ी-चोटी का जोर लगाने के बावजूद, जो लोग हमारी इस धरती में, हमारी इसी सांस्कृतिक विलक्षणता के कारण वैसा नहीं करा पाए, जैसा कि वे इसी महान् एशिया के बिल्कुल उस पश्चिमी छोर पर करा पाए हैं—जहां से ही आज का पश्चिमी शुरू होता है। इस बात पर विचार करने की आज आवश्यकता है। बेटे, मेरी बात पर किसी को भी अगर संदेह है तो वह एक ओर तो हमारी इस धरती के तीनों टुकड़ों को देखे, जहां गर्दिश के दिनों के बावजूद भाईचारे के अवशेष आज भी ज्यों के त्यों हैं। जबकि दूसरी ओर एक बार घबरा देकर लोगों को रिफ्यूजी क्या बनाया गया बस व रिफ्यूजी ना आए दिन उन लोगों तक को रिफ्यूजी ही बनाते-बनाते चल आ रहे हैं जिन्होंने उनको शरण देने की हिमाकत की थी। बेटे मेरा कहना कहता है कि अगर किसी ने पूर्व व पश्चिम के अंतर को समझना है तो [illegible] वह एक ओर तो हमारी धरती के इन तीनों टुकड़ों को देखे। दूसरी ओर देखे [illegible] एशिया के उस पश्चिमी छोर को जहां प्रभु ईसू को सूली पर लटकाया गया था। इसके बाद वह इस बात पर विचार करे—यह आश्चर्यजनक बात क्या है कि

धार्मिक बंटवारे के बावजूद यदि इधर लोग फिर रिफ्यूजी बने तो हिंदू मुसलमान एक साथ रिफ्यूजी बने और यदि लौटे तो एक साथ ही लौटे। क्यों ? इसके बाद फिर वह इस बात पर विचार करे—जहां इधर रिफ्यूजियों को इंसानियत के मौलिक अधिकार दिलाने भर के लिए, अणुयुद्ध तक का खतरा अपनी छाती में मोल लेकर भी गर्व नहीं किया जाता है तो वहीं दूसरी ओर इस बात पर गर्व किया जाता है कि आए दिन अपनी ओर सेनाएं भेजकर, कितने और लोगों को वे बेघरबार कर सकते हैं। इस अंतर को समझने के बाद ही, पूर्व को समझने की पहली सीढ़ी शुरू होती है। मेरा बेटा कहता है कि इसके माने यह कदापि नहीं कि पश्चिम में ऐसे लोग हैं ही नहीं, जो मानवीय इन गहराइयों को समझते हैं। पर दुःख इस बात का है कि उधर अभी ऐसे लोग बहुत थोड़े हैं जब कि इधर ऐसे लोग थोड़े हैं जो इन गहराइयों को नहीं समझते हैं। पर उधर के वे थोड़े लोग ही कम वंदनीय नहीं। क्योंकि इधर की सुप्तावस्था के बीच उन्होंने कई बार ऐतिहासिक नाजुक क्षणों में मानवता को विनाश से तक बचाया है। अब रही एशिया के पूर्वी व पश्चिमी दो टुकड़ों के अंतर की बात—इसका सबसे बड़ा कारण यह है, इधर के लोगों के पुरखे सुदूर अतीत में एक थे। दूसरा यह कि यहां हम दोनों मजहबी अंतरों के बावजूद एक ऐसी मोहब्बत के माहौल के बीच रहा करते थे, जिसमें हिंदू-मुसलमानों के फिरके से ऊपर उठकर हम एक-दूसरे को सच्चे दिल से ताऊ-चाचा, ताई-चाची कहा व माना करते थे। यह ही वजह थी कि आदमी जब तक इन रिश्तों के बीच रहा, तब तक वह दूसरे मजहब का होते हुए भी ऐसा आदमी नहीं रहा, जिस पर हाथ चलाना तो अलग, गर्दिश के उन दिनों भी, सम्मान से उन्हें प्रणाम या सलाम करना आदमी किसी भी हालत में नहीं भूल पाया। हां, जब भी वह इन रिश्तों से कटकर अलग हो आया, तब ही वह हिंदू के लिए मुसलमान व मुसलमान के लिए हिंदू बन आया। इनके साथ तीसरा कारण यह था—हमारे पुरखों ने हमेशा 'जीओ और जीने दो' को आदर्श माना। जबकि, पश्चिम ने सिर्फ 'जीओ' को ही आदर्श माना। बेटा, मैं बेटे की ये बातें किसी के दिल दुःखाने को नहीं कह रहा हूं। बल्कि, इतिहास के उन पन्नों की याद भर कराना चाहता हूं—जिनमें कई जीओ-वादी बने और कई मिटे। मगर 'जीओ और जीने दो'—वादियों ने हमेशा ऐसे जीओ-वादियों को बनते-मिटते ही देखा।

बेटे, अब अगर मुझसे कोई कहे कि ऐसा क्यों होता है। मैं तो अब बेटे की बदौलत खुली आंखों के बलपर सिर्फ यही कहूंगा कि यह सब महज छोटे-छोटे स्वार्थों व अज्ञानता के ही कारण होता है। अब भला कोई बताये कि प्रभु ईशू व राष्ट्रपिता बापू जैसे महापुरुषों के साथ जो कुछ भी

किया गया, वह अज्ञानता नहीं तो और क्या ? सच कहो तो मेरे बेटे ने, मेरी आंखों में चढ़े झूठे चश्मे को उतार फेंका है। वर्ना मैं तो उन आदमियों में से था जो यह कहने में झिझकता नहीं था—'लाश बाद में उठाओ, पहले मेरा हिसाब चुकता करो।' इतना ही नहीं, मैं मक्का-मदीना तो जाता था पर इस बात तक से बेखबर था कि प्रभु ईशू को पैदा करने का गौरव, इस महान् एशिया को ही जहां प्राप्त है। वहीं, उनका जन्म स्थान मक्का-मदीना के पास ही है। शरीर व दिल की भाषा के अन्तर को समझना तो मेरे लिए बहुत दूर की बात थी। बेटा, इसीलिए मैं मानता हूं कि जन्म देने वाला उसका पिता भले ही मैं हूं। पर इन्सानियत का पाठ पढ़ाने वाला पिता या गुरु मेरा अपना बेटा है। इतना ही नहीं। अब तो मैं एहसास करता हूं कि गोरे व काले के फिरके मिटें या नहीं, मगर हकीकत यह है कि दिल न तो गोरा होना है और न काला। हां, जिस दिल में किसी भी किस्म का मैल होता है, चाहे वह कितना ही गोरा क्यों न हो, उसे मेरी तरह सिर्फ यह ही सुनना पड़ता है—'यह रखी है बेटी तेरी लाश ले जाने के लिए। तूने ही छीनी थी न हमारी रोटी।' जबकि जिसका दिल उजला होना है, चाहे वह शरीर से काला क्यों न हो…चाहे वह सिर्फ लंगोटी में रह पाए…मगर वह गोरे-काले सबके लिए ही वंदनीय होता है। यह बात दूसरी है कि ऐसे व्यक्ति की कद्र उसके जीते जी हो जाए या…

बेटे, दिल की भाषा की करामात की बातें मेरे सालों भाई सुनाते हैं कि जबसे उन्होंने मेरे बेटे की बातें मानकर अपने-अपने कल-कारखानों आदि के मजदूरों की तनखाएं व सुविधाएं अपने आप बढ़ाई हैं तब से उनके कल-कारखानों व तेल के कुओं में दिन दूना रात चौगुना काम होने लगा है। बल्कि वे ही मजदूर जो पहले कामचोरी किया करते थे। वे ही अब—ऐसे काम करते हैं जैसे वे किसी और का काम नहीं कर रहे हैं बल्कि अपना खुद का काम कर रहे हैं। इतना ही नहीं, अब उनके यहां जहां किसी किस्म की चोरी या गड़बड़ी नहीं होती है। यहीं, यहां तक होता है—कई बार, मेरे भाई उनको और अधिक पैसे देना चाहते हैं मगर वे कहते हैं—ये सब पैसे हमारी ओर से हमारे आका बादशाह साहब के पास पहुंचा दो। हमें ज्यादा पैसों से क्या करना। हमें अब, न रोटी की फिक्र है…और न बच्चों की जिंदगी की ही…। तब मेरे भाइयों के यहां ऐसा कैसे न हो। मेरे भाइयों के यहां काम करने वाले सभी मजदूरों व कर्मचारियों को, दूसरी जगह वैसा ही काम करने वालों से लगभग दुगुनी तनखा मिलती है। मिले भी कैसे नहीं, महंगाई भत्ता ईमानदारी से, सबसे कम तनखा पाने वाले को अधिक दिया जाता है। उसके बाद महंगाई भत्ता अधिक तनखाओं की ओर बढ़ने के बदले, कम होता चला जाता है। कारण, मेरा बेटा

कहता है कि महंगाई भत्ता लिपस्टिक, क्रीम, पाउडर खरीदने के लिए नहीं होता। वल्कि दैनिक जीवन की ज़रूरी चीज़ों पर बढ़ी कीमतों का भार कम करने के लिए दिया जाता है। इसके लिए मेरे भाई प्रतिशतता का दिखावा वाला ढोंगी आधार नहीं मानते हैं। इसी तरह से मेरे भाई, बिना किसी किस्म के जद्दोजहद के बोनस भी मज़दूरों को, औरों से ज्यादा देते हैं। ऊपर से सुख-दुःख में मजदूरों को दी जाने वाली सुविधाएं अलग। पर बेटे, ऐसा कर पाना आसान नहीं है। ऐसे के कारण मेरे भाइयों को मजदूरों से पूरा सहयोग भले ही मिलता है। मगर उनके ही जैसे दूसरे कारखानों के मालिकों से पग-पग में उन्हें असहयोग मिलता है। कारण, ऐसे में जहां उत्पादन बढ़ता है वहीं बनावटी कमी पैदा कर अनाप-सनाप पैसा जोड़ने वालों की स्वार्थसिद्धि नहीं हो पाती है। इतना तो क्या, शुरू के कई वर्षों तक ऐसे कई बार प्रयत्न किए गए कि मेरे भाइयों के कल-कारखानों व तेल के कुओं में आग लगा दी जाए। मुझे आज भी याद है वह दिन, जब मैं अहमदाबाद गया था। तब एक जुलूस मेरे भाई की कपड़े की मिल के पास से गुजर रहा था। तब एकाएक कुछ शरारती मिल के अंदर घुस, मिल में आग लगाने लगे। वह तो हमारे मज़दूरों ने ज़िंदगी तक की परवाह न कर आग बुझा दी। वर्ना सारी मिल राख में बदल जाती।

इतना ही नहीं, मुझे आज भी याद है वह दिन—जब ऐसी घटनाओं से तंग आ इस बारे में अशरफ से मैंने बातें की थीं। तब पहले तो वह हंस भर दिया था। फिर जब मेरे भय्या ने काफी ज़ोर दिया था। तो उसने कहा था—तुम जो कुछ उन्हें देते हो उसके बदले में उन्होंने अपनी ज़िंदगी की भी परवाह न कर तुम्हारे कारखाने को बचाया। क्या यह कम है? मेरी बात अगर मानो तो उनकी सुविधाएं कम करने के बदले, उन्हें और ज्यादा सुविधाएं दो। क्योंकि देर सवेर सबको ही सुविधाएं देनी पड़ेंगी। क्योंकि उत्पादन के कम होने का कारण, मज़दूरों के सिर थोपने तथा उन्हें बेवकूफ समझने का यह क्रम अधिक अब चलने वाला नहीं है"। रही मेरी बिटिया की बातें, उनके बारे में अब भी मैं कुछ नहीं जानता। यही कारण था कि एक बार मैंने अपने बेटे से इनके बारे में पूछा था। तब वह हंसते हुए बोला था—'लोग गंगा को भले ही सिर्फ हिंदुओं की ही समझें, मगर गंगा ने क्या कभी अपने को सिर्फ किसी एक का समझा है? उसने तो अपने प्रेम के दूध का पानी उन सबको ही दिया है जिसने भी उससे मांगा। यह बात एक अकेली गंगा की ही नहीं, दुनिया भर की सभी गंगाओं की बात है। रही भागीरथ बनने की बात। वह, मैं तो क्या, हम सब ही बन सकते हैं। अगर ठंडे दिमाग से, बिना एक-दूसरे पर कीचड़ उछाले, हम यह सोचें कि गर्दिश के उन दिनों जो भी मौतें हुई वे सब ही बुरी मौतें हुई थीं। अगर इतना भर हम सब सच्चे दिल सोचने लगें तो

समझो—भटकती आत्माओं का तरोतारण हो या न हो, हम सबका तरोतारण उसी क्षण हो जाएगा। क्योंकि ऐसा सोचने के अगले ही क्षण, हम सब फिर ताऊ, चाचा, मामा, मामी व ताई आदि के पहले ही जैसे सच्चे दिली रिश्ता में बंधकर रहने को जहां बेताब हो जाएंगे। वहीं, भटकती आत्माएं जब हमें पहले की तरह देखेंगी तो, उन्हें अपने आप ही शांति मिल जाएगी···। अरे बेटे मैं तो कहां की बातें कहां ले आया। मुझे तो ख्याल ही नहीं रहा। चलो तुम्हें बेटे के पास स्वयं ही छोड़ दूं। उसके पास मजबूरी में बाहर के रास्ते से जाना पड़ेगा। आजकल उसके दो चाचा-चाचियां आदि भी···



अब मैं खान साहब के अब्बाजान के साथ-साथ चल रहा था। अंदर ही अंदर मैं घबरा रहा था कि यदि खान साहब ने, मुझसे मेरे यहां आने का कारण पूछ लिया तो उत्तर क्या दूंगा ? क्योंकि उनके सामने, उनके जीवन की विसंगतियों को जानने की इच्छा, कहने भर से काम नहीं चलेगा। हो सकता है मुझे उन विसंगतियों को स्पष्ट भी करना पड़े। जैसे कि, एक ओर तो इनके पास इतनी अतुल सम्पत्ति है। हजारों आदमी इनके कल-कारखानों में काम करते हैं। बल्कि, ऐसी स्थिति में होते हुए भी ये मामूली सरकारी नौकरी करते हैं। जिस स्थिति में दूसरे—चांदी के जूतों के बल पर एक से एक प्रतिभाओं को अपने निरक्षर व भ्रष्टाचारी बीवियों व भाइयों के मातहत काम करने को जहां मजबूर करते हैं। वहीं, उन प्रतिभाओं के मुंह से उनके प्रतिभा-शाली कहलाने को बाध्य करते हैं। माना कि ईमानदारी से किए श्रम के बारे में यह महान् दार्शनिक दृष्टिकोण जन-प्रचलित नहीं है कि उसका मान नहीं होता है। पर इनके द्वारा किया जाने वाले श्रम भी तो वहमी है—दफ्तर न दफ्तर किया जाने वाला श्रम विलक्षण है। मगर दफ्तर से दूर बड़े बाग और जान वाले काम पर बैल की तरह जुत जाना, जहां बाबूगिरी की पराकाष्ठा है। वहीं,

पैसों के बल पर अपने काम को दूसरों से निपटवाना तथा प्रोमोशन की बात ठुकराना अपने आप में क्या कम विचित्र नहीं है ? जबकि बाबू दो-चार रुपये वाले यू० डी० सी० जैसे प्रोमोशन की आशा में बीस-बीस साल बिता देते हैं। दूसरी बात यह कि एक ओर तो ये गरीबी से टूटने वाले हर इंसान को जरूरत के मुताबिक पैसा बिना किसी संकोच के दे देते हैं तो दूसरी ओर, पैसे से ऐसा लगाव कि उसे ये अपने या अपने अब्बाजान के हाथों ही बांटने की बात, क्या इस बात का संकेत नहीं कि ये मानसिक रूप से सम्पत्ति से प्रतिबद्ध हैं। जोकि भौतिक प्रतिबद्धता से भी अधिक भयानक है। क्योंकि भौतिक लगाव किसी भी अन्य को अपने समकक्ष आता देख, उसे नुकसान पहुंचाकर जहां अपने से निम्न सिद्ध करने को आमादा रहता है। वहीं, मानसिक प्रतिबद्धता अपने समकक्ष परिपक्व व्यक्ति को देख, उसे समूल नष्ट करने तक को तुल आती है। इन दोनों ही स्थितियों में, व्यक्ति की कथनी व करनी में अंतर साफ दिखाई देता है। मगर इनके बारे में अब तक जो कुछ सुना व देखा, उसमें इस तरह के संकेत भी कहीं नहीं। तब क्या यह अपने आप में विसंगति में भी अनोखी विसंगतियां नहीं…?

अब हम दोनों खान साहब के महल के गेट के उस स्थान पर पहुंच गए थे—जहां उनके खजांची से मेरी बातें हुई थीं। मगर उधर अब दूसरा व्यक्ति था, जो उधर टहल रहा था। मैंने गौर से एक बार खान साहब के अब्बाजान को देखा। एक बार देखा—नए टहलते हुए खजांची को। फिर देखा खान साहब के महल की ओर। उधर देखना ही था कि बिजली के प्रकाश में दिखती, लाल पत्थरों की इस इमारत ने, मुझे मेंहरोली टी० बी० सेनीटोरियम के अपने उन अभागे क्षणों की याद करा दी। मैं जब लगभग ठीक इसी समय अपनी दिन भर की बोरियत कम करने, अकेले सेनीटोरियम के कंपाउंड के अंदर घूमा करता था। इतना याद आना था कि मुझे तो वे सारे के सारे दिन याद हो आए, जब स्टेप्टोमाइसीन के रोज लगने वाले इंजेक्शनों के कारण, जहां मेरा गला सूख आता था। वहीं, थोड़ी-थोड़ी देर बाद यदि मैं फल न खाऊं तो मुझे ऐसे लगता था—जैसे जहां मेरी जीभ सूख आई है…वहीं उसके सूखने के साथ-साथ जीभ की नसें खिचनी शुरू होकर मेरे सारे शरीर की नसें खिचने लगी हैं। तब अपनी छड़िस्थानी जिंदगी की याद कर—मेरा फल लाने वाला कोई नहीं है—सोच, मैं स्वयं सेनीटोरियम के उस गेट की ओर चल पड़ता था, जिधर फल वाले बैठा करते थे। तब पहले छ:-सात दिन तो मैंने उतने फल खाए, जितने से नसों का खिचना व जीभ का सूखना रुक सकता था। मगर उसके बाद जब मैंने एक दिन, पैसों का हिसाब लगाया तो मैं सिहर उठा। क्योंकि पहली तारीख की प्रतीक्षा के लिए रखे पैसों का

लगभग आधा हिस्सा खत्म हो चुका था। तब उसके बाद अधिक से अधिक फल खाने की डाक्टर की सलाह के बावजूद, मैंने फलों की मात्रा काफी कम कर दी। उनका कम होना ही था कि एक अजीब-सी घबराहट ने मेरे अंग-प्रत्यंग को शिथिल कर दिया। तब जब अपने वार्ड के दो-तीन मरीजों को हथिनियों की तरह फल खाते तथा अन्यों को तरसती निगाहों से उन्हें देखते देखता तो, मेरी आँखें कोने वाले उस मरीज पर टिक जाती थीं—जो वार्ड की ओर पीठ किए हमेशा ही धार्मिक किताबें दोहराया करता था। उसकी इस आदत को देख पहले तो मैंने सोचा था कि निश्चय ही यह मानसिक रूप से कमजोर होगा। पर जब उसके बारे में मुझे यह पता चला—एक तो इसका आगे-पीछे कोई भी नहीं है। दूसरा यह कि यह बेहद गरीब है···। तब तो मेरा मन-मस्तिष्क ही झनझना उठा था। एक ओर ऐसी बीमारी, जिसमें दवाओं के ही बराबर 'रिच डाइट' की आवश्यकता हो। दूसरी ओर ऐसी गरीबी···? तब घबराकर मैंने लंबे-चौड़े अपने वार्ड को झाँका ही था कि भरी जवानी में ही बूढ़ी हो आई अधिकांश आकृतियों को देख, जहाँ मेरी आँखों के आगे घना अँधेरा छा आया। वहीं, मुझे यहाँ तक लगने लगा—जैसे अभावों की जिंदगी में क्षण-प्रति-क्षण घुलते दुनिया भर के लाखों-करोड़ों लोगों का हुजूम मेरे चारों ओर बढ़ता ही बढ़ता चला आ रहा है··· जो फलों-मिठाइयों आदि की दुकानों के आगे से गुजरते केवल यह सोचा करते हैं कि अब तक भले ही वे अपने बच्चों को ये चीजें नहीं खिला पाए, मगर रोटी व कपड़े की जिद्दोजहद से, जैसे ही उन्हें थोड़ी फुर्सत मिलेगी वे एक न एक दिन अवश्य उन्हें खिलाएंगे···। तब उस दिन आदतन जहाँ मैं ऐसे लोगों की जिंदगी के बारे में घंटों सोचना-सोचना ही रह गया था। वहीं, आसपास के मरीजों को यह जानने देखने-देखते रह गया था—क्या इनमें से एक भी ऐसा मरीज है जो माली हालत ठीक हो सकने के कारण, ऐसे फल खा सकता है? या ये सब के सब ऐसे फल खा रहे हैं जैसे—जीवन से मृत्यु से जूझने वाले व्यक्ति को परिवार वालों को मजबूरन टैक्सी व स्कूटर से अस्पताल पहुँचाना ही होता है। तब इस तरह की बातें सोचते-सोचते मेरे मन में विचार उठा था—क्या जिंदगी में कभी ऐसा खुशनसीब क्षण देखने को मिलेगा—जब दुनिया भर में एक भी व्यक्ति अभाव के कारण जहाँ फल आदि किसी भी वस्तु को तरसती निगाहों से देखता दिखाई नहीं देगा···और जब दुनिया भर में कहीं किसी भी बच्चे का विकास इसलिए नहीं रुक सकेगा कि उसका पिता नहीं है या उसके पिता के पास पैसा नहीं है। इतना ही नहीं, क्या कभी ऐसा खुशनसीब क्षण देखने का सौभाग्य मिलेगा···जब ऐसा विकास सहज में ही हो जाएगा—किसी भी औरत या लड़की को अपने जिस्म से खिलवाड़ कराने महज इसलिए मजबूर नहीं

गा कि, उसके पति या उसके भाई के इलाज के लिए, उस...
के पास पैसे नहीं हैं···। तब मुझे अनायास ही याद हो आई थी, किसी
पंक्ति—जब तक मेरे देश की सड़क पर घूमने वाला एक भी आवारा
भूखा रहेगा, तब तक मैं नहीं समझ सकता—मेरा देश खुशहाल है।
याद आना ही था कि पहले तो मुझे कुछ राहत-सी मिली। पर जाने क्या
थी, अगले ही क्षण मेरे मन में प्रश्न उठा—इस तरह की दो-चार लाइनें
रने वाले या ऐसी कोरी बातें करने वाले तो दुनिया में सैकड़ों व हजारों
हुए हैं तब क्या दुनिया में कभी ऐसा व्यक्ति भी पैदा होगा जो मन-
स्तिष्क व शरीर के हर-पल, हर-क्षण सिर्फ गरीब व गरीबी की ही बातें
ोचेगा···मगर ज़िंदगी के दुःखों से घबराकर 'नैति-नैति' कहकर जंगलों की
ओर वैयक्तिक निर्वाण के लिए भागने के बदले, सामूहिक हित के' लिए काम
करेगा। क्योंकि मानवीयता की जहां यह चरम सीमा है, वहीं यह अध्यात्म की
पहली सीढ़ी भी है। वर्ना तो मूर्खों को करनी का डर दिखाकर, अपना उल्लू
सीधा करने वाले धार्मिक व्यक्ति, अपने काले कारनामों को छिपाने का स्वांग
रचने मंदिर, मस्जिद व गिरजों आदि में श्रद्धारत दिखाई तो ज़रूर देंगे, मगर
उनमें एक भी ऐसा व्यक्ति दिखाई नहीं देगा—जो 'अनलहक' की बातें कहने
वाले मंसूर की तरह, अज्ञानियों के हाथों मारे जाने वाले पत्थरों की चोट को
भी चोट न समझ सकने की क्षमता रख सकेगा···। इतना सोचना ही था,
एकाएक मुझे लगा, जैसे कोई मुझसे कह रहा है—ऐसा एक मंसूर के ही
साथ नहीं, ऐसा तो राष्ट्रपिता गांधी, सुकरात व प्रभु ईसा के साथ भी हुआ
है जिन्हें आज दुनिया पूजती है। तब मेरी पलकें गीली हो आई थीं। मेरी
गीली पलकें देख तब मेरे पास मेरे वार्ड का वह मरीज आया था, जिसे सारे
वार्ड के लोग कहा तो करते थे—पुजारी जी। मगर उसका नाम था—
अब्दुल्ला। तब जहां उसने 'अरे रो क्यों रहे हो' कहा था। वहीं वह मेरे बैड
पास ही ढोलक-मजीरे आदि ले आया था। मुझे आज भी याद है कि उसने
ब गाया था—

रघुपति राघव राजा राम, पतित पावन सीता राम।
अल्लाह ईश्वर तेरे नाम, सबको सन्मति दे भगवान॥

तब उसकी तन्मयता व उसके स्वर के माधुर्य ने मुझ जैसे कीर्तन
सत्संगों में न जाने वाले व्यक्ति तक को झकझोर दिया था। इतना ही न
उसने तो मुझे वार्ड में हर मंगलवार के उस कीर्तन की ओर आकर्षित कर दि
था, जिसे सेनीटोरियम से छुट्टी मिलने पर मरीज़ वहां करवाया करते
ऐसे कीर्तन में जब भी उसके मुंह से निकला पहला स्वर हवा में गूंजता

तब ही मेरे पाँव उधर को खिंचे चले जाते थे। हालाँकि पहले वाले मंगल के दिन कीर्तन में शरीक होने के बदले मैंने सेनेटोरियम के सभी वार्डों का चक्कर यह जानने लगाया था कि यह कीर्तन सिर्फ हमारे ही वार्ड में होता है या यहाँ के सभी वार्डों में ? तब मैंने अपने ही जैसे अपने बाहर घूमते एक मरीज से इस कीर्तन के बारे में पूछा था। उसने बताया था—सेनेटोरियम के नियमानुसार यहाँ के मरीजों को हर बुध को ही छुट्टी हुआ करती है। बुध के दिन उसे अपनी नयी जिंदगी में पुनः प्रवेश करने जाना होता है। इसीलिए छुट्टी पाने वाले मरीज मंगल का यह कीर्तन करवाते हैं। तब मैंने निश्चय किया था कि यदि कभी ठीक होकर छुट्टी मिलने का सौभाग्य मुझे भी मिला, कीर्तन तो मैं भी करवा दूँगा मगर मैं कीर्तन में इधर भी शामिल नहीं होऊँगा। क्योंकि कीर्तन में ईश्वर के मासूमों लहान वाले मजहबों के शरीक होने के कारण, मैंने किसी भी कीर्तन में शरीक न होने का फैसला कर रखा था। मगर अब्दुल्ला का मधुर स्वर व यहाँ के भजनों की निश्छल भक्ति थी कि मैं यहाँ न केवल कीर्तन में शरीक होता था बल्कि मुझे यहाँ सच्ची आत्मिक शांति-सी मिलती थी।

पर कुछ दिनों बाद जब एक ऐसा मंगल का दिन आया जब वार्ड के सभी व्यक्तियों को इस बात को जो सुना था कि उनमें से एक आदमी को वैसी ही छुट्टी हो रही है जिसको खुशी में कीर्तन करा कर दूसरों को भी कीर्तन कराने का धैर्य बाँधे रहने की वह प्रेरणा देता है। मगर इस बार का भी वार्ड के सभी मरीजों को कम दुःख नहीं था कि अब अगले मंगलवार से उन्हें अब्दुल्ला के मुँह से कीर्तन सुनने का सौभाग्य नहीं मिलेगा। यह तो बात थी कि सारे वार्ड में एक अजीब-सी मायूसी छायी हुई थी। [illegible] ऐसा नहीं ? तब तो अब्दुल्ला की मिलनसारिता ने सब का मन मोह लिया था। दस [illegible] महीने तक वार्ड में रहने के कारण वह वार्ड का सबसे पुराना मरीज था। फिर उस मंगल की एक और खासियत यह थी कि उस दिन [illegible] छुट्टी हुई थी। जिससे यह भी समस्या [illegible] खड़ी हुई थी कि कीर्तन के लिए प्रसाद आदि कौन लायेगा ? वार्ड [illegible] मगर अभी इस बारे में बातें ही करने लगे थे कि अब्दुल्ला [illegible] आया। [illegible] वार्ड के [illegible] अपने [illegible] सेनेटोरियम के अधिकारियों से इस बात [illegible] कि [illegible] और [illegible] आज वार्ड के लोग [illegible] नहीं [illegible] कीर्तन करेंगे। पर उस दिन [illegible] एक अजीबोगरीब समस्या उठ खड़ी [illegible] अब्दुल्ला ने हाथ जोड़कर यह कहा—[illegible]

जी चाहता है कि कीर्तन शुरू करने से पहले मैं यहां थोड़ा नुमाज पढ़ लूं। इसपर सभी के सभी, असमंजस में से कभी सामने सजाए मंदिर को देखते रह गए तो कभी, एक-दूसरे का मुंह। कोई भी यहां नुमाज पढ़ने की स्वीकृति देने का साहस नहीं बटोर पाया। तभी जाने क्या आश्चर्य हो आया, पीछे से दो व्यक्ति एक साथ बोल उठे—'अब्दुल्ला आज अपनी खुशहाली के लिए अकेले तुम ही अपने अल्लाह से दुआ नहीं मांगोगे, बल्कि हम भी तुम्हारे साथ तुम्हारे अल्लाह से, ठीक वैसे ही तुम्हारी खुशहाली के लिए दुआ मांगेंगे जैसे तुम हमारे और भाइयों के लिए कीर्तन कर दुआ मांगा करते हो। बस, अब क्या था कि देखते-देखते अब्दुल्ला के साथ-साथ सारे वार्ड के लोग, जो जहां था वहीं पर, ज़मीन पर झुक आया। मुझे इस बात का आज भी गहरा दु.ख है कि मैं तब ठीक उसी की तरह नुमाज नहीं पढ़ पाया। क्योंकि अनअभ्यस्तता के कारण मैंने सिर तब उठाया, जब उसने ढोलक बजानी शुरू की थी।

"अरे तुम लौट आए क्या?" यह खान साहब के अब्बाजान का स्वर था। इस स्वर ने मुझे पुनः यथार्थ को धरती पर ला खड़ा कर दिया—मैं इस समय मेहरौली सेनेटोरियम में नहीं हूं। बल्कि, बादशाह की धरती पर हूं। चौंककर मैंने सामने देखा ही था कि देखा—खान साहब की झोंपड़ी से अब मैं केवल दस-बारह ही कदम जहां दूर हूं, वहीं खान साहब के अब्बाजान के पास एक और व्यक्ति खड़े हैं। खान साहब के अब्बाजान ने पहले उनसे मेरा परिचय कराया। फिर उनका परिचय मुझे यह दिया कि ये मेरे अशरफ़ के अहमदाबाद वाले चाचा हैं।

अच्छा तो आप यहां तक इसलिए आए कि जानें—मेरा बेटा अशरफ़ जो कुछ करता है, वह क्यों व किसलिए करता है। बेटे यदि तुम इस बात को जान सको तो हमें भी बता देना। यह तो हमारे किसी के ज़रा भी पल्ले नहीं पड़ता। अब इस बात ही को देखो—हम लोग इससे नौकरी छोड़ने का आग्रह करते-करते थक गए। पर यह है कि हमारी इस बात को नहीं मानता है··· और न हमारी बात का कोई जवाब देता है। केवल एक बार उसने एक बात कही थी की वैसे तो मुझ जैसे आदमी के लिए यह नौकरी करना समय बरबाद करना ही है। पर अब मेरे पास मिनिस्टर साहब की वजह से, छोटी पोस्ट के बावजूद, जो पालसीवाला गोपनीय काम आया है उसकी वजह से मैं सोचता हूं—शायद गरीबों की भलाई का ऐसा काम करने का मौका मिल सकेगा, जिसकी मैं वैयक्तिक जीवन में सपने में भी कल्पना नहीं कर सकता था। वैयक्तिक जीवन में केवल दो-चार आदमियों की मदद की जा सकती है, जबकि यहां से एक ही बार, हज़ारों-लाखों की मदद की जा सकती है। हालांकि

ऐसा कर पाना अत्यंत कठिन है। क्योंकि अभी भी ऐसे लोगों का ही बोलबाला है—जिनको गरीब व गरीबी शब्द से ऐसी ही नफरत है, जैसे कुछ को प्लेग रोग से। इसीलिए मैं सोचता हूं कि गरीबों के छोटे-बड़े हिमायती जो वहां हैं उनकी तहेदिल मदद कम… न कि उन्हें दगा दूं…। तब से उससे इस बारे में हमने बातें करना ही छोड़ दिया है। हालांकि उससे पहले हम सोचते थे कि आई० ए० एस० की परीक्षा में सातवीं पोजीशन लाने के बावजूद मामूली खानदान का बेटा होने के कारण जो इंटरव्यू में इसे फेल कर दिया गया, उसी की वजह से शायद यह नौकरी करता है। मगर लाख प्रयत्न करने पर भी यह नहीं समझ पाता हूं कि यह जो कुछ करता है उसका कारण क्या है? समझूं भी कैसे? इसके नाराज होने के डर से, अपने कारखाने में काम करने मजदूरों को मैं अधिक तनख्वा व सुविधाएं तो दे रहा हूं। मगर मैं यह कह नहीं सकता कि अगर इसका डर न होता तो ऐसा नहीं मैं, उनसे कैसा व्यवहार करता? क्योंकि इसी की वजह से हमारे खानदान के पास यह सब कुछ है—जिसकी हम गिनने में भी सामना नहीं कर सकते थे। जबकि अपने लाखों हजारों रुपयों देते समय भी इसके चेहरे पर न तो उन पैसों के देने का दुख उभरता है, न इसके चेहरे पर उन्हें देने के गर्व की रेखाएं ही। इतना कहते-कहते खान साहब के चाचा जान ने एक बार और न खान साहब की कोठरी की ओर देखा तो फिर देखा महल के गेट की ओर—जिधर खान साहब के अब्बाजान अब लौट रहे थे। 'क्या बताऊं बेटे, सबसे पहले मजदूरों को अच्छी तनख्वा व सुविधाएं देने के उसके सुझाव को न मान पाने के कारण, मैंने पहले उसका काफी विरोध किया—एक ओर तो मजदूर कामचोरी किया करते हैं। दूसरी ओर, तुम्हारा यह अनोखा सुझाव।' तब यह एक बार बेचैन हुआ था। बोला था, 'चाचा जी वैसे जैसी तुम्हारी मर्जी, मगर मेरी दरख्वास्त है कि मजदूरों को अधिक से अधिक उतना अवश्य दो जिससे रोटी, कपड़ा और मकान की जरूरत को वे जहां पूरा कर सकें। वहीं, व अपने बच्चों की ठीक परवरिश कर सकें। क्योंकि अब वह दिन बहुत ही जल्द आने वाला है—जब लोगों को अधिक बेवकूफ नहीं बनाया जा सकता। तब याद रख लेना, ऐसे दिनों तुम्हारे द्वारा की गई तुम्हारी भलाई ही काम आएगी। सिर्फ भलाई…'

तब मैंने उससे अधिक बहस नहीं की थी। मगर उसकी बात को दिल से नहीं स्वीकारा था। पर आज जब मैं बेटे की उस बात की सत्यता के बारे में सोचता हूं तो मेरी आंखों के आगे वे दृश्य उभर आते हैं—जब औरों के कारखाने में आए दिन हड़तालें चल रही थीं, तो मेरे यहां आम दिनों की तरह ही काम होता था। तब ऐसे ही एक दिन · तब मेरे कारखाने के अंदर-बाहर

जी चाहता है कि कीर्तन शुरू करने से पहले मैं यहां थोड़ा नुमाज पढ़ लूं। इसपर सभी के सभी, असमंजस में से कभी सामने सजाए मंदिर को देखते रह गए तो कभी, एक-दूसरे का मुंह। कोई भी यहां नुमाज पढ़ने की स्वीकृति देने का साहस नहीं बटोर पाया। तभी जाने क्या आश्चर्य हो आया, पीछे से दो व्यक्ति एक साथ बोल उठे—'अब्दुल्ला आज अपनी खुशहाली के लिए अकेले तुम ही अपने अल्लाह से दुआ नहीं मांगोगे, बल्कि हम भी तुम्हारे साथ तुम्हारे अल्लाह से, ठीक वैसे ही तुम्हारी खुशहाली के लिए दुआ मांगेंगे जैसे तुम हमारे और भाइयों के लिए कीर्तन कर दुआ मांगा करते हो। बस, अब क्या था कि देखते-देखते अब्दुल्ला के साथ-साथ सारे वार्ड के लोग, जो जहां था वहीं पर, ज़मीन पर झुक आया। मुझे इस बात का आज भी गहरा दुःख है कि मैं तब ठीक उसी की तरह नुमाज नहीं पढ़ पाया। क्योंकि अनअभ्यस्तता के कारण मैंने सिर तब उठाया, जब उसने ढोलक बजानी शुरू की थी।

"अरे तुम लौट आए क्या?" यह खान साहब के अब्बाजान का स्वर था। इस स्वर ने मुझे पुनः यथार्थ की धरती पर ला खड़ा कर दिया—मैं इस समय मेहरौली सेनेटोरियम में नहीं हूं। बल्कि, बादशाह की धरती पर हूं। चौंककर मैंने सामने देखा ही था कि देखा—खान साहब की झोंपड़ी से अब मैं केवल दस-बारह ही कदम जहां दूर हूं, वहीं खान साहब के अब्बाजान के पास एक और व्यक्ति खड़े हैं। खान साहब के अब्बाजान ने पहले उनसे मेरा परिचय कराया। फिर उनका परिचय मुझे यह दिया कि ये मेरे अशरफ के अहमदाबाद वाले चाचा हैं।

अच्छा तो आप यहां तक इसलिए आए कि जानें—मेरा बेटा अशरफ जो कुछ करता है, वह क्यों व किसलिए करता है। बेटे यदि तुम इस बात को जान सको तो हमें भी बता देना। यह तो हमारे किसी के जरा भी पल्ले नहीं पड़ता। अब इस बात ही को देखो—हम लोग इससे नौकरी छोड़ने का आग्रह करते-करते थक गए। पर यह है कि हमारी इस बात को नहीं मानता है··· और न हमारी बात का कोई जवाब देता है। केवल एक बार उसने एक बात कही थी की वैसे तो मुझ जैसे आदमी के लिए यह नौकरी करना समय बरबाद करना ही है। पर अब मेरे पास मिनिस्टर साहब की वजह से, छोटी पोस्ट के बावजूद, जो पालसीवाला गोपनीय काम आया है उसकी वजह से मैं सोचता हूं—शायद गरीबों की भलाई का ऐसा काम करने का मौका मिल सकेगा, जिसकी मैं वैयक्तिक जीवन में सपने में भी कल्पना नहीं कर सकता था। वैयक्तिक जीवन में केवल दो-चार आदमियों की मदद की जा सकती है, जबकि यहां से एक ही बार, हजारों-लाखों की मदद की जा सकती है। हालांकि

ऐसा कर पाना अत्यंत कठिन है। क्योंकि अभी भी ऐसे लोगों का ही बोलबाला है—जिनको गरीब व गरीबी शब्द से ऐसी ही नफरत है, जैसे कुछ को लाल रंग से। इसीलिए मैं सोचता हूं कि गरीबों के थोड़े-बहुत हिमायती जो यहां हैं उनकी तहेदिल मदद करूं…न कि उन्हें दगा दूं…। तब से उससे इस बारे में हमने बातें करना ही छोड़ दिया है। हालांकि उससे पहले हम सोचते थे कि आई० ए० एस० की परीक्षा में सातवीं पोजीशन लाने के बावजूद मामूली खानदान का बेटा होने के कारण जो इंटरव्यू में इसे फेल कर दिया गया, उसी की वजह से शायद यह नौकरी करता है। मगर लाख प्रयत्न करने पर भी यह नहीं समझ पाता हूं कि यह जो कुछ कहता है उसका कारण क्या है? समझूं भी कैसे? इसके नाराज होने के डर से, अपने कारखाने में काम करते मजदूरों को मैं अधिक तनखा व सुविधाएं तो दे रहा हूं। मगर मैं यह कह नहीं सकता कि अगर इसका डर न होता तो पता नहीं मैं, उनसे कैसा व्यवहार करता? क्योंकि इसी की वजह से हमारे खानदान के पास यह सब कुछ है—जिसकी हम सपने में भी आशा नहीं कर सकते थे। जबकि अपने हाथों हजारों रुपये देते समय भी इसके चेहरे पर न तो उन पैसों के देने का दुख उभरता है, न इसके चेहरे पर उन्हें देने के गर्व की रेखाएं ही। इतना कहते-कहते खान साहब के चाचा जान ने एक बार गौर से खान साहब की झोंपड़ी की ओर देखा तो फिर देखा महल के गेट की ओर—जिधर खान साहब के अब्बाजान अब लौट रहे थे। 'क्या बताऊं बेटे, सच्चे दिल से मजदूरों को अच्छी तनखा व सुविधाएं देने में उसके सुझाव को न मान पाने के कारण, मैंने पहले उसका काफी विरोध किया—एक ओर तो मजदूर कामचोरी किया करते हैं। दूसरी ओर, तुम्हारा यह अनोखा सुझाव।' तब वह एक बार केवल हंसा था। बोला था, 'चाचा जी वैसे जैसी तुम्हारी मर्जी, मगर मेरी ख्वाहिश है कि मजदूरों को अधिक से अधिक उतना अवश्य दो, जिससे रोटी, कपड़ा और मकान की जरूरत को वे जहां पूरा कर सकें। वहीं, वे अपने बच्चों की ठीक परवरिश कर सकें। क्योंकि अब वह दिन बहुत ही जल्द आने वाला है—जब लोगों को अधिक बेवकूफ नहीं बनाया जा सकेगा। तब याद रख लेना, ऐसे दिनों तुम्हारे द्वारा की गई तुम्हारी भलाई ही काम आएगी। सिर्फ भलाई…'

तब मैंने उससे अधिक बहस नहीं की थी। मगर उसकी बात को दिल से नहीं स्वीकारा था। पर आज जब मैं बेटे की उस बात की महत्ता के बारे में सोचता हूं तो मेरी आंखों के आगे वे क्षण उभर आते हैं—जब औरों के कारखाने में आए दिन हड़तालें चल रही थीं, तो मेरे यहां आम दिनों की तरह ही काम होता था। तब ऐसे ही एक दिन · तब मेरे कारखाने के अगल-बगल

वाले और कारखानों के मज़दूरों का सड़क पर चलता जुलूस, एकाएक ही मेरे कारखाने के अंदर घुसकर कारखाने में आग लगाने लगा था। तब देखते-देखते जहां एक ओर आग की लपटें मशीनों की ओर बढ़ रही थीं। वहीं, मेरे कारखाने के मज़दूर अपनी जिंदगी की भी परवाह न कर, जहां आग से जूझ पड़े थे। वहीं, उनकी औरतें व बच्चे अपने-अपने हाथों पानी व रेत की बाल्टियां लिए ऐसे दौड़े चले आए थे—जैसे वे यह एहसास करते हों कि आग किसी और के कारखाने में नहीं लगी है बल्कि उनके अपने ही कारखाने में लगी है। तब आग तो थोड़ी देर में बुझ आई थी, मगर मैं अश्रुपूर्ण नेत्रों से उन मांओं व बहिनों के उस रूप को देखता रह गया था—जिस रूप के प्रति उनमें उस क्षण, अपने उस शील व लज्जा तक की परवाह नहीं थी। जिसके साथ कुत्तों की तरह खिलवाड़ कर सकने की आशंका भर से वे कभी, मेरे द्वारा खोले उस स्कूल में नहीं आए थे—जो बेटे की सलाह के कारण मैंने सच्चे दिल से उनकी भलाई के लिए सात-आठ साल पहले खोला था। इतना ही नहीं, मज़दूरों ने तो, तब दो महीने तक तनखा का चौथाई हिस्सा लेने से यह कहकर इंकार कर दिया—जब आप हमें फायदे का हिस्सा अपने आप देते हैं तो क्या हम इतने नाकारा हैं कि नुकसान में हिस्सा न बंटाएं…

इतना ही नहीं, मैं उन क्षणों को जिंदगी के आखिरी क्षण तक भूल नहीं सकता, जब मेरे मज़दूरों ने दो बार मुझ पर हुए कातिलाना हमलों से मुझे बचाया था। तब एक बार तो मुझ पर चली गोलियों को एक मज़दूर ने अपनी छाती आगे बढ़ाकर बरदाश्त किया था। तब उस क्षण, एक ओर तो मेरे सामने उस मज़दूर की लाश पड़ी थी। दूसरी ओर मैं सोच रहा था कि मेरा तो किसी से भी बैर नहीं, तब एक अपरिचित द्वारा मुझ पर यह हमला क्यों व किसलिए? इसका कारण मैं तब तक समझ नहीं पाया जब तक कि मुझ पर दूसरी बार दो व्यक्तियों ने एक साथ छुरों से हमला नहीं किया। तब उस क्षण, जहां उन्होंने मुझ पर छुरों से हमला किया। वहीं, एक और व्यक्ति यह कहकर मेरे पास से भागा—कमीने अब और बढ़ा मज़दूरों की तनखा। तब मेरे ठीक हो जाने पर, मुझ पर हमला करने व करवाने वालों के बारे में मज़दूरों ने जो राज़ पकड़ा, उसे सुन तो मेरे पैरों तले की धरती ही खिसक आई। क्योंकि मुझ पर हमला करवाने वाले वे लोग थे—जो अपने-अपने कारखानों में मज़दूरों को और अधिक सुविधाएं देने मुझ से अक्सर राय पूछा करते थे…और मुझ पर हमला करने वाले ऐसे लोग थे—जिनके बच्चे मुझ पर हमला करने की फीस मिलने से पहले तीन-तीन चार-चार दिनों से भूख से तड़फ व छटपटा रहे थे। तब मुझे देखने आए अशरफ को जब मैंने ये बातें बताईं तो उसने मेरी बात बीच में ही काटकर कहा था—'चाचा और बातें

छोटो। पहले मुझे यह बताओ कि तुमने उनके बच्चों के लिए कुछ किया या नहीं?' तब बदले की भावना के कारण, मेरा सिर स्वत: ही झुक आया था तब वह झटके के साथ उठकर मेरे पास से चला गया था। और काफी देर बाद लौटने पर बोला था—'चाचा पहले तो मुझे संदेह है कि तुम पर हमला करने वाले बदनसीब वे गरीब जेल के अंदर भी बच सकेंगे। यदि अपनी किस्मत से वे बच भी पाए, और कानून की गिरफ्त से वे सजा काट के बाहर आ पाए तो चाचा उन्हें अपने कारखाने में नौकरी पर रखना। यदि ऐसा न भी हो पाए तो उनके जिस्म के टुकड़े उन बदनसीबों की परवरिश करते रहना। क्योंकि उनका इसमें जरा भी कसूर नहीं है। वैसे भी वे दिल से तुम्हें मारना नहीं चाहते थे। यदि ऐसा नहीं होता तो, तुम बच नहीं सकते थे…'

अब जब भी मैं अपने पर हुए हमलों व उनसे जुड़ी हुई बातों के बारे में सोचता हूं तो यह सोचते ही सिहर उठता हूं जब मजदूरों व गरीबों को थोड़ा-बहुत अधिक देने के कारण, मुझे इतना देखना व सहना पड़ा तो उन लोगों को कितनी मुसीबतों का सामना करना पड़ता होगा—जो हर पल, हर क्षण गरीबों की भलाई की ही बातें सोचने व किया करते हैं। क्योंकि गरीबों के आंसुओं की बातें करना उतना तक आसान नहीं, जितना कि अल्लाह या ईश्वर के दर्शन करने की प्रक्रिया को जटिल माना जाता है। क्योंकि अल्लाह या ईश्वर के दर्शनों के इच्छुक व्यक्ति को नुकसानहीन समझ कोई रोकता तो नहीं। जबकि गरीबों के आंसुओं की बातें करने वाले व्यक्ति को, ऐसे दर्शन से कम खतरनाक नहीं समझा व देखा जाता है जैसे कि—वह उनकी सम्पत्ति पर डाका डालने सामने खड़ा हो। ये ही तो वे निगाहें हैं जो गरीबों के ऐसे हमदर्दों को मौत के घाट उतारने में जहां हिचकिचाते नहीं हैं। वहीं पग-पग पर उन्हें रोकने को हमेशा आमादा रहते हैं। यह ही वजह है कि अब जब भी गरीबों की बातें करने वालों के बारे में सोचता हूं तो मेरा रोम-रोम पुकार-सा उठता है—'धन्य हैं वे लोग, जो अपने जीवन के बलिदान व अपने खानदान के भी कुर्बान हो सकने की परवाह किए बिना, गरीब की भलाई की लड़ाई के अपने लक्ष्य पर बढ़ते ही रहते हैं।' अब तो ऐसे लोगों के बारे में पढ़ते-पढ़ते व गरीबों की बातें सुनते-देखते, मैं मानसिकता की इस स्थिति तक पहुंच आया हूं, ऐसे उन हाथों के आगे अपनी अपनी सारी सम्पत्ति को सौंपने की पहल करने से हिचकूंगा नहीं, जो मुझे व मुझ जैसों को इस बात की गारंटी देंगे कि वे मेरे होशियार बच्चे की छाती पर बगैर अकल नालायक बच्चे को ऐसे नहीं बिठायेंगे, जैसे कुछ चालाक लोग, आज तक बिठाते ही चले आ रहे हैं। और जो, मुझे यह गारंटी भी देगा कि जायदाद या उनके

हाथों सौंपे जाने के बाद वे मुझे, मेरे जीते जी, किसी भी हालत में वैसा रहीम नहीं बनने देंगे—जिसकी जिंदगी में जहां पहले किसी भी किस्म की कमी नहीं थी—वही जो खुले दिल जरूरतमंद लोगों को इम्दाद दिया करता था। मगर दुर्भाग्य कि, बाद में उसे जहां दर-दर मांगना पड़ा। वहीं किसी और अधिक जरूरतमंद आदमी को ठिठुरती ठंड में अपने आगे हाथ छोड़ते देख अपने तन ढकने को बचे एकमात्र पश्मीने को भी देने से अपने को जो न रोक पाया। हां, किसी और के भी हाथ छोड़ने की कल्पना के कारण चीखा था—

अब रहीम दर-दर फिरें, मांग मधुकरी खाय।
यारो यारी छोड़ दो, अब रहीम वह नाहिं॥

ऐसा यदि मेरे साथ हो आए, तब तो मैं बरदाश्त भी नहीं कर सकूंगा। क्योंकि बेटे की बदौलत अभी केवल यह एहसास तो हो पाया कि गरीबी आदमी को किस कदर हैवानियत की ओर ले चलने को विवश करती है। मगर···इतना ही नहीं, मैं अब यह भी एहसास कर चुका हूं कि दुनिया में जो जहां-तहां गरीब हैं उसका कारण यह नहीं है कि वे जन्म से ही ऐसे थे। जन्म के समय तो सभी अल्लाताला के यहां से खाली हाथ ही आते हैं। बल्कि महज इसलिए कि उनका जायज हक मुझ जैसे लोगों ने मार रखा है। यही कारण है कि अब मैं यह एहसास करता हूं कि यदि कोई ऐसा सच्चा इंसानी मसीहा इन दो विश्वासों को दिलाकर ईमानदारी से धरती पर लागू करा दे, तब तो यह धरती स्वर्ग में बदल जाएगी। ऐसी स्थिति में न तो फिर कोई लूटपाट करेगा और न जोड़-तोड़ की ही कोई नीयत रखेगा। ऐसे ही माहौल में धरती पर धर्मराज्य की स्थापना होगी। यह बात दूसरी है कि आदमी उसे किसी भी नाम से पुकारे। मगर सच्चा धर्मराज्य वही होगा। क्योंकि आदमी भला-बुरा जो कुछ भी करता है—वह सिर्फ ऐसे बुरे समय की आशंका भर के कारण करता है। जब ऐसी आशंका ही न रहेगी, तब फिर आदमी बुराई करेगा ही क्यों? बेटे, अब रही मेरे बेटे अशरफ की बातें। सो तुम बड़े शौक से उससे मिलो। यह सामने उसी की झोंपड़ी है। हां बेटे, यदि कुछ जान सको तो हमें भी···



अब मैं ग्यान साहब के सामने इधर के वादों की याद में उलझा-उलझा-सा बैठा था। पर…न तो उनसे बातें करने की मैं भूमिका ही बांध पा रहा था और न वे ही मुझसे बातें शुरू कर रहे थे। पता नहीं वे इस समय भी जाने किस चिन्तन में थे। मैं था कि अभी यह निश्चय नहीं कर पा रहा था कि मुझे देखते ही मेरी ओर चटाई बढ़ाते हाथ के इशारे ही इशारे में उन्होंने जो मुझसे कुछ पूछा, वह क्या यह पूछा—मैंने इधर जो कुछ देखा, उससे क्या पाया ? और या यह कि मैं इधर कैसे व क्यों चला आया ? यही बात थी कि असमंजस व अनिर्णय की इस स्थिति से अभी पूर्ण तरह उबर ही नहीं पाया था कि एकाएक ही मैंने देखा, हड़बड़ाया-सा एक आदमी दरवाजे पर खड़ा होकर नम्रतापूर्वक बोला, "जी मेन गेट पर एक अजीबोगरीब आदमी आया है। सूरत-शक्ल से तो वह यहां के पुराने मालिक राय साहब-सा लगता है। मगर जहां फटेहाल है, वहीं सिसकियां भरते लगातार यह कह रहा है—मेरा बेटा सख्त बीमार है। ओफ, बदनसीबी के बावजूद आगे नहीं आया जाता…"

"हूँ !" ग्यान साहब ने एक बार झटके से अपने सिर के बालों पर हाथ फेरा। फिर नियति के करिश्मों की याद से करते चापलूस की करारी टग की ओर देखा। फिर बिजली की-सी फुर्ती से वे सहसा उठे। "अच्छा तो भाई इस समय मुआफी। तुमसे कल दफ्तर में ही बातें हो पाएंगी—" कुनमुनाते सहानुभूतिपरक नजरों से मुझे देखते वे तेज कदमों से बाहर अंधेरे में कुछ ऐसे खो-से गए जैसे जिन बड़े कामों को करने की उनमें तमन्ना है वही तमन्ना उन्हें ऐसे छुटपुट कामों में प्रेरित करती हो…और उन्हें ऐसे में जरा भी देर न करने को विवश करती हो। मैं अब भारी मन उठ गया था। आज बाकी कल की धैर्य से प्रतीक्षा करने की बातें सोच ही रहा था कि सामने दीवार में टंगे

खान साहव के कुर्ते व पायजामे पर निगाहें पड़ आईं। लगा जैसे सामने सरकारी दफ्तरों की इमारतों पर इमारतें खड़ी हैं। उन इमारतों के वीच अपने कमरे में खान साहव अपनी सीट पर इस समय भी गंभीर मुद्रा में वैठे लगातार नोट शीट पर लिखते-लिखते ही चले जा रहे हैं···